प्रथम पुष्प

महाकवि ब्रह्म रायमल्ल

एवं

भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति

(व्यक्तित्व एवं कृतित्व)

लेखक एवं सम्पादक

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल

प्रकाशक

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

अध्यक्ष की ओर से

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की ओर से प्रकाशित "महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति" पुस्तक को पाठकों के हाथों में देख हुये मुझे बड़ी प्रसन्नता है। प्रस्तुत पुस्तक महावीर ग्रन्थ अकादमी का प्रथम प्रकाशन है जो समूचे हिन्दी जैन साहित्य को २० भागों में प्रकाशित करने के उद्देश्य से स्थापित की गयी है। हिन्दी भाषा में जैन कवियों द्वारा निबद्ध विशाल साहित्य उपलब्ध होता है। श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी के साहित्य शोध विभाग की ओर से डा० कासलीवाल के सम्पादन में राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूचियों के पांच भाग प्रकाशित हुए हैं उनमें जैन कवियों की सैकड़ों रचनाओं का उल्लेख मिलता है। डा० कासलीवाल जी ने "राजस्थान के जैन सन्त-व्यक्तित्व एवं कृतित्व" तथा "महाकवि दौलतराम कासलीवाल-व्यक्तित्व एवं कृतित्व" इन दो पुस्तकों के माध्यम से जैन कवियों के महत्वपूर्ण साहित्य का परिचय प्रस्तुत किया है जिनका सभी ओर से स्वागत हुआ है। समाज में कितनी ही उच्चस्तरीय प्रकाशन संस्थायें है लेकिन हिन्दी में निबद्ध जैन कवियों के साहित्य के प्रकाशन की कहीं कोई योजना नहीं दिखलायी दी। डा० कासलीवाल जी ने एवं उनके छोटे भाई वैद्य प्रभुदयाल जी जैन ने जब मुझे श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की योजना के बारे में बतलाया तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और मैंने तत्काल इस ओर आगे कार्य करने के लिये उनसे आग्रह किया। ग्रन्थ अकादमी की स्थापना डा० कासलीवाल की सूझबूझ का प्रतिफल है। मुझे यह लिखते हुये प्रसन्नता है कि अकादमी की इस योजना का सभी ओर से स्वागत हो रहा है।

"महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति" ग्रन्थ अकादमी का सन् १९७८ का प्रथम प्रकाशन है जिसमें १७ वीं शताब्दी के प्रथम चरण में होने वाले दो प्रमुख कवियों का परिचय एवं उनकी मूल कृतियों के पाठ दिये गये हैं। इसी वर्ष में अकादमी की ओर से दो भाग और प्रकाशित किये जावेंगे जिनमें कविवर बूचराज एवं महाकवि ब्रह्म जिनदास तथा उनके समकालीन कवियों की कृतियां एवं उनकी

मूल्यांकन रहेगा। इन पुस्तकों से विश्वविद्यालयों में शोध करने वाले विद्वानों एवं विद्यार्थियों को इस दिशा में सामग्री भी उपलब्ध हो सकेगी और उन्हें जैन ग्रंथ भण्डारों में कम भागना पड़ेगा।

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की योजना को सफल बनाने के लिये यह आवश्यक है कि उसकी अधिक से अधिक संख्या में संचालन समिति के सदस्य एवं विशिष्ट सदस्य के रूप में समाज का सहयोग प्राप्त हो। यदि अकादमी के ५०० विशिष्ट सदस्य एवं ५१ सचालन समिति सदस्य बन जावें तो अकादमी की अपनी योजना के क्रियान्वयन में पूर्ण सफलता मिल सकेगी। मुझे पूर्ण विश्वास है कि समाज के साहित्य प्रेमी महानुभावों का इस दिशा में पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा। मैं समाज को यह अवश्य विश्वास दिलाना चाहता हूं कि जिस उद्देश्य को लेकर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना हुई है उसमें वह बराबर आगे बढ़ती रहेगी तथा पांच वर्ष की अवधि में अर्थात् सन् १९८२ तक हिन्दी जैन साहित्य को २० भागों में प्रस्तुत किया जा सकेगा। मुझे यह लिखते हुए प्रसन्नता है कि अकादमी को साहु अशोककुमारजी जैन का संरक्षण प्राप्त है।

अन्त में मैं डॉ० कासलीवाल जी का आभारी हूं जिन्होंने अपना समस्त जीवन जैन साहित्य की सेवा में समर्पित कर रखा है। श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना उन्हीं की कल्पनाओं का साकार रूप है। प्रस्तुत पुस्तक के वे ही लेखक एवं सम्पादक हैं। इसके अतिरिक्त सम्पादक मण्डल के सभी विद्वानों का आभारी हूं जिन्होंने इसे सर्वोपयोगी बनाने में अपना योग दिया है। साथ ही उन सभी महानुभावों का भी मैं आभारी हूं जिन्होंने अकादमी की सदस्यता स्वीकार करके साहित्य सेवा की इस सुन्दर योजना को मूर्त्त रूप दिया है।

कन्हैयालाल जैन

२३६ टी. एच. रोड़
मद्रास

लेखक की कलम से

जैन कवियों द्वारा निबद्ध हिन्दी साहित्य कितना विशाल एवं व्यापक है इसका अनुमान वे ही कर सकते हैं जिन्होंने शास्त्र भण्डारों में संग्रहीत पाण्डुलिपियों को देखा है तथा उनके अन्दर तक प्रवेश किया है। अब तक जितने भी जैन कवियों से सम्बन्धित ग्रन्थ प्रकाशित हुये हैं उनमें महाकवि बनारसीदास, महाकवि दौलतराम कासलीवाल, एवं महा पंडित टोडरमल के अतिरिक्त शेष सभी ग्रन्थ परिचयात्मक हैं और जिनमें लेखक का सामान्य परिचय एवं उसकी रचनाओं के नाम गिना दिये गये हैं। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना प्रयास से भी अधिक हिन्दी साहित्य के प्रतिनिधि जैन कवियों के मूल्यांकन एवं उनकी रचनाओं के प्रस्तुतीकरण के लिये हुई है। प्रस्तुत ग्रन्थ अकादमी का प्रथम पुष्प है जिसमें संवत् १६०१ से १६४० तक होने वाले प्रमुख दो कवियों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है और ये दो कवि हैं — ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति। ब्रह्म रायमल्ल ढूंढाड प्रदेश के कवि थे जबकि त्रिभुवनकीर्ति बागड़ एवं गुजरात प्रदेश में अधिक रहे थे।

ब्रह्म रायमल्ल एवं त्रिभुवनकीर्ति दोनों ही लोक कवि थे। इन कवियों ने अपनी कृतियों की रचना जन सामान्य की रुचि एवं भावना के अनुसार की थी। ब्रह्म रायमल्ल पूर्ण रूप से घुमक्कड़ कवि थे जिन्होंने ढूंढाड प्रदेश के प्रमुख नगरों में विहार किया और अपने विहार की स्मृति में किसी न किसी काव्य की रचना करने में सफल हुये। कवि ने अपने काव्यों में पौराणिक परम्परा का निर्वाह करते हुये तत्कालीन सामाजिक स्थिति का भी बहुत ही स्पष्ट वर्णन किया है। ब्रह्म रायमल्ल के सभी प्रमुख काव्य किसी न किसी नवीनता को लिये हुये हैं। कवि की परमहंस चौपई आध्यात्मिक कृति होने पर भी सामाजिकता से ओत प्रोत है। प्रस्तुत भाग में कवि के दो काव्य प्रद्युम्न रास एवं श्रीपाल रास पूर्ण रूप से तथा परमहंस चौपई एवं भविष्यदत्त चौपई के एक भाग को ही दिया गया है। शेष रचनाओं के पाठों को पृष्ठ संख्या अधिक हो जाने के भय से नहीं दिया जा सका। इसी तरह भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति के दो काव्यों में से एक जम्बूस्वामी रास के पाठ को ही दिया गया है।

प्रस्तुत भाग में उक्त दो कवियों का जीवन परिचय के साथ ही उनके काव्यों का अध्ययन भी प्रस्तुत किया है जिसके आधार पर काव्यों की विशेषताओं के साथ साथ कवि की काव्य शक्ति का भी परिचय प्राप्त हो सकेगा। दोनों ही कवि संगीतज्ञ

थे इसलिये उन्होंने अपने काव्यों को कितनी ही राग एवं ढाली में प्रस्तुत किया है। वास्तव में उनके काव्य गेय काव्य बन गये हैं जिन्हें भाव विभोर होकर श्रोताओं के सामने प्रस्तुत किया जा सकता है।

ब्रह्म रायमल्ल ने अपना जीवन ग्रन्थ लिपिक के रूप से प्रारम्भ किया था। सौभाग्य से उनके स्वयं द्वारा लिपिबद्ध गुटका जयपुर के ही पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार में उपलब्ध है जिसका एक चित्र पाठकों के अवलोकनार्थ दिया गया है। इसी तरह यद्यपि स्वयं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति द्वारा लिपिबद्ध पाण्डुलिपि प्राप्त नहीं हो सकी है लेकिन जिस गुटके में उनके काव्यों का संग्रह है वह भी उन्हीं की परम्परा में होने वाले ब्रह्म सामल द्वारा लिपिबद्ध है।

प्रस्तुत भाग के संपादन में जिन तीन अन्य विद्वानों आदरणीय डा. सत्येन्द्रजी, डा० माहेश्वरी जी एवं पं० अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ का सहयोग मिला है उसके लिये मैं उनका हृदय से आभारी हूं। आदरणीय डा० सत्येन्द्र जी के प्रति किन शब्दों में आभार व्यक्त करूं, उन्होंने पुस्तक के सम्बन्ध में 'दो शब्द' लिखने की महती कृपा की है।

इस अवसर पर मैं श्रीमान् डा० अनूपचन्द जी जैन दीवान व्यवस्थापक शास्त्र भण्डार पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर जयपुर एवं श्री प्रेमचन्द जी सौगाणी व्यवस्थापक शास्त्र भण्डार दि० जैन बड़ा तेरहपंथी मन्दिर जयपुर का भी आभारी हूं जिन्होंने कवि की मूल पाण्डुलिपियां उपलब्ध करायी है। श्री प्रकाशचन्द जी वैद का भी आभारी हूं जिन्होंने 'परमहंस चौपई' की प्रति उपलब्ध कराने में सहयोग प्रदान किया है। इनके अतिरिक्त श्री महेशचन्द जी जैन का भी आभारी हूं जिन्होंने पुस्तक की साज-सज्जा में सहयोग दिया है।

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल

दो शब्द

मैं इसे अपना सौभाग्य मानता हूं कि श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी के इस 'प्रथम पुष्प' के लिए मुझ से 'दो शब्द' लिखने को कहा गया है। श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी जयपुर के इस प्रथम पुष्प में महाकवि "ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति" के ग्रन्थ प्रकाशित किये गये हैं। इन ग्रन्थों का विद्वत्तापूर्ण सम्पादन डा० कासलीवाल ने किया है। हिन्दी साहित्य के अनुसंधान के क्षेत्र में डा० कासलीवाल का स्थान महत्वपूर्ण है। इन्होंने हिन्दी जैन साहित्य के योगदान की ऐतिहासिक स्थापना की है। जैन ग्रन्थ भण्डारों की ग्रन्थ सूचियां प्रकाशित कर के इन भण्डारों में उपलब्ध ग्रन्थों के नाम हस्तामलकवत् कर दिये है। इस भगीरथ प्रयत्न में इन्हें सधारू का 'प्रद्युम्न चरित' मिला जिसका सम्पादन करके भी इन्होंने यश अर्जन किया। यह प्रद्युम्न चरित सूर पूर्व ब्रज भाषा का प्रथम महाकाव्य माना जा सकता है।

महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर की स्थापना में भी डा० कासलीवाल का ही प्रमुख हाथ रहा है। इस अकादमी की पंचवर्षीय योजना का दो सूत्री कार्यक्रम बनाया गया है। इस का द्वितीय सूत्र इस प्रकार है–

१. २० भागों में जैन कवियों द्वारा निबद्ध समस्त हिन्दी साहित्य का प्रकाशन।

यह सूत्र ही हिन्दी साहित्य की समृद्धि को प्रकाश में लाने और उसके इतिहास की कितनी ही अचर्चित और उपेक्षित कड़ियों को उभार कर ससंदर्भ उन्हें यथास्थान लगाने का श्लाघ्य कार्य करेगा।

महावीर ग्रन्थ अकादमी संकल्पबद्ध होकर पंचवर्षीय योजना का कार्य सम्पादित कर रही है. यह इस 'प्रथम पुष्प' से सिद्ध होता है।

आज यह 'प्रथम पुष्प' पाठकों के सामने है और इसमें "ब्रह्म रायमल्ल और त्रिभुवनकीर्ति" के कृतित्व का प्रकाशन हुआ है। यदि इन दोनों कवियों के ग्रन्थों का पाठ ही प्रकाशित करा दिया गया होता तब भी इस कार्य की प्रशंसा होती और अकादमी का योगदान ऐतिहासिक माना जाता। किन्तु सोने में सुगन्ध की भांति डा० कासलीवाल ने परिश्रमपूर्वक पाठ सम्पादित करके ग्रन्थ तो प्रकाशित किये ही

हैं, साथ ही एक विशद परिचयात्मक और विवेचनात्मक भूमिका देकर इन ग्रन्थों के सभी परिपार्श्वों का उद्घाटन कर दिया है।

ब्रह्म रायमल्ल सूर–तुलसी के युग के कवि हैं। इस युग के जैन कवियों के सम्बन्ध में इस 'प्रथम पुष्प' के विद्वान् सम्पादक के ये शब्द महत्वपूर्ण हैं :

"इन वर्षों में जैन कवि भी पर्याप्त संख्या में हुए और वे भी देश में व्याप्त भक्ति धारा से अछूते नहीं रह सके। उनकी कृतियां भी भक्ति रस में आप्लावित होकर सामने आयी और इस दृष्टि से भट्टारक शुभचन्द्र, पाण्डे राजमल्ल, भट्टारक वीरचन्द, सुमतिकीर्ति, ब्रह्म विद्याभूषण, ब्रह्म रायमल्ल, उपाध्याय साधुकीर्ति, भीखम कवि, कनक सोम, वाचक मालदेव, नयरंग, कुशल लाभ, सकलभूषण, आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन कवियों ने रास फागु, वेलि, चौपाई एवं पदों के माध्यम से हिन्दी साहित्य की महती सेवा की है। इन कवियों में से हम सर्वप्रथम ब्रह्म रायमल्ल का परिचय उपस्थित कर रहे हैं, क्योंकि संवत् १६०१ से १६४० तक की अवधि में ब्रह्म रायमल्ल हिन्दी के प्रतिनिधि कवि रहे हैं।"

डा० कासलीवाल की उक्त सूची को और संवर्धित किया जा सकता है, उन उल्लेखों के आधार पर जो जहां तहां हुए हैं। ऐसी सूची में ये कवि स्थान पा सकते हैं : १–तल्हमल्ल, २–कल्याणदेव, ३–बनारसीदास, ४-मालदेव, ५–विजयदेव सूरि, उदयराज, ७-ऋषभदास, ८–रायमल्ल ब्रह्मचारी (मिश्र बंधुओं के अनुसार इनके ग्रन्थ हैं : भविष्यदत्त चरित्र और सीताचरित्र तथा रचना काल १६६४, विवरण–सकलचन्द्र भट्टारक के शिष्य थे)। ९–रूपचन्द, १०–हेमविजय, ११–विद्याकमल, १२–समय सुन्दर उपाध्याय।

सूर–तुलसी युग के इन जैन कवियों की सूची में नयी खोज रिपोर्टों से तथा अन्य खोजों से और नाम भी बढ़ाये जा सकते हैं।

हमने जो सूची दी है उसमें रायमल्ल ब्रह्मचारी का नाम आया है। यह मिश्र बन्धु विनोद की लेखक संख्या ३५७ के कवि है। इन्हें मिश्र बन्धुओं ने 'सकलचन्द्र भट्टारक का शिष्य बताया है। डा० कासलीवाल ने इस ग्रन्थ की भूमिका में तो बता दिया है कि ब्रह्म रायमल्ल में ब्रह्म का अभिप्राय 'ब्रह्मचारी' से ही है। अतः रायमल्ल ब्रह्मचारी और ब्रह्म रायमल्ल में अभेद विदित होता है।

डा० कासलीवाल ने इस भूमिका में विद्वत्तापूर्वक यह भी सिद्ध कर दिया है कि ये ब्रह्म रायमल्ल गुजराती ब्रह्म रायमल्ल से भिन्न है। गुजराती ब्रह्म रायमल्ल संस्कृत के विद्वान थे।

पर मिश्र बन्धु विनोद के उक्त कवि क्या कोई तीसरे ब्रह्म रायमल्ल हैं ? संभव हो सकता है कि मिश्र बन्धु विनोद के टिप्पणीकार ने 'सकलकीर्ति' मुनिवर गुणवंत को 'सकलचन्द्र' मान लिया हो। 'भविष्यदत्त चरित्र' इस संग्रह में दी गयी भविष्यदत्त चौपई ही हो सकती है। दूसरा ग्रन्थ 'सीताचरित्र' भी इस संग्रह की 'हनुमन्त कथा' का ही दूसरा नाम हो सकता है ? संवत् १६६४ रचनाकाल के लिए या तो गलत पढ़ लिया गया है या सम्भव है कि यह लिपिकाल ही हो ? किन्तु यहां कठिनाई यह है कि मिश्रबन्धु विनोद के उक्त उल्लेख के प्रामाणिक स्रोत का पता लगाना सम्भव नहीं, अत: यही कह सकते हैं कि डा० कासलीवाल ने अपनी भूमिका में जितना कुछ लिखा है वह प्रामाणिक है, और इस ग्रन्थ के द्वारा दो हिन्दी के महत्वपूर्ण और स्वल्पज्ञात कवियों का उद्घाटन हो रहा है।

ब्रह्म रायमल्ल महाकवि केशवदास के समकालिक हैं, और इनके काव्य में जहां-तहां केशवदास से साम्य सा मिलता है।

ब्रह्म रायमल्ल का 'पोदनपुर नगर वर्णन' का एक उदाहरण यहाँ देना उपयुक्त होगा :

मारण नाम न सुनजे जहां,
खेलत सारि मारि जे तहां
हाथ पाई नवि छेदें कान
सुभद्र खाय ते छेदें पान।
बंधन नाद फूल बंधेर
बधन कोई किसहा न देइ।
कामणि नैण काजल होइ
हियडे मनुस न कालौ होइ।
स्वर्ण परायो छिद्र जु गहै।
कोई किसका छिद्र न कहै।
गूंगो कोई न दीसै सुनि।
पर अपवाद रहै धरि मौन
चोरी चोर न दीसे जहां
घडी नीर नै चोरी जहां
दंड नाम को किस ही न लेई
मनवचकाइ मुनि दड देइ॥

और ऐसे ही आलंकारिक शिल्प में केशव ने लिखा था—

मूलन ही की जहां अधोगति केशव गाई।
होम हुतासन धूम नगर एकै मलिनाई॥
दुर्गति दुर्जन ही जु कुटिल गति सरितन ही में
श्रीफल की अभिलाष प्रकट कविकुल के जी में
अति चंचल जहं चलदलै विधवा बनी न नारि
मन मोह्यो ऋषि राज को अद्भुत नगर निहारि।

डा० कासलीवाल का प्रयत्न निश्चय ही स्वागत योग्य है। उन्होंने ब्रह्म रायमल्ल के ग्रन्थों का ही उद्धार नहीं किया, वरन् विस्तृत भूमिका में कवि और उसके काव्य के सभी पक्षों पर अध्यवसाय पूर्वक प्रकाश डाला है। ऐसी भूमिका से ही इस कवि के गहन अध्ययन के लिए रुचि जाग्रत होती है।

इस महान् प्रयत्न में सम्पादक मण्डल में मुझे भी सम्मिलित करके जो उदारता और कृपा दिखायी है, और दो शब्द लिखने का अवसर दिया है, उसके लिए कृतज्ञता व्यक्त कर सकने योग्य शब्द मेरे पास नहीं।

हां, मैं आशा करता हूं कि महावीर ग्रन्थ अकादमी के प्रकाशनों से समृद्ध जैन साहित्य का महत्वपूर्ण अंश भण्डारों के कक्षों से बाहर आयेगा। मैं इस प्रयत्न की सफलता हृदय से चाहता हूं।

डा० सत्येन्द्र

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

एक परिचय

जैनाचार्यों, भट्टारकों एवं विद्वानों ने देश की प्रत्येक भाषा में विशाल साहित्य की रचना करके धर्म एवं संस्कृति की सुरक्षा एवं उसके विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसी विशाल साहित्य को प्रकाश में लाने की दृष्टि से भगवान महावीर के २५०० वें परिनिर्वाण वर्ष में साहित्य प्रकाशन की कितनी ही योजनाएं बनी। भारतीय ज्ञानपीठ देहली, विद्वत् परिषद्, साहित्य शोध विभाग, जयपुर, जैन विश्व भारती लाडनूं, शास्त्री परिषद् एव पचासों अन्य संस्थाओं ने अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन भी किया लेकिन इतने प्रयासों के उपरान्त भी हम हमारे विशाल साहित्य को जन साधारण तक नहीं रख पाये तथा विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में कार्य करने वाले प्रोफेसरों एव शोध छात्रों को अभीष्ट पुस्तकें उपलब्ध नहीं करा सके। इसलिये जब कभी विद्वानों, शोधार्थियों एवं पाठकों द्वारा किसी आचार्य एवं विद्वान् की अथवा किसी विशिष्ट विषय पर उच्चस्तरीय पुस्तक की मांग की जाती है तो हम इधर उधर देखने लगते हैं और कभी-कभी एक दो पुस्तकों के नाम भी नहीं बता पाते। इसके अतिरिक्त आजकल जिस प्रकार साहित्य के विविध पक्षों के प्रस्तुतीकरण की नवीन शैली अपनायी जा रही है उससे हम अपने आपको कोसों दूर पाते हैं।

उत्तरी भारत एवं विशेषतः राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश एवं देहली में स्थापित जैन ग्रन्थागारों में लाखों पाण्डुलिपियां संग्रहीत है। श्री महावीर क्षेत्र के साहित्य शोध विभाग द्वारा हस्तलिखित शास्त्रों की जो पांच भागों में ग्रन्थ सूचियां प्रकाशित हुई है उनसे हमारे विशाल साहित्य के दर्शन हो सके है तथा पचासों विद्वानों को साहित्यिक क्षेत्र में कार्य करने की प्रेरणा मिली है। लेकिन प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत एवं हिन्दी में जिन आचार्यों एवं विद्वानों ने अनेकों ग्रन्थों की संरचना की है उनके विषय में सामान्य परिचय के अतिरिक्त उनका अभी तक न तो हम मूल्यांकन कर पाये हैं और न उनकी मूलकृतियों को प्रकाशित ही कर सके हैं।

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

एक परिचय

जैनाचार्यों, भट्टारकों एवं विद्वानों ने देश की प्रत्येक भाषा में विशाल साहित्य की रचना करके धर्म एवं संस्कृति की सुरक्षा एवं उसके विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इसी विशाल साहित्य को प्रकाश में लाने की दृष्टि से भगवान महावीर के २५०० वें परिनिर्वाण वर्ष में साहित्य प्रकाशन की कितनी ही योजनाएं बनी। भारतीय ज्ञानपीठ देहली, विद्वत् परिषद्, साहित्य शोध विभाग, जयपुर, जैन विश्व भारती लाडनूं, शास्त्री परिषद् एव पचासों ग्रन्थ संस्थाओं ने अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन भी किया लेकिन इतने प्रयासों के उपरान्त भी हम हमारे विशाल साहित्य को जन साधारण तक नहीं रख पाये तथा विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में कार्य करने वाले प्रोफेसरों एव शोध छात्रों को अभीष्ट पुस्तकें उपलब्ध नहीं करा सके। इसलिये जब कभी विद्वानों, शोधार्थियों एवं पाठकों द्वारा किसी आचार्य एवं विद्वान् की अथवा किसी विशिष्ट विषय पर उच्चस्तरीय पुस्तक की मांग की जाती है तो हम इधर उधर देखने लगते हैं और कभी-कभी एक दो पुस्तकों के नाम भी नहीं बता पाते। इसके अतिरिक्त आजकल जिस प्रकार साहित्य के विविध पक्षों के प्रस्तुतीकरण की नवीन शैली अपनायी जा रही है उससे हम अपने आपको कोसों दूर पाते हैं।

उत्तरी भारत एवं विशेषतः राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश एवं देहली में स्थापित जैन ग्रन्थागारों में लाखों पाण्डुलिपियां संग्रहीत है। श्री महावीर क्षेत्र के साहित्य शोध विभाग द्वारा हस्तलिखित शास्त्रों की जो पांच भागों में ग्रन्थ सूचियां प्रकाशित हुई है उनसे हमारे विशाल साहित्य के दर्शन हो सके है तथा पचासों विद्वानों को साहित्यिक क्षेत्र में कार्य करने की प्रेरणा मिली है। लेकिन प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत एवं हिन्दी में जिन आचार्यों एवं विद्वानों ने अनेकों ग्रन्थों की संरचना की है उनके विषय में सामान्य परिचय के अतिरिक्त उनका अभी तक न तो हम मूल्यांकन कर पाये हैं और न उनकी मूलकृतियों को प्रकाशित ही कर सके हैं।

गत कुछ वर्षों से ऐसी ही किसी एक संस्था की आवश्यकता को अनुभव किया जा रहा था जो योजना बद्ध ढंग से समूचे भाषागत जैन साहित्य का प्रकाशन कर सके। अक्टूबर ७६ में अकस्मात् श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी का नाम सामने आया और संस्था का यही नाम रखना उचित समझा। नामकरण के साथ ही एक पंचवर्षीय योजना भी तैयार की।

सर्व प्रथम जैन कवियों द्वारा निबद्ध हिन्दी साहित्य को प्रकाशित करने का विचार सामने आया क्योंकि संवत् १४०१ से लेकर १६०० तक हिन्दी एवं राजस्थानी में जिस प्रकार के विपुल साहित्य का निर्माण किया गया वह सभी दृष्टियों से महत्व-पूर्ण है और उसके विस्तृत परिचय की महती आवश्यकता है। हिन्दी भाषा में जिस प्रकार जायसी, सूरदास, मीरा, तुलसीदास, रसखान, बिहारी, दादू, रज्जब, जैसे पचासों कवि हुये जिनके काव्यों के विविध पक्षों पर शोध कार्य हो चुका है और आगे भी होता रहेगा तथा जिनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व को नये-नये आयामों के आधार परखा जा रहा है लेकिन इस प्रकार से प्रकाशित होने वाली पुस्तकों में जैन कवियों का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता और यदि कहीं मिलता भी है तो वह एकदम संक्षिप्त एवं अपूर्ण होता है। जैन कवियों में सधारु, राजसिंह, ब्रह्म जिनदास, ज्ञान-भूषण, बूचराज, ब्रह्म रायमल्ल, विद्याभूषण, त्रिभुवनकीर्ति, समयसुन्दर, यशोधर, रत्नकीर्ति, सोमसेन, बनारसीदास, भगवतीदास, भूधरदास, द्यानतराय, बुधजन, रूपचन्द, बुलाकीदास, किशनसिंह, दौलतराम जैसे कितने ही महाकवि हैं जिन्होंने हिन्दी में सैकड़ों रचनायें निबद्ध की और उसके विकास में अपना सर्वाधिक योगदान दिया लेकिन इनमें सधारु राजसिंह, बनारसीदास एवं दौलतराम जैसे कुछ कवियों को छोड़ शेष के सम्बन्ध हम स्वयं अन्धेरे में हैं। इसलिये इन कवियों के जीवन एवं व्यक्तित्व के अध्ययन के साथ ही तथा उनकी कृतियों के मूल भाग को सम्पादित एवं प्रकाशित करने की अतीव आवश्यकता है। मूल कृतियों के बिना कोई भी विद्वान् कवियों के मूल्यांकन के कार्य में आगे नहीं बढ़ सकता। और न आज शोधार्थी विभिन्न भण्डारों में जाकर उनकी मूल पाण्डुलिपियों के अध्ययन का कष्ट साध्य परिश्रम करना चाहता है।

इसलिये प्रथम पंचवर्षीय के अन्तर्गत २० भागों में कम से कम पचास जैन कवियों का जीवन परिचय तथा उनके कृतित्व का सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत करना ही इस महावीर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना का मुख्य उद्देश्य निश्चित किया गया है।

इन कवियों के काव्यों के सूक्ष्म अध्ययन के साथ-साथ उनकी प्रमुख कृतियां भी प्रकाशित की जावेंगी। अकादमी के प्रथम भाग में महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति को लिया गया है। दोनों ही कवि विक्रम की १७वीं शताब्दि के प्रथम चरण के कवि हैं और जिनका साहित्यिक योगदान बहुत ही महत्वपूर्ण रहा है।

अकादमी द्वारा पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत निम्न प्रकार पुस्तकों के प्रकाशन की संख्या रहेगी।

वर्ष १९७८	पुस्तक संख्या २
१९७९	४
१९८०	४
१९८१	४
१९८२	५
	२०

इस योजना के अन्तर्गत जिन कवियों पर प्रकाशन कार्य होगा उनके नाम निम्न प्रकार हैं :—

१. महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति
२. कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि
३. महाकवि ब्रह्म जिनदास एवं प्रतापकीर्ति
४. महाकवि वीरचन्द एवं महिचन्द
५. विद्याभूषण, ज्ञानसागर एवं जिनदास पाण्डे।
६. ब्रह्म यशोधर एवं भट्टारक ज्ञानभूषण
७. भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र
८. कविवर रूपचन्द, जगजीवन एवं ब्रह्म कपूरचन्द
९. महाकवि भूधरदास एवं बुलाकीदास
१०. जोधराज गोदीका एवं हेमराज

११. महाकवि द्यानतराय

१२. भगवतीदास एवं भाऊकवि

१३. कविवर खुशालचन्द काला एवं अजयराज पाटनी

१४. कविवर किशनसिंह, नथमल विलाला एवं पाण्डे लालचन्द

१५. कविवर बुधजन एवं उनके समकालीन कवि

१६. कविवर नेमिचन्द एवं हर्षकीर्ति

१७. भैया भगवतीदास एवं उनके समकालीन कवि

१८. कविवर दौलतराम एवं छत्तदास

१९. मनराम, मन्नासाह एवं लोहट

२०. २० वीं शताब्दि के जैन कवि

२० भागों में उक्त कवियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सम्यक् अध्ययन प्रस्तुत किया जावेगा। इसके अतिरिक्त प्रत्येक कवि की मूल कृतियों के पाठ भी उनमें रहेंगे। ऐसे कवियों एवं साहित्य निर्माताओं की संख्या कम से कम ५० होगी।

महावीर ग्रन्थ अकादमी की प्रथम पंचवर्षीय योजना करीब २ लाख रुपये की अनुमानित की गयी है जिसके अन्तर्गत २० भाग प्रकाशित किये जावेंगे। प्रत्येक भाग २५० से ३०० पृष्ठ का होगा। इस प्रकार अकादमी ५-६ हजार पृष्ठों का साहित्य प्रथम पांच वर्षों में अपने पाठकों को उपलब्ध करायेगी। इस योजना की क्रियान्विति के लिये संचालन समिति के ५१ सदस्य जिनमें संरक्षक, अध्यक्ष, कार्याध्यक्ष उपाध्यक्ष एवं निदेशक सम्मिलित हैं, होंगे तथा कम से कम ५०० विशिष्ट सदस्य बनाये जावेंगे। विशिष्ट सदस्यों से २०१) रु० तथा संचालन समिति के सदस्यों से (पदाधिकारियों के अतिरिक्त) कम से कम ५०१) रु० लिये जावेंगे। मुझे यह लिखते हुये बड़ी प्रसन्नता होती है कि समाज में साहित्य प्रकाशन की इस योजना का स्वागत हुआ है तथा अब तक संचालन समिति की सदस्यता के लिये एवं विशिष्ट सदस्यता के लिये १०० से अधिक महानुभावों की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। इस प्रकार अकादमी का कार्य चल पड़ा है। अकादमी की संरक्षकता के लिये मैंने श्रावक शिरोमणि स्व० साहु शान्तिप्रसाद जी जैन से अकादमी की योजना भेजते हुये जब निवेदन किया तो वे योजना से अत्यधिक प्रभावित हुये और एक सप्ताह में ही उन्होंने अपनी स्वीकृति भेज दी। मुझे बड़ा खेद है कि उसके कुछ महीने पश्चात् ही

उनका अकस्मात स्वर्गवास हो गया और वे इसके एक भी प्रकाशन को नहीं देख सके लेकिन मुझे यह लिखते हुये प्रसन्नता है उन्हीं के सुपुत्र साहू अशोक कुमार जी जैन ने हमारे विशिष्ट आग्रह पर अकादमी का संरक्षक बनने की स्वीकृति दे दी है साथ ही में अपना पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन भी दिया है। इसी प्रकार जब मैंने श्रीमान सेठ गुलाबचन्द जी साहब गंगवाल से उपाध्यक्ष बनने की स्वीकृति चाही तो उन्होंने भी तत्काल ही अपनी स्वीकृति भिजवादी। इसी तरह श्रीमान् लाला अजीतप्रसाद जी जैन ठेकेदार देहली का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने सर्व प्रथम विशिष्ट सदस्यता के लिये और फिर विशेष आग्रह करने पर अकादमी के उपाध्यक्ष के लिये अपनी स्वीकृति भिजवादी।

अकादमी की स्थापना के सम्बन्ध में जब मैंने श्रीमान् सेठ कन्हैयालाल जी सा० जैन पहाड़िया,मद्रास वालों से बात चलायी और उनसे उसकी अध्यक्षता स्वीकार करने के लिये आग्रह किया तो उन्होंने अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुये दूसरे ही दिन बातचीत करने के लिये कहा। मै एवं वैद्य प्रभुदयाल जी कासलीवाल भिषगाचार्य दोनों ही दूसरे दिन उनके पास पहुंचे तो उन्होंने अकादमी के कार्य को आगे बढ़ाने के लिये कहा और उसका अध्यक्ष बनना भी स्वीकार कर लिया। इसी तरह श्रीमान् सेठ कमलचन्द जी कासलीवाल एवं श्री कन्हैयालाल जी सेठी ने भी उपाध्यक्ष बनने की जो स्वीकृति दी है उसके लिये हम उनके आभारी हैं। अकादमी के सदस्य बनाने के कार्य में मुझे जिनका विशेष सहयोग मिला उनमें श्रीमती सुदर्शना देवी जी छाबड़ा, वैद्य प्रभुदयाल जी भिषगाचार्य, श्रीमती कोकिला जी सेठी, पं० अमृतलाल जी दर्शनाचार्य वाराणसी एवं श्री गुलाबचन्द जी गंगवाल, श्री महेशचन्द जी जैन, डॉ० चान्दमल जैन एवं डॉ० कमलचन्द सोगाणी उदयपुर के नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। मैं इन सभी महानुभावों का हृदय से आभारी हूं जिन्होंने संचालन समिति अथवा विशिष्ट सदस्यता के रूप में अपनी स्वीकृति भेजी है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि समाज के साहित्य प्रेमी महानुभाव समूचे हिन्दी जैन साहित्य के प्रकाशन में भागीदार बनकर सहयोग देने का कष्ट करेंगे।

साहित्य प्रकाशन के इस कार्य में कितने ही विद्वानों ने सम्पादक के रूप में और कितने ही विद्वानों ने लेखक के रूप में अपना सहयोग देने का आश्वासन दिया है। श्री महावीर अकादमी की इस योजना में हम अधिक से अधिक विद्वानों का सहयोग लेना चाहेंगे। अभी तक देश एवं समाज के कम से कम ३० विद्वानों की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। ऐसे विद्वानों में डा० सत्येन्द्र जी जयपुर, डा० रामचन्द्र

जी द्विवेदी उदयपुर, डा० दरबारीलाल जी कोठिया वाराणसी, डा० गंगाराम गर्ग, डा० महेन्द्र सागर प्रचंडिया, डा० प्रेमचन्द रांवका जयपुर, डा० प्रेमचन्द जैन, पं० अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ, डा० हीरालाल जी माहेश्वरी, पं० मिलापचन्द जी शास्त्री, पं० भंवरलाल जी न्यायतीर्थ एवं डा० नरेन्द्र भानावत जयपुर का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है।

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल
निदेशक एवं प्रधान सम्पादक

विषय-सूची

१.	अध्यक्ष की ओर से	....	iii–iv
२.	लेखक की कलम से	....	v–vi
३.	दो शब्द	डॉ० सत्येन्द्र	vii–x
४.	अकादमी का परिचय	....	xi–xvi
५.	महाकवि ब्रह्म रायमल्ल जीवन-परिचय एवं मूल्यांकन	....	१–१३६
६.	भविष्यदत्त चौपई	ब्रह्म रायमल्ल	१३७–१८०
७.	परमहंस चौपई	"	१८१–१९८
८.	श्रीपालरास	"	१९९–२३८
९.	प्रद्युम्नरास	"	२३९–२६६
१०.	कविवर भ० त्रिभुवनकीर्ति जीवन-परिचय एवं मूल्यांकन	....	२६७–२९०
११.	जम्बूस्वामीरास	त्रिभुवनकीर्ति	२९१–३५६

पूर्व पीठिका

जैनाचार्यों, भट्टारकों एवं विद्वानों का भारतीय साहित्य को समृद्ध एवं सशक्त बनाने में विशेष योगदान रहा है। भारतीय संस्कृति के स्वर में स्वर मिलाकर उन्होंने देश की सभी भाषाओं में विशाल साहित्य का निर्माण किया और उसके विकास में चार चांद लगाये। उन्होंने न किसी भाषा विशेष से राग किया और न द्वेषवश किसी भारतीय भाषा में साहित्य निर्माण को बन्द किया। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी जैसी राष्ट्रभाषाओं तथा राजस्थानी, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलगू एवं कन्नड़ जैसी प्रादेशिक भाषाओं के विकास में योग दिया। जैन कवियों ने काव्य, पुराण, सिद्धान्त, अध्यात्म, कथा, ज्योतिष, आयुर्वेद, गणित, छन्द एवं अलंकार जैसे विषयों पर सैकड़ों ग्रन्थ लिखकर साहित्य सेवा का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। जैन कवि जन-जन में बौद्धिक चेतना जागृत करने में कभी पीछे नहीं रहे और किसी न किसी विषय पर साहित्य निर्माण करते रहे। देश के जैन ग्रन्थागारों में जो विशाल साहित्य उपलब्ध होता है वह जैन आचार्यों एवं विद्वानों के साहित्य प्रेम का स्पष्ट द्योतक है। इन ग्रन्थागारों में संग्रहीत साहित्य अत्यधिक व्यापक एवं समृद्ध है। यद्यपि अब तक सकड़ों कृतियां प्रकाशित की जा चुकी हैं लेकिन यह प्रकाशन तो उस विशाल साहित्य का एक अंश मात्र है। वास्तव में जैन ग्रन्थागार साहित्य के विपुल कोष हैं तथा उनमें संग्रहीत साहित्य देश की महान् निधि है।

हिन्दी में भी जैन विद्वानों ने उस समय लिखना प्रारम्भ किया जब उसमें लिखना पांडित्य से परे समझा जाता था और वे भाषा के पंडित कहलाते थे। यह भेदभाव तो महाकवि तुलसीदास एवं बनारसीदास के बाद तक चलता रहा। हिन्दी में जैन कवियों ने रास संज्ञक रचनाओं से काव्य निर्माण प्रारम्भ किया। जब अपभ्रंश भाषा का देश में प्रचार था तब भी इन कवियों ने अपनी दूरदर्शिता के कारण हिन्दी में भी अपनी लेखनी चलाई और साहित्य की सभी विधाओं को पल्लवित करते रहे और उनमें संस्कृति एवं समाज की मनोदशा का यथार्थ चित्रण करने लगे। जिनदत्त-चरित (सं० १३५४) एवं प्रद्युम्नचरित (सं० १४११) जैसी कृतियां अपने युग की खुली पुस्तकें हैं। जैन कवियों ने हिन्दी की सबसे अधिक एवं सबसे लम्बे समय तक सेवा की तथा उसमें अबाध गति से साहित्य निर्माण करते रहे। लेकिन हिन्दी विद्वानों की जैन ग्रन्थागारों तक पहुंच नहीं होने के कारण वे उनका मूल्यांकन नहीं

कर सके और जब हिन्दी साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास लिखा गया तब जैन भण्डारों में संग्रहीत विशाल हिन्दी साहित्य को पं० रामचन्द्र शुक्ल जैसे महारथी विद्वान् ने यह लिख कर साहित्य की परिधि से बाहर निकाल दिया कि वह केवल धार्मिक साहित्य है और उसमें साहित्यिक तत्त्व विद्यमान नहीं है। रामचन्द्र शुक्ल की इस एक पंक्ति ने जैन विद्वानों द्वारा निर्मित हिन्दी साहित्य का बड़ा भारी अहित किया। उसका फल आज भी उसे भुगतना पड़ रहा है।

समय ने पल्टा खाया। जैन ग्रन्थागारों के ताले खुलने लगे तथा विद्वानों का उस ओर ध्यान जाने लगा। शनैः शनैः जैनाचार्यों का विशाल साहित्य बाहर आने लगा। सर्वप्रथम अपभ्रंश साहित्य पर विद्वानों का ध्यान गया और धनपाल के 'भविसयत्तचरिउ' की पाण्डुलिपि प्राप्त होते ही साहित्यिक जगत में हलचल मच गयी क्योंकि इसके पूर्व हिन्दी के विद्वानों ने समूचे अपभ्रंश साहित्य को ही लुप्त प्रायः साहित्य घोषित कर दिया था। अपभ्रंश के महाकाव्य पउमचरिउ (स्वयंभु) रिट्ठणेमिचरिउ, महापुराण, जम्बूसामिचरिउ जैसे महाकाव्यों का जब पता चला तो महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने रामचन्द्र शुक्ल के विरुद्ध झण्डे गाड़ दिये और महाकवि स्वयंभू के पउमचरिउ को हिन्दी का प्रथम महाकाव्य घोषित कर दिया। इसके पश्चात् और भी विद्वानों का उस ओर ध्यान गया और उन्होंने जैन कवियों के निर्मित काव्यों का मूल्यांकन करके उन्हें हिन्दी के श्रेष्ठ महाकाव्यों की कोटि में ला बिठाया। ऐसे विद्वानों में स्वर्गीय डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, स्वर्गीय डा० माता प्रसाद गुप्त, डा० रामसिंह तोमर, एवं डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के नाम उल्लेखनीय हैं। हिन्दी के वर्तमान मूर्द्धन्य विद्वानों में डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का नाम इस दिशा में सर्वाधिक उल्लेखनीय है जिन्होंने अपनी पुस्तक "हिन्दी साहित्य का आदिकाल" में हिन्दी जैन साहित्य के विषय में जो पंक्तियां लिखी हैं वे निम्न प्रकार हैं—

"इधर जैन अपभ्रंश चरित काव्यों की जो विपुल सामग्री उपलब्ध हुई है वह सिर्फ धार्मिक सम्प्रदाय के मुहर लगाने मात्र से अलग कर दी जाने योग्य नहीं है। स्वयम्भू, चतुर्मुख, पुष्पदन्त और धनपाल जैसे कवि केवल जैन होने के कारण ही काव्यक्षेत्र से बाहर नहीं चले जाते। धार्मिक साहित्य होने मात्र से कोई रचना साहित्य कोटि से अलग नहीं की जा सकती। यदि ऐसा समझा जाना लगे तो तुलसीदास का रामचरितमानस भी साहित्य क्षेत्र में अविवेच्य हो जाएगा और जायसी का पद्मावत भी साहित्य-सीमा के भीतर नहीं घुस सकेगा।"[1]

श्री महावीर क्षेत्र के द्वारा राजस्थान के जैन ग्रन्थागारों के सूचीकरण कार्य से अपभ्रंश एवं हिन्दी कृतियों को प्रकाश में लाने में बहुत योग मिला। इससे

१. हिन्दी साहित्य का आदिकाल—पृष्ठ ११ प्रथम संस्करण १९५२

अपभ्रंश की पचासों कृतियाँ प्रकाश में आ सकी। सन् १९५० में जब इस क्षेत्र की ओर से एक प्रशस्ति संग्रह प्रकाशित किया गया तो अपभ्रंश के विशाल साहित्य की ओर विद्वानों का ध्यान गया और हिन्दी के मूर्द्धन्य विद्वानों ने उस अज्ञात साहित्य को हिन्दी के लिये वरदान माना। 'प्रशस्ति संग्रह' प्रकाशन के पश्चात् डा० हरिवंश कोछड़ ने अपभ्रंश साहित्य पर अपना शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया जिसमें उसके महत्त्व पर प्रथम बार अच्छा प्रकाश डाला तथा अपभ्रंश साहित्य को हिन्दी का ही पूर्वकालिक साहित्य स्वीकार किया। डा० हीरालाल जैन, एवं डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये ने अपभ्रंश की कृतियों को प्रकाश में लाने की दृष्टि से अत्यधिक महती सेवा की और महाकवि पुष्पदन्त के तीन ग्रन्थों को प्रकाश में लाने में सफलता प्राप्त की।

गत २५ वर्षों में हिन्दी जैन कवियों एवं उनके काव्यों पर देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में जो शोध कार्य हुआ है और वर्तमान में हो रहा है वह यद्यपि एक रूप में सर्व कार्य ही है फिर भी इससे जैन हिन्दी विद्वानों एवं उनकी कृतियों को प्रकाश में आने में बहुत सहायता मिली है और हिन्दी के शीर्षस्थ विद्वान् यह अनुभव करने लगे हैं कि जैन विद्वानों किकृतियों को केवल धार्मिक साहित्य के बहाने साहित्य जगत् से दूर रखना उनके साथ अन्याय होगा। इसलिये उसको भी वही स्थान प्राप्त होना चाहिये जो अन्य हिन्दी कवियों के साहित्य को प्राप्त है।

जैन कवियों के विशाल साहित्य को देखते हुये अभी तक जो कवि सामने आ सके हैं वे तो 'आटे में नमक' के बराबर ही कहे जा सकते हैं। हिन्दी जैन साहित्य विशाल है और उसकी विशालता के मूल्यांकन के लिये हजारों पृष्ठ भी कम रहेंगे। अभी तो ऐसे सकड़ों कवि है जिनकी कृतियों का ग्रन्थ सूचियों के अतिरिक्त कहीं कोई नामोल्लेख भी नहीं हुआ है। मूल्यांकन की बात का प्रश्न ही सामने नही आया। ब्रह्म जिनदास जैसे कवियों की रचनाओं को प्रकाशित करने के लिये वर्षों की साधना चाहिये और हजारों पृष्ठों का मैटर छापने के लिये चाहियें।

ब्रह्म रायमल्ल एक ऐसे ही हिन्दी कवि हैं जिनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों ही महत्त्वपूर्ण होते हुये भी अभी तक अज्ञात अवस्था को प्राप्त हैं। प्रस्तुत पुस्तक में हम उनके एवं उनके समकालीन (संवत् १६०१ से १६४० तक) होने वाले अन्य कवियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर सामान्य रूप से प्रकाश डालने का प्रयास कर रहे हैं। हमारा यह प्रयास कितना सफल रहता है इसका मूल्यांकन तो विद्वान् ही कर सकेंगे।

तत्कालीन युग

संवत् १६०१ से १६४० तक का युग हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल विभाजन की दृष्टि से भक्तिकाल में आता है। मिश्रबन्धु विनोद में इस काल को

प्रौढ़ माध्यमिक काल (संवत् १५६१ से १६८० तक) में समाहित किया गया है।[२] पं० रामचन्द्र शुक्ल इस काल को पूर्ण मध्यकाल-भक्तिकाल (संवत् १३७५ से १७००) के रूप में अभिव्यक्त किया है।[३] आचार्य श्यामसुन्दरदास ने सम्वत् १४०० से १७०० तक के काल को भक्ति युग का काल स्वीकार किया है।[४] इनसे आगे होने वाले डा० सूर्यकान्त शास्त्री ने इस काल को तारुण्य काल कह कर सम्बोधित किया है। डा० रामकुमार वर्मा ने हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ संवत् ७५० से मानते हुए सम्वत् १३७५ से १७०० तक के काल को भक्तिकाल का युग कहा है। इसके पश्चात् होने वाले सभी विद्वानों ने संवत् १७०० तक के काल को भक्तिकाल की संज्ञा दी है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का आलोच्य काल संवत् १६०१ से १६४० तक का रखा गया है। जो भक्तिकाल के अन्तर्गत आता है। हिन्दी साहित्य के ये ४० वर्ष भक्तिकाल के स्वर्ण वर्ष कहे जा सकते हैं। सगुण भक्तिधारा के अधिकांश कवियों का साहित्यिक जीवन इन्हीं वर्षों में निखरा और उन्होंने इन्हीं वर्षों में देश को अपनी मौलिक कृतियाँ समर्पित की। महाकवि सूरदास, मीराबाई, तुलसीदास जैसे भक्त कवि इसी काल की भेंट हैं। इसलिये ब्रह्म रायमल्ल को हिन्दी के इन महान् कवियों के समकालीन होने का गौरव प्राप्त है। कवि की रचनाओं में भक्ति रस की जो छटा देखने को मिलती है वह सब उसी युग का प्रभाव है। क्योंकि जब चारों ओर भक्ति रस की धारा बह रही हो तब उस धारा से जैन कवि कैसे अछूते रह सकते थे। संवत् १६०१ से १६४० की अवधि में होने वाले प्रसिद्ध जैनेतर भक्त कवियों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है—

कुम्भनदास

ये अष्ट छाप के कवि थे तथा वल्लभाचार्य के प्रमुख शिष्य थे। इनकी जन्म तिथि सम्वत् १५२५ एवं मृत्यु तिथि सम्वत् १६२९ के आस-पास मानी जाती है। चौरासी वैष्णवों की वार्ता में लिखा है कि सम्राट् अकबर ने कुंभनदास को फतेहपुर सीकरी बुलवाया था। जिसका उल्लेख उन्होंने अपने एक पद में किया है।[५] इनके द्वारा निबद्ध भक्ति रस के पद कीर्तनसंग्रह, कीर्त्तन रत्नाकर, राग कल्पद्रुम आदि में मिलते हैं।

---

२. मिश्रबन्धु विनोद भूमिका पृष्ठ-६३

३. पं. रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ-६

४. पं. श्यामसुन्दरदास-हिन्दी साहित्य पृष्ठ २६-२१

५. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ ४१, ४३

५. भक्तन को कहा सीकरी सो काम
आवत जात पनहिया टूटी बिसरि गयो हरि नाम
जाको मुख देखे दुख लागे ताको करन परी प्रनाम।

तुलसीदास

महाकवि तुलसीदास देश के जनकवि थे। राम काव्य के सबसे बड़े प्रणेता महाकवि तुलसीदास ही माने जाते हैं। ब्रजभाषा एवं अवधि दोनों ही भाषाओं में इन्होंने समान रूप से लिखा है। इनकी जन्म तिथि के सम्बन्ध में अत्यधिक मतभेद है लेकिन डा० मानाप्रसाद गुप्त ने इनका जन्म सम्वत् १५८९ भादवा शुक्ला ११ माना है।[६] इनकी मृत्यु तिथि सम्वत् १६८० मानी जाती है। महाकवि ने अपनी केवल तीन रचनाओं में रचना संवत् दिया है वह निम्न प्रकार है--

रामचरितमानस	वि० सं० १६३१
पार्वतीमंगल	,, १६४३
कवितावली	,, १६८० के पूर्व

तुलसीदास की उक्त रचनाओं के अतिरिक्त रामगीतावली, सतसई, जानकी मंगल, कृष्णगीतावली, दोहावली आदि ११ रचनाएँ और हैं। महाकवि ने अपने आपको जिस प्रकार रामभक्ति में समर्पित कर दिया था वह जगत प्रसिद्ध है। रामचरितमानस उनका सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ है जिसका प्रत्येक शब्द भक्तिरस से ओतप्रोत है।

नन्ददास

नन्ददास अष्टछाप के कवियों में से श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। ये रामपुर ग्राम के निवासी थे। इन्हें महाकवि तुलसीदास का भाई बताया जाता है। डा० दीनदयाल गुप्त नन्ददास का जन्म संवत् १५९० के लगभग एवं मृत्यु संवत् १६४३ के लगभग मानते हैं। इनकी २६ रचनाएँ बतायी जाती है जिनमें रास पंचाध्यायी, रूपमंजरी, विरहमंजरी, रसमंजरी, सुदामाचरित, रुक्मणी मंगल, भंवर गीत, दानलीला आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त नन्ददास के स्फुट पद भी प्राप्त हैं।

परमानन्ददास

ये भी अष्टछाप के एक कवि थे। डा० दीनदयाल गुप्त के अनुसार ये जाति से कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे तथा इनका जन्म कन्नौज में हुआ था। इनकी जन्म तिथि संवत् १५५० तथा मृत्यु तिथि संवत् १६४० मानी जाती है। इनकी दो कृतियाँ दानलीला एवं ध्रुव चरित्र तथा बहुत से पद मिलते हैं।[७]

---

६. तुलसीदास, पृष्ठ १०९--११

७. मिश्र बन्धु विनोद पृष्ठ २३४

सूरदास

महाकवि सूरदास भक्तियुग के महान् कवि थे। ये वल्लभाचार्य के समकालीन थे। इनका जन्म संवत् १५३५ वैशाख सुदी ५ को तथा मृत्यु संवत् १६३८ के लगभग हुई थी। बादशाह अकबर ने इनसे मथुरा में भेंट की थी। सूरदास के पद देश में सर्वाधिक लोकप्रिय हैं और वे हजारों की संख्या में हैं। अब तक इनकी २४ रचनाओं की प्राप्ति हो चुकी है जिसमें से उल्लेखनीय रचनाएँ निम्न प्रकार है—

१. सूरसागर	२. भागवत भाषा
३. दशमस्कंध भाषा	४. सूरदास के पद
५. प्राणप्यारी	६. भंवर गीत
७. सूर रामायण	८. नागलीला
९. गोवर्धन लीला	१०. सूर पच्चीसी
११. सूरसागर सार	१२. सूरसारावली
१३. साहित्य लहरी	१४. सूरशतक
१५. दानलीला	१६. मानलीला

मीराबाई

मीराबाई राजस्थानी महिला भक्त कवि थी। मीराबाई के पद जन-जन को कण्ठस्थ है। "मीरा के प्रभु गिरधर नागर" पंक्तियाँ अत्यधिक लोकप्रिय हैं। मीराबाई का जन्म संवत् १५५५ से १५७३ तक तथा मृत्यु संवत् १६२० से १६३० के बीच हुई थी। बंगला भक्तमाला और सियाराम की हिन्दी भक्तमाला की टीकाओं में सम्राट अकबर और तानसेन का मीरा के दर्शनों को आने का तथा मीराबाई का वृन्दावन जाकर रूप गोस्वामी के दर्शन करने का उल्लेख है।

उक्त कुछ प्रमुख कवियों के अतिरिक्त आसकरनदास, कल्यानदास, कान्हरदास, कृष्णदास, केशवभट्ट, गिरिधर, गोपीनाथ, चतुरविहारी, तानसेन, सन्त तुकाराम, दामोदरदास, नागरीदास, नारायन भट्ट, माधवदास, रामदास, लालदास, विष्णुदास, आदि पचासों कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं। इन कवियों ने हिन्दी में भक्तिरस की रचनाएँ निबद्ध कर देश में भक्तिरस की धारा प्रवाहित की थी और इसके माध्यम से सारे देश को भावात्मक एकता में निबद्ध किया था। यही नहीं देश में वर्गभेद, जातिभेद की भावना में भी परिवर्तन ला दिया था।

जैन कवि

इन वर्षों में जैन कवि भी पर्याप्त संख्या में हुए और वे भी देश में व्याप्त भक्ति धारा से अछूते नहीं रह सके। उनकी कृतियां भी भक्ति-रस में आप्लावित

होकर सामने आयी और इस दृष्टि से भट्टारक शुभचन्द्र, पाण्डे राजमल्ल, भट्टारक वीरचन्द्र, सुमतिकीर्ति, ब्रह्म विद्याभूषण, ब्रह्म रायमल्ल, उपाध्याय साधुकीर्ति, भीखमकवि, कनकसोम, वाचक मालदेव, नवरंग, कुशललाभ, हरिभूषण, सकलभूषण आदि के नाम उल्लेखनीय है। इन कवियों ने रास, फागु, वेलि, चौपाई एवं पदों के माध्यम से हिन्दी साहित्य की महती सेवा की है। इन कवियों में से हम सर्वप्रथम ब्रह्म रायमल्ल का परिचय उपस्थित कर रहे हैं क्योंकि संवत् १६०१ से १६४० तक की अवधि में ब्रह्म रायमल्ल हिन्दी के प्रतिनिधि कवि रहे हैं।

ब्रह्म रायमल्ल

हमारे आलोच्य कवि ब्रह्म रायमल्ल हिन्दी के इसी स्वर्णयुग के प्रतिनिधि कवि थे। तत्कालीन जनभावनाओं का समादर करके कवि ने अपनी रचनाएं लिखी और उन्हें मुक्त रूप से स्वाध्याय प्रेमियों को समर्पित किया। कवि ने अपने काव्यों को जन-जन के काव्य बनाने का प्रयास किया और लोक प्रचलित शैली में लिखकर एक बहुत बड़ी कमी की पूर्ति की। ब्रह्म रायमल्ल की रचनाएँ इतनी अधिक लोकप्रिय रही कि राजस्थान के अधिकांश ग्रन्थालयों में वे आज भी अच्छी संख्या में मिलती है। जैन समाज में ब्रह्म रायमल्ल सदैव बहुचर्चित कवि रहे और उनकी कृतियों का स्वाध्याय बड़ी रुचिपूर्वक किया जाता रहा।

ब्रह्म रायमल्ल की अधिकांश रचनाएँ राससंज्ञक रचनाएँ हैं जिनमें अधिकतर कथापरक हैं। कवि ने श्रीपाल, सुदर्शन भविष्यदत्त, हनुमान, नेमिनाथ जैसे महापुरुषों के जीवन पर आख्यान परक रचनाएँ निबद्ध करके तत्कालीन समाज को एक नयी दिशा प्रदान की तथा उन महापुरुषों के अनुकूल अपने जीवन निर्माण को प्रोत्साहित किया, साथ ही में तीर्थंकरों के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति भावना को पुनर्जीवित किया। यद्यपि महाकवि ने सूरदास एवं कबीर जैसे पद नहीं लिखे और न निर्गुण एवं सगुण जैसी भक्ति धारा में बहे। उन्होंने तो अपनी रचनाओं के माध्यम से यही सिद्ध करने का प्रयास किया कि तीर्थंकरों की पूजा, भक्ति एवं स्तवन से अपार पुण्य की प्राप्ति होती है तथा दुष्कर्मों का नाश होता है।[८] श्रीपाल, सुदर्शन, प्रद्युम्न, भविष्यदत्त, हनुमान जैसे महापुरुषों का जीवन तीर्थंकरों की भक्ति एवं श्रद्धा से उपार्जित पुण्य की खुली पुस्तकें हैं। उनका जीवन आगे आने वाली सन्तति के लिये प्रेरणा स्रोत है। यही कारण है कि इन महापुरुषों के जीवन को ब्रह्म रायमल्ल के पूर्ववर्ती एवं उत्तरवर्ती सभी कवियों ने अपने-अपने काव्यों में सर्वाधिक स्थान दिया है।

---

८. भाव भगति जिण दीया हो, करि स्नान पहरे शुभ चीर।
जिण चरण पूजा करी हो, भारी हाथ लई भरि नीर ॥

ब्रह्म रायमल्ल का जन्म कब और कहाँ हुआ । वे किस देश एवं जाति के थे और किस प्रेरणा से उन्होंने गृहत्याग किया इस सम्बन्ध में हमें अभी तक कोई सामग्री उपलब्ध नहीं हुई । इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा कहाँ प्राप्त की तथा विवाह होने के पश्चात् गृह त्याग किया अथवा विवाह के पूर्व ही ब्रह्मचारी बन गये, इसके सम्बन्ध में भी न तो स्वयं कवि ने अपनी रचनाओं में उल्लेख किया है और न किसी अन्य विद्वान् ने अपनी रचना में ब्रह्म रायमल्ल का स्मरण किया है । इनके नाम के पूर्व 'ब्रह्म' शब्द मिलने से सम्भवतः रायमल्ल ब्रह्मचारी थे और अन्तिम समय तक ये ब्रह्मचारी ही बने रहे इसके अतिरिक्त हम अधिक कुछ नही कह सकते ।

पं० परमानन्द जी शास्त्री[९] एवं डा० प्रेमसागर जैन[१०] ने ब्रह्म रायमल्ल का परिचय देते हुए भक्तामर स्तोत्र वृत्ति के कर्त्ता ब्रह्म रायमल्ल एवं रास ग्रन्थों के निर्माता ब्रह्म रायमल्ल को एक ही माना है । 'भक्तामर स्तोत्र वृत्ति' में दूसरे ब्रह्म रायमल्ल ने जो अपने माता-पिता आदि का नामोल्लेख किया है उसी को आलोच्य ब्रह्म रायमल्ल के माता पिता मान लिया है । 'भक्तामर स्तोत्र वृत्ति' के कर्त्ता ब्रह्म रायमल्ल हूंबड वंश के भूषण थे । इनके पिता का नाम मह्य एवं माता का नाम चम्पा था । ये जिन चरण कमलों के उपासक थे ।[११] इन्होंने महासागर तटभाग में समाश्रित ग्रीवापुर के चन्द्रप्रभु चैत्यालय में वर्णी कर्मसी के वचनों से 'भक्तामर स्तोत्र वृत्ति' की रचना विक्रम संवत् १६६७ में समाप्त की थी ।

हमारे विचार से ब्रह्म रायमल्ल नाम वाले दो भिन्न भिन्न विद्वान् हुए । प्रथम रायमल्ल रास ग्रन्थों के रचयिता थे जिन्होंने हिन्दी में काव्य रचना की तथा जिनकी संवत् १६१५ से संवत् १६३६ तक निर्मित एक दो नहीं किन्तु पूरी १५ रचनाएं

---

९. जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह—प्रस्तावना-पृष्ठ संख्या ५१

१०. जैन शोध और समीक्षा—पृष्ठ संख्या

११. श्रीमद् हूंबड-वंश-मंडणमणि र्मह्येति नामा वणिक्
तद्भार्या गुणमंडिता व्रतयुता चम्पामितीताभिधा ।।६।।
तत्पुत्रो जिनपादकंजमधुपो रायादिमल्लोव्रती ।
चक्रे वृत्तिमिमां स्तवस्य नितरां नत्वा श्री (सु) वादींदुकं ।।७।।
सप्तषष्ठ्यंकिते वर्षे षोडशाख्ये हि संवते (१६६७)
आषाढ-श्वेतपक्षस्य पंचम्यां बुधवारके ।।८।।
ग्रीवापुरे महासिन्धोस्तटभाग समाश्रिते
प्रोत्तुंगदुर्ग संयुक्ते श्री चन्द्रप्रभसद्मनि ।।९।।
वर्णिनः कर्मसी नाम्नः वचनात् मयकाऽरचि ।
भक्तामरस्य सद्वृत्तिः रायमल्लेन वर्णिना ।।१०।।

मिलती हैं। सभी कृतियाँ भक्ति परक है तथा रास एवं कथा संज्ञक हैं सभी में उन्होंने अपना समान परिचय दिया है। इन कृतियों के आधार पर ब्रह्म रायमल्ल मुनि अनन्तकीर्ति के शिष्य थे जो भट्टारक रत्नकीर्ति के पट्टधर शिष्य थे। इन दोनों नामों के अतिरिक्त हिन्दी की किसी भी कृति में उन्होंने अपना अधिक परिचय नहीं दिया।[12] अपनी अन्तिम कृति 'परमहंस चौपई' में भी ब्रह्म रायमल्ल ने अपने गुरु एवं दादागुरू का वही नामोल्लेख किया है केवल मुनि सकलकीर्ति का नामोल्लेख और किया है और उसीका दूसरा नाम मुनि रत्नकीर्ति था जिसको कवि ने अमृतोपम कहा है।

मूल संघ जग तारण हार, सरब गच्छ गरवो आचार।
सकलकीर्ति मुनिवर गुनवंत, ता समाहि गुन लही न अंत ।।६४०।।
तिह को अमृत नांव अति चंग, रतनकीर्ति मुनि गुणा अभंग।
अनन्तकीर्ति तास सिष आन, बोलै मुख तैं अमृत बान।
तास शिष्य जिन चरणा लीन, ब्रह्म रायमल्ल बुधि को हीन ।।

उक्त प्रशस्तियों के आधार पर आलोच्य ब्रह्म रायमल्ल मूलसंघ एवं सरस्वती गच्छ के भट्टारक रत्नकीर्ति के प्रशिष्य एवं मुनि अनन्तकीर्ति के शिष्य थे। ये ब्रह्म रायमल्ल राजस्थानी विद्वान् थे तथा जिनका ढूंढाहड प्रदेश प्रमुख केन्द्र था।

दूसरे ब्रह्म रायमल्ल गुजरात के सन्त थे जो संस्कृत के विद्वान् थे। ये हूंबड जाति के थे तथा जिनके पिता मह्य एवं माता चम्पादेवी थी। भक्तामर स्तोत्र वृत्ति इनकी एक मात्र कृति है जिसको उन्होंने संवत् १६६७ में ग्रीवापुर के चन्द्रप्रभ चैत्यालय में समाप्त की थी। संस्कृत के विद्वान् ब्रह्म रायमल्ल ने न तो अपने गुरू का उल्लेख किया है और न मूलसंघ के सरस्वती गच्छ से अपना कोई सम्बन्ध बतलाया है। इस प्रकार दोनों रायमल्ल भिन्न भिन्न विद्वान् है। एक १७वीं शताब्दि के पूर्वार्द्ध के हैं और दूसरे रायमल्ल उसी शताब्दि के उत्तरार्ध के विद्वान् हैं। हमारे मत का एक और सबल प्रमाण यह है कि प्रथम रायमल्ल की संवत् १६३६ के पश्चात् कोई रचना नहीं मिलती। यदि दोनों रायमल्लों को एक ही मान लिया जावे तो तो प्रथम रायमल्ल ३१ वर्ष तक साहित्य निर्माण से अपने आपको अलग रखे और फिर ३१ वर्ष पश्चात् 'भक्तामर स्तोत्र वृत्ति' लिखे इसे हम सम्भव नही मान सकते।

---

12. श्री मूलसंघ मुनि सरसुती गछ, छोडी हो चारि कषाय निभंछ।
अनन्तकीर्ति गुरु विदितो, तासु तणौ सिषि कीयो जी बखाण।
ब्रह्म रायमल्ल जगि जाणियौ, स्वामी जी पार्श्वनाथ को जी थान।
—नेमिनाथ रास

क्योंकि जिस कवि ने पहिले ३१ वर्षों में १५ रचनाएँ निर्मित की हों वह आगे ३१ वर्षों तक चुपचाप बैठा रहे यह संभव प्रतीत नहीं होता ।

जीवन परिचय

ब्रह्म रायमल्ल के प्रारम्भिक जीवन का कोई इतिवृत्त नहीं मिलता । कवि ने किस अवस्था में साधु जीवन स्वीकार किया इसके बारे में भी हमें जानकारी नहीं मिलती लेकिन ऐसा मालूम पड़ता है कि कवि १०–१२ वर्ष की अवस्था में ही भट्टारकों अथवा उनके शिष्य प्रशिष्यों के निर्देशन में चले गये । मुनि अनन्तकीर्ति को जब कवि की व्युत्पन्नमति एवं शास्त्रों के उच्च अध्ययन की रुचि का पता चला तो उन्होंने इन्हें अपना शिष्य बना लिया और अपने पास ही रख कर इन्हें प्राकृत, संस्कृत एवं हिन्दी का अध्ययन कराने लगे । सामान्य अध्ययन के पश्चात् कवि को शास्त्रों का अध्ययन कराया गया और ऐसे योग्य शिष्य को पाकर वे स्वयं गौरवान्वित हो गये । मुनि अनन्तकीर्ति भट्टारक रत्नकीर्ति के पट्टधर शिष्य थे । भट्टारक रत्नकीर्ति नागौर गादी के प्रथम भट्टारकों में से हैं जो भट्टारक जिनचन्द्र के पश्चात् हुए थे । यदि मुनि अनन्तकीर्ति इन्हीं भट्टारक जी के शिष्य थे तब तो ब्रह्म रायमल्ल का सम्बन्ध नागौर गादी से होना चाहिये । कवि ने ज्येष्ठजिनवर व्रत कथा को संवत् १६२५ में सांभर में समाप्त किया था ।[13] लेकिन कवि संघ में नहीं रह कर स्वतन्त्र रूप से ही विहार करते रहे, यह निश्चित है ।

उक्त सब तथ्यों के आधार पर कवि का जन्म संवत् १५८० के आस-पास होना चाहिये । यदि १५ वर्ष की अवस्था में भी इनका भट्टारकों से सम्पर्क मान लिया जावे तो इन्हें ग्रन्थों के गम्भीर अध्ययन में कम से कम १० वर्ष तो लग ही गये होंगे । २५ वर्ष की अवस्था में ये एक अच्छे विद्वान् की श्रेणी में आ गये । प्रारम्भ में इनको प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों के पढ़ने एवं लिपि करने का काम दिया गया और यह कार्य ब्रह्म रायमल्ल बिना संकोच के तथा विद्वत्तापूर्ण तरीके से करने लगे । संवत् १६१३ में कवि द्वारा लिखा हुआ एक गुटका उपलब्ध हुआ है जिससे भी मालूम पड़ता है कि कवि को सर्वप्रथम ग्रन्थों के लेखन का कार्य दिया गया था । इस गुटके के कुछ प्रमुख पाठ निम्न प्रकार हैं—

13. मूलसंघ भव तारण हार, सारद गच्छ गरबो संसार ।
रत्नकीर्ति मुनि अधिक सुजाण, तास पाटिमुनि गुणह निधान ।।७१।।
अनन्तकीर्ति मुनि प्रगटयौ नाम, कीर्ति अनन्त विस्तरी ताम ।
मेघ बूंद जे जाइ न गिनी, तास मुनि गुण जाइ न भणी ।।७२।।
तास शिष्य जिणचरणां लीन, ब्रह्म रायमल्ल मति को हीन ।
इण कथा कौ कियौ प्रकास, उत्तम क्रिया मुणीश्वर दास ।।७३।।

चौबीस ठाणा चर्चा	१–२८
जीव समास	२९–५९
सुप्पय दोहा	६०–६७
परमात्म प्रकाश	९२
रत्नकरण्डश्रावकाचार	—

उक्त गुटके में पृष्ठ ६० पर निम्न प्रशस्ति दी हुई है—

श्री । श्री संवतु १६१३ वर्षे जेष्ठ बदि ८ शनी वारे लिखितं ब्रह्म रायमल्ल ।। देहली ग्रामे ।

इसी गुटके के पृष्ठ ९३ पर भी ब्रह्म रायमल्ल ने अपना निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

इति परमात्मप्रकाश समाप्त । प्रभुदास कृत ।। सुभं भवतु ।। श्री ।। छ ।। श्री ।। लिखितं ब्रह्म रायमल्लु ।।

इस प्रकार उक्त गुटका ब्रह्म रायमल्ल द्वारा लिपि बद्ध किया हुआ है। इस समय कवि देहली में थे और वहाँ ग्रन्थों की प्रतिलिपि करने का कार्य करते थे। कवि ने इस गुटके के पूर्व एवं इसके पश्चात् और कितने ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ की थी इसका अभी कोई उल्लेख नहीं मिला है लेकिन इतना अवश्य है कि कवि ने अपना साहित्यिक जीवन ग्रन्थों की प्रतिलिपि करने के साथ प्रारम्भ किया था। उक्त गुटके में कवि ने न तो अपने गुरु के नाम का उल्लेख किया है और न किसी श्रावक के नाम का, जिसके अनुरोध पर उक्त गुटका लिखा गया था। इसलिये यह भी कहा जा सकता है कि उसने यह गुटका स्वयं अपने अध्ययन के लिये लिखा हो।

साहित्य साधना

ग्रन्थों की प्रतिलिपि करते-करते ब्रह्म रायमल्ल साहित्य निर्माण की ओर प्रवृत्त हुए और सर्व प्रथम इन्होंने नेमीश्वररास की रचना को हाथ में लिया। साहित्य निर्माण का कार्य सम्भवतः देहली छोड़ने के बाद ही प्रारम्भ किया था। देहली के बाद ये स्वतन्त्र रूप से विहार करने लगे और सर्व प्रथम झुंझुनु में जाकर इन्होंने अपना स्वतंत्र लेखन कार्य प्रारम्भ किया। झुंझुनु उस समय साहित्यिक केन्द्र था। देहली के पास होने से वहाँ जैन साधुओं का आवागमन बराबर रहता था। कवि ने उक्त नगर में संवत् १६१५ की श्रावण बुदी १३ बुधवार के शुभ दिन 'नेमीश्वररास' का समापन दिवस मनाया[१५] तथा अपनी प्रथम कृति को विद्वानों एवं स्वाध्याय

१४. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची चतुर्थ भाग, पृष्ठ ७६५

१५. अहो सोलाहसै पन्द्रह रच्यौ रास, सावलि तेरसि सावण मास।
बरतै जी बुधि वासो भलो, अहो जैसी जी बुधि दीन्ही अवकास।

प्रेमियों की सेवा में समर्पित की। कवि ने 'नेमीश्वररास' के अन्त में विद्वानों से विनय पूर्वक इतना अवश्य निवेदन किया कि जैसी उसकी बुद्धि थी उसी के अनुसार उसने ग्रन्थ रचना की है इसलिये पंडितजन यदि कहीं त्रुटि हो तो उसके लिये क्षमा करें।

'नेमीश्वररास' काव्य कृति का अच्छा स्वागत हुआ तथा कवि से इस तरह की दूसरी रचना निबद्ध करने के लिये चारों ओर से आग्रह किया जाने लगा। एक ओर कवि का काव्य रचना के प्रति उत्साह, दूसरी ओर जनता का आग्रह, इन दोनों के कारण ९ महिने पश्चात् ही वैशाख कृष्णा नवमी शनिवार के शुभ दिन कवि ने "हनुमन्त कथा" को छन्दोबद्ध करके दूसरी काव्य रचना करने का गौरव प्राप्त किया।[१६] हनुमन्त कथा एक बृहद् रचना है। इसमें कवि ने हनुमान की जीवन गाथा को बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। काव्य के रचना स्थान वाला पद कवि सम्भवतः देना भूल गये या फिर इसे भी झुंझुनु नगर में ही कविता बद्ध करने के कारण नगर का नाम दुबारा नहीं दिया। उक्त दोनों रचनाओं से कवि की कीर्ति चारों ओर फैल गयी और श्रावक गण उन्हें अपने यहाँ सादर आमन्त्रित करने लगे। इसके पश्चात् ८–९ वर्ष के दीर्घकाल तक कवि की कोई बड़ी रचना उपलब्ध नहीं होती। जिन लघु रचनाओं में संवत् नहीं दिया हुआ है हो सकता है उनमें से अधिकांश रचनाएँ इसी समय की हों।

संवत् १६२५ में कवि का सांभर नगर में विहार होने का उल्लेख "ज्येष्ठ जिनवर कथा" की प्रशस्ति से मिलता है। प्रस्तुत कृति सांभर प्रवास में ही निबद्ध की गयी थी। यह एक लघु कृति है जिसमें आदिनाथ के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। इसकी एक मात्र प्रति अजमेर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार के एक गुटके में संग्रहीत है।[१७] सांभर नगर में कवि ने जिरणलाडू गीत का और निर्माण किया। यह रचना भी छोटी है जिसमें केवल १७ पद्य हैं।[१८]

उक्त संवतोल्लेखवाली तृतीय रचना समाप्ति के पश्चात् कवि का सांभर से विहार हो गया और वे मारवाड के अंचल में विहार करने लगे। नागौर की भट्टारक गादी से सम्बन्ध होने के कारण वे इस प्रदेश को कैसे भुला सकते थे। यद्यपि ब्रह्म रायमल्ल स्वाभिमानी सन्त थे और भट्टारकों के पूर्णतः अधीन नहीं रहना चाहते थे फिर भी उन्होंने शाकम्भरी प्रदेश एवं नागौर प्रदेश को अपने उपदेशों से पावन किया और संवत् १६२८ में वे हरसोरगढ़ पहुंच गये जो नागौर प्रदेश का प्रमुख नगर था।

---

१७. देखिये राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची पंचम भाग, पृष्ठ सं. ६४५

१८. देखिये राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची तृतीय भाग, पृष्ठ सं. ११७

यहीं उन्होंने 'प्रद्युम्न रास' को समाप्त किया और अपनी रचना में एक कड़ी और जोड़ दी। प्रद्युम्न रास कवि की उत्तम कृतियों में से है। यह रचना १९५ पद्यों में पूर्ण होती है। प्रस्तुत रास में कवि ने अपना जो परिचय दिया है उसकी कुछ पंक्तियां निम्न प्रकार है—

> **हो मूलसंघ मुनि प्रगटो लोई, हो अनन्तकीर्ति जाणौ सहु कोइ।**
> **तासु तणौ सिषि जाणिज्यौ जी, हो ब्रह्म रायमलि कीयौ बखाणी।**
> **हो सोलहसै अठवीस विचारो, हो भादव सुदी दुतीया बुधवारो।**
> **गढ हरसौर महाभला जी, तिहैं भलौ जिणेसुरथानो।**
> **श्रीवंत लोग बसै भला जी, हो देव सास्त्र गुरु राखे मानो ॥१९४॥**

हरसोर नागौर प्रदेश के इतिहास एवं संस्कृति दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण नगर माना जाता रहा है।[१९] यह नगर संवत् १६२८ में अजमेर सूबा में सम्मिलित था।

हरसोर के पश्चात् महाकवि का काव्य रचना की ओर फिर ध्यान गया और वे एक के पश्चात् दूसरी रचना निर्मित करने लगे। संवत् १६२९ में वे मारवाड़ से विहार कर धौलपुर आ गये। धौलपुर का क्षेत्र आज के समान उस समय भी संभवतः डाकू आतंकित क्षेत्र था इसलिये सन्त रायमल्ल ने इस प्रदेश के लोगों में धार्मिक भावना जाग्रत करने के लिये विहार किया और पथ भ्रष्टों को वापिस गले लगाया। धौलपुर में आने के पश्चात् उन्होंने "सुदर्शन रास" को छन्दोबद्ध किया और संवत् १६२९ में बैशाख सुदी सप्तमी के शुभ दिन अपनी नवीनतम काव्यकृति को साहित्य जगत् को भेंट किया।[२०] धौलपुर पर उस समय बादशाह अकबर का शासन था। 'सुदर्शनरास' कवि की उत्तम कृतियों में से है। धौलपुर के बीहड़ क्षेत्र में विहार करने के पश्चात् ब्रह्म रायमल्ल आगरा, भरतपुर एवं हिण्डौन होते हुये रणथम्भौर पहुंचे। यह दुर्ग सदैव वीरता एवं शौर्य के लिये प्रसिद्ध गढ़ माना जाता रहा तथा साहित्य एवं संस्कृति का भी सैकड़ों वर्षों तक केन्द्र रहा। जब रायमल्ल ने इस क्षेत्र में प्रवेश किया तो उस समय वहां बादशाह अकबर का शासन था। चारों ओर शांति थी। महाकवि ने इस दुर्ग को कितने समय तक अपनी चरण रज से पावन किया इस विषय में तो कोई उल्लेख नहीं मिलता लेकिन संवत् १६३० के प्रारम्भ में जब इस दुर्ग में प्रवेश किया तो जैन समाज के साथ-साथ सभी दुर्ग निवासियों ने ब्रह्म रायमल्ल का भावभीना स्वागत किया। कवि ने उस समय के दुर्ग का जो वर्णन किया है उससे ऐसा लगता है कि वहां के निवासी युद्धों की ज्वाला को भूल चुके थे

---

१९. Ancient Cities of Rajasthan page 329.
२०. अहो सोलहसै गुणतीसे वैसाखि, सातै जी राति उजाले जी पाखि।

और अब शांतिपूर्ण जीवन यापन करने लगे थे।[२१] यहां रहने के कुछ समय पश्चात् ही संवत् १६३० की अषाढ़ शुक्ला १३ शनिवार को उन्होंने श्रीपाल रास की रचना समाप्त करने का गौरव प्राप्त किया। समाप्ति के दिन अष्टान्हिका पर्व था इसलिये उस दिन समस्त समाज ने मिलकर नयी रासकृति का स्वागत किया। श्रीपाल रास कवि की बड़ी रचनाओं में से है तथा उसमें २९८ छन्द हैं।

रणथम्भौर ढूंढाड प्रदेश का ही भाग माना जाता है। इसलिये कवि वहाँ से विहार करके सांगानेर की ओर चल पड़े। मार्ग में आने वाले अनेक नगरों एवं ग्रामों के नागरिकों को सम्बोधित करते हुये वे संवत् १६३३ में सांगानेर आ पहुंचे सांगानेर ढूंढाड प्रदेश का प्रमुख नगर था तथा प्रदेश की राजधानी आमेर से केवल १४ मील दूरी पर स्थित था। सांगानेर को जैन साहित्य एवं संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहने का गौरव प्राप्त रहा है। उस समय राजा भगवन्तदास ढूंढाड के शासक थे तथा अपने युवराज मानसिंह के साथ राज्य का शासन भार सम्हालते थे। सांगानेर आने के पश्चात् कविवर ब्रह्म रायमल्ल ने अपनी सबसे बडी कृति भविष्यदत्त चौपई को समाप्त करने का श्रेय प्राप्त किया। संयोग की बात है कि भविष्यदत्त चौपई की समाप्ति के दिन भी अष्टान्हिका पर्व चल रहा था। उस दिन शनिवार था तथा संवत् १६३३ की कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी की पावन तिथि थी। नगर में चारों ओर अष्टान्हिका महोत्सव मनाया जा रहा था। इसलिये ब्रह्म रायमल्ल की उक्त रचना का विमोचन समारोह भी बड़े उत्साह के साथ आयोजित किया गया। उस समय तक तक ब्रह्म रायमल्ल की ख्याति आकाश को छूने लगी थी और साहित्यिक जगत् में उनका नाम प्रथम पंक्ति में आ चुका था। वे कवि से महाकवि बन चुके थे तथा उनकी सभी रचनायें लोकप्रिय हो चुकी थी।

सांगानेर में पर्याप्त समय तक ठहरने के पश्चात् महाकवि ब्रह्म रायमल्ल चाटसू की ओर विहार कर गये और काठाडा भाग के कितने ही ग्रामों को अपने प्रवचनों का लाभ पहुंचाते हुए वे टोडारायसिंह जा पहुंचे। टोडारायसिंह का दूसरा नाम तक्षकगढ भी है। यह दुर्ग भी राजस्थान के विशिष्ट दुर्गों में से एक दुर्ग है। १७ वीं शताब्दि में टोडारायसिंह जैन साहित्य एवं संस्कृति की दृष्टि से ख्याति प्राप्त केन्द्र रहा। देहली एवं चाटसू गादी के भट्टारकों का यहां खूब आवागमन रहा। ब्रह्म रायमल्ल यहां आने के पश्चात् साहित्य संरचना में लग गये और कुछ ही समय पश्चात् संवत् १६३६ ज्येष्ठ बुदी १३ शनिवार के दिन 'परमहंस चौपई' की रचना समाप्त करके उसे स्वाध्याय प्रेमियों को स्वाध्याय के लिये विमुक्त कर दिया।

---

२१. हो रणथभ्रमर सोभै कवि लास, भरीया नीर ताल चहुं पास।
बाग विहरि बाडी घणी, हो धन कण सम्पत्ति तणो निधान।

कवि की यह आध्यात्मिक कृति है तथा रूपक काव्य है जिसमें परमहंस परमात्मा का विशद वर्णन किया गया है। संवतोल्लेख वाली कवि की यह अन्तिम कृति है। इसमें ६५१ दोहा चौपई छन्द हैं।

संवत् १६३६ के पश्चात् ब्रह्म रायमल्ल और कितने वर्षों तक जीवित रहे तथा उनकी [illegible] साधना किस दिशा में चलती रही इस सम्बन्ध में अभी तक कोई उल्लेख नहीं मिल सका है। कवि की अब तक १५ रचनाएँ उपलब्ध हो चुकी है जिनमें ८ रचनाएँ संवतोल्लेख वाली है जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है शेष ७ रचनाओं में रचना समाप्ति का कोई उल्लेख नहीं मिलता इसलिये उनकी कोई निश्चित रचना तिथि के बारे में नहीं कहा जा सकता। लेकिन इन सात रचनाओं में जम्बूस्वामिरास के अतिरिक्त सभी रचनाएँ लघु रचनाएँ हैं इसलिये हमारा अनुमान है कि ये सभी कृतियाँ संवत् १६१५ से १६३६ के बीच में किसी समय रची गयी होंगी।

रचनाएँ

महाकवि की अब तक १५ कृतियाँ उपलब्ध हो चुकी हैं जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—

१. नेमीश्वररास	रचना संवत् १६१५
२. हनुमन्त कथा	रचना संवत् १६१६
३. ज्येष्ठिजिनवर कथा	रचना संवत् १६२५
४. प्रद्युम्न रास	रचना संवत् १६२८
५. सुदर्शन रास	रचना संवत् १६२९
६. श्रीपाल रास	रचना संवत् १६३०
७. भविष्यदत्त चौपई	रचना संवत् १६३३
८. परमहंस चौपई	रचना संवत् १६३६

बिना संवत् वाली रचनाएँ

९. जम्बूस्वामी चौपई
१०. निर्दोष सप्तमी कथा
११. चिन्तामणि जयमाल
१२. पंच गुरु की जयमाल
१३. जिनलाडू गीत
१४. नेमिनिर्वाण
१५. चन्द्रगुप्त के सोलह स्वप्न

उक्त सभी रचनाएं हिन्दी की बहुमूल्य कृतियां है तथा भाषा, शैली एवं विषय वर्णन आदि सभी दृष्टियों में उल्लेखनीय है। इन कृतियों का सामान्य परिचय निम्न प्रकार है—

१. नेमीश्वररास

यह कवि की उपलब्ध कृतियों में प्रथम कृति है। काव्य रचना में प्रवेश करने के साथ ही कवि ने नेमिनाथ स्वामी के जीवन पर रास काव्य लिख कर उन्हीं के चरणों में उसे समर्पित किया है। इससे यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि कवि नेमिनाथ के अत्यधिक भक्त थे। कवि की उस समय आयु क्या होगी इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। वैसे कवि का साहित्यिक जीवन संवत् १६१० से १६४० तक का रहा है। वे अपने पूरे साहित्यिक जीवन में ब्रह्मचारी ही रहे और प्रत्येक काव्य के अन्त में उन्होंने अपने आपको अनन्तकीर्ति के शिष्य के रूप में प्रस्तुत किया। अनन्तकीर्ति मूलसंघ भट्टारक परम्परा में मुनि थे और उन्हीं के शिष्य थे कविवर रायमल्ल जिन्होंने अपने गुरु का प्रस्तुत काव्य में उल्लेख किया है।

नेमीश्वररास राजस्थानी भाषा की कृति है। इसमें नेमिनाथ का जीवन चरित अंकित है। नेमिनाथ २२ वें तीर्थंकर थे और भगवान श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे। नेमिनाथ को ऐतिहासिक महापुरुष घोषित करने की ओर खोज जारी है। नेमि यदुवंशी राजकुमार थे जिनके पिता समुद्रविजय थे। उनकी माता का नाम शिवादेवी था। एक रात्रि को माता ने सोलह स्वप्नों देखे। स्वप्नों का फल पूछने पर समुद्रविजय ने अपूर्व लक्षणों युक्त पुत्र होने की बात कही। कार्तिक शुक्ला ६ को देवों ने मिलकर गर्भ कल्याणक मनाया।

श्रावण शुक्ला अष्टमी के दिन तीर्थंकर नेमिनाथ का जन्म हुआ। नगर में विभिन्न उत्सव मनाये गये। आरती उतारी गयी और मोतियों का चौक मांडा गया। स्वर्ग लोक के इन्द्र देव देवियों के साथ नगर में आये और बाल तीर्थंकर को सुमेर पर्वत पर ले जाकर पाण्डुक शिला पर अभिषेक किया। इन्द्र अपने एक हजार आठ कलशों से जल भर कर नेमिकुमार का अभिषेक किया। दूध-दही, घृत एवं रस के साथ औषधियों से मिले हुये जल से भगवान का न्हवण किया।

सहस अठोतर इन्द्र कै हाथि, अवर भरि लीया जो देवतां साथि।
जा ही जीऊ धरि ढलिया, अहो दुध वही घृत रस कीजो धार।
सार सुगंधी जी ऊषधी, अहो न्हवण भयौ शिव देवकुमार ॥२५॥

तीर्थंकर का नाम नेमिकुमार रखा गया इस सम्बन्ध में कवि ने निम्न पद्य लिखा है —

अहो वज्र की सुइयो जो छेदिया कान, वस्त्र आभरण दिनें बहुमान ।
अहो किया जो महोछा अतिघरणा, वंदना भक्ति करि वारं-जी-वार ।।
अहो कर जोडे सुरपति रुणी, नाम दिये तसु नेमिकुमार ।।२८।।

नेमिकार दोज के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगे । सुख एवं ऐश्वर्य में समय जाते देर नहीं लगती । नेमिकुमार कब युवा हो गये इसका किसी को पता भी नहीं चला । एक दिन श्रीकृष्ण वन क्रीड़ा को जाने लगे तो नेमिकुमार उनके साथ हो गये । अनेक यादव कुमार भी साथ में थे तथा वे सभी हाथी रथ एवं पालकी में सवार थे । यही नहीं अन्तःपुर का पूरा परिवार साथ में था ।

वे वन में विविध प्रकार की क्रीड़ा में मस्त हो गये । एक युवती झूला झूलने लगी तो दूसरी हाथ में डण्डा लेकर उसे मारने लगी । एक युवती यह देख कर खिलखिलाकर हंसने लगी तो दूसरी अपने पति का नाम लिखने में ही मस्त हो गयी ।

एक तीया झूलें झूलणा, एक सखी हणें साट ले हाथि ।
एक सखी हा हा करें, अहो एक सखी लिहि कंत को नाव ।।

वहीं पर एक विशाल एवं गहरी बावड़ी थी । वह गंगा के समान निर्मल पानी से ओत-प्रोत थी । नेमिकुमार ने उस बावड़ी में खूब स्नान किया । जब वे स्नान करके बावड़ी से बाहर निकले तो अपना दुपट्टा डाल दिया तथा अपनी भावज जामवती से उसे शीघ्र धोने का निवेदन किया । जामवती को वह अच्छा नहीं लगा और कहा कि यदि नारायण श्रीकृष्ण ऐसी बात सुन लें तो तुम्हें नगर से बाहर निकाल दें । नारायण के पास शंख, एवं धनुष जैसे शस्त्र है तथा नाग शैया पर वे सोते हैं । यदि तुम्हारे में भी बल हो, तथा इनको प्राप्त कर सको तो वह उनके कपड़े धो सकती है । नेमिकुमार को जामवती की बात अच्छी नहीं लगी । वन क्रीडा से लौटने के पश्चात् नेमि नारायण के घर गये और वहां उनका शंख पूर दिया । शंख पूरने से तीनों लोकों में खलबली मच गयी । नेमिकुमार ने नारायण के धनुष को भी चढ़ा दिया । वहीं श्रीकृष्णजी आ गये । वे भौचित होकर नेमिकुमार को डाटने लगे । दोनों में मल्ल युद्ध होने लगा । लेकिन श्रीकृष्ण इन्हें नहीं हरा सके ।

नारायण ने समुद्र विजय के घर आकर शिवादेवी के चरण स्पर्श किये तथा कहा कि नेमिकुमार युवा हो गये हैं इसलिये शीघ्र ही उनका विवाह करना चाहिये तथा यह भी कहा कि उग्रसेन की पुत्री नेमिकुमार के योग्य कन्या है । माता ने श्रीकृष्ण के कहने पर अपनी स्वीकृति दे दी । इसके पश्चाद् नारायण ने राजा उग्रसेन के समक्ष राजुल के विवाह का प्रस्ताव रखा । उग्रसेन ने माना कि घर पर बैठे गंगा

आ गयी और उन्होंने अपने भाग्य को सराहा। ज्योतिषी को बुलाया गया तथा दोनों के नक्षत्र देखे गये। उग्रसेन एवं श्रीकृष्ण ने ज्योतिषी से निम्न प्रकार कहा—

अहो लेहु शुभ लग्न जिव होई कुसलात, रोग विजोगम सांचरौ।
स्वामि राहु सनिशर टालि जै लाभ, श्री नेमिजिनेस्वर पाय नमूं ।।४८।।

ज्योतिषी ने दोनों के निम्न प्रकार लग्न देखा—

अहो माडि जी खडहि कियौ बखाण, ग्यारहु सुध गुरु राजल थान।
नेमि नौ सात उरवि लौ, अहो लिख्यौ जी लगन गौणी ज्योतिगो यां ज्ञान।

सम्बन्ध निश्चित हो गया तथा श्रीकृष्ण जी के आंचल में पान सुपारी हल्दी और नारियल समर्पित कर दी गयी।

भगवान श्रीकृष्ण जी द्वारा सुपारी स्वीकार करते ही चारों ओर हर्ष छा गया। बाजे बजने लगे तथा घर घर में बधावा गाये जाने लगे। षट् रस व्यंजन बनाये गये तथा सभी राजा एक पंक्ति में भोजन करने लगे। भोजन के पश्चात् तांबूल दिये गये। वस्त्राभूषण का तो कोई ठिकाना ही नहीं था। अन्त में कृष्ण जी को हाथ जोड़ कर विदा किया गया। लगन लेकर जब कृष्ण जी वापिस पहुंचे तो शिवा-देवी से नेमिकुमार के विवाह की तैयारियां करने को कहा। एक ओर सुन्दरियां गीत गाने लगी। तैल द्रव छिड़का जाने लगा तथा केसर कस्तूरी तथा फूलों से सारा राजमहल सुगन्धित होने लगा। दूसरी ओर विश्वस्त सेवकों को बुलाकर महिष, सुवर, सांभर, रोभ, सियाल आदि को एक बाड़ा में बन्द किये जाने का आदेश दिया गया।[1]

अहो तब लगु केसौ जी रच्यौ हो उपाउ, सेवक आपणा लीयाजी बुलाई।
वेग देव नमौ जी गम करौ, अहो छै लाहो महिष हरण सुवर–
सांबर रोभ सियाल, वेगि हो जाई बाडौ रचौ
अहो गौरण ओपजौ सेणि भोवाल ।।५५।।

नेमीकुमार की बारात में सभी यादव परिवार के अतिरिक्त कौरव, पांडव भी थे। बराती सभी सज धज कर चले। आंखों में कज्जल, मुख में पान, केशर चन्दन तथा कुंकुम के तिलक लगे हुये पालकी, रथ एवं हाथियों पर वे चले। लेकिन जब बारात चली तो दाहिनी ओर रासभ पुकारने लगा, रथ की ध्वजा फट गयी, कुत्ते ने कान फड़फड़ाया, तथा बिल्ली ने रास्ता काट दिया।

नेमिकुमार के सेहरा बांधा गया उनके मोतियों की माला लटक रही थी। कानों में कुंडल थे तथा मुकुट में हीरे जड़े हुये थे। उनके वस्त्र दक्षिण देश से विशेष रूप से मंगाये गये थे। जब बरात नगर में पहुंची तो बाजे बजने लगे। शंख ध्वनि होने लगी। बरात की अगुवानी हुई तथा महाराजा उग्रसेन ने नेमिकुमार से कृपा रखने के लिये निवेदन किया।

दूसरे दिन लग्न की तिथि आयी तो नेमिकुमार अपने परिजनों के साथ तोरण के लिये पहुंचे। उनके स्वागत में महिलाओं ने मंगल गीत गाये। राजुल ने भी अपना पूरा शृंगार किया।

अहो मंदिरि राजल करौ जी सिंगार, सोहै जी गलौ रत्नांइयौ हार।
नासिका मोती जी अति बण्यौ, अहो पाई नेवर महा सिरहा मैहं-मंद।
काना हो कुंडल अति भला, अहो मेरू दुहुं दिसो जिम सूर अर चंद।

नेमिकुमार जब तोरण द्वार पर पहुंचे तो उन्हें एक स्थान से अनेक पशुओं की करुण पुकार सुनाई दी। उनकी पुकार सुन कर वे चुपचाप नहीं रह सके और उसका कारण पूछा। जब नेमिकुमार को मालूम पड़ा कि ये पशु उन्हीं की बरात में आये हुये बरातियों के लिये हैं तो वे चिन्तित हो उठे और सम्पत्ति को पाप का मूल जान कर विवाह के स्थान पर वैराग्य लेने को अधिक उचित समझा और कंकन तोड कर गिरनार पर्वत पर चढ़ गये—

स्वामी जीव पसू सहु बीना जी छोडि, चाल्यौ जी फेरि तप नै रथ मोडि।
कोर्ध जी सुराह लीधी पालिकी, अहो जै जै कार भयो असमान।
सुरपति विनौ जी बोलै घणी, स्वामि आइ चढ्यौ गिरनारि गढ़ थानि।।७३।।

क्योंकि जहां जीव दया नहीं है वहां सब बेकार है—
जप तप संजम पाठ सहु, पूजा विधि व्योहार।
जीव दया विण सहु अफल, ज्यौ दुरजन उपगार।

लेकिन जब राजुल ने नेमिकुमार द्वारा वैराग्य धारण करने की बात सुनी तो वह मूर्छित होकर गिर पड़ी—

अहो गइ जी वचन सुणता मुरछाई, काटि जी बेलि जैसौ कुमलाई।
नाहिका धानक छाडिया, अहो मात पिता जब लाधो जी सार।
रुदन करौ अति सिर धुणैं, अहो कीना जी सीतल उपचार।।७५।।

जब राजुल के माता पिता ने उसका दूसरे कुमार के साथ विवाह करने की बात कही तो राजुल ने उसे भारतीय संस्कृति के विरुद्ध बतलाया तथा नेमिकुमार के अतिरिक्त सभी को अपने पिता एवं भाई के समान मानने का अपना निश्चय प्रकट किया। वह अपनी एक सहेली को लेकर गिरनार पर्वत पर गयी जहां नेमिनाथ मुनि दीक्षा धारण कर तपस्या में लीन हो गये थे। राजुल ने नेमिनाथ से वापिस घर चलने को कहा, अपने सौन्दर्य की प्रशंसा की। विभिन्न १२ महिनों में होने वाले

प्राकृतिक उपद्रवों की भयंकरता पर प्रकाश डाला एवं विविध प्रकार से अनुनय विनय किया—

अहो ऐसा जो बारह मास कुमार, रिति रित भोग कीजै अतिसार ।
आवता जन्म की को गिणै, अहो धर भै जो लाज लखाजै जो होइ ।
पापि लांघण करि मरी स्वामी मुवा थे लाकडी देई न कोई ।।६७।।

नेमिनाथ ने राजुल की वेदना बड़े ध्यान से सुनी लेकिन वे उससे जरा भी प्रभावित नहीं हुये । उन्होंने संसार की असारता, मनुष्य जीवन का महत्त्व, जगत् के पारस्परिक सम्बन्धों के बारे में विस्तृत प्रकाश डाला तथा वैराग्य लेने के निश्चय को दोहराया ।

राजुल नेमिनाथ की बातों से प्रभावित तो हुई लेकिन उसने स्त्रीगत भावों का फिर प्रदर्शन किया । लेकिन नेमिनाथ को वह प्रभावित नहीं कर सकी । नेमिनाथ की माता शिवादेवी भी वहीं आ गयी और उन्हें घर चल कर राज्य सम्पदा भोगने के लिये अपना अनुनय किया ।

अहो माता सिवदेवि जो नेमि नैं दे उपदेसि पुत्र सुकमाल तुंहुं बालक वैस ।
बिन वस घर में जी थिति करौ, अहो सुखस्यौ जी भोगवौ पिता को राज ।
दिख्या ही लेण वेला नहिं स्वामि चौथै हो आश्रमि आतमा काज ।।११४।।

माता शिवादेवी एवं नेमिनाथ में खूब वाद विवाद हुआ । माता ने विविध दृष्टान्तों से राज्य सम्पदा के सुख भोगने की बात कही जबकि नेमिनाथ जगत् के सुखों की असारता के बारे में दृष्टान्त दिये ।

माता पिता के पश्चात् बलभद्र, श्रीकृष्णजी एवं अन्य परिवार के मुखिया नेमिनाथ को समझाने आये लेकिन नेमिनाथ ने वैराग्य लेने का दृढ़ निश्चय प्रकट किया और अन्त में सावन शुक्ला ६ को वैराग्य ले लिया । तत्काल स्वर्ग से इन्द्रों ने आकर नेमिनाथ के चरणों की पूजा, भक्ति एवं वन्दना की । राजुल ने भी वैराग्य लेने का निश्चय किया और अपने आभूषण एवं वस्त्रालंकार उतार दिये तथा उसने आर्यिका की दीक्षा ले ली । वह विविध व्रतों एवं तप में लीन रहती हुई अन्त में मर कर १६ वें स्वर्ग में इन्द्र हो गयी । नेमिनाथ ने कैवल्य प्राप्त किया और देश में सैंकड़ों वर्षों तक विहार करके तथा अहिंसा, अनेकान्त एवं अन्य सिद्धान्तों का उपदेश देकर देश में अहिंसा धर्म का प्रचार किया और अन्त में गिरनार से ही मुक्ति प्राप्त की ।

प्रस्तुत काव्य ब्रह्म रायमल्ल की प्रथम कृति है । इसे कवि ने संवत् १६१५ सावन कृष्णा १३ बुधवार के शुभ दिन समाप्त किया था । नेमीश्वररास की रचना झुंझुनुं नगर में हुई थी जहाँ चारों ओर बाग बगीचे थे । महाजन लोग जहाँ पर्याप्त

संख्या में थे तथा जिसमें ३६ जातियाँ रहती थी। उस नगर के शासक चौहान जाति के थे जो अपने परिवार के साथ राज्य करते थे। नगर में श्री पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर था और वही नेमिश्वररास का रचना स्थान था। प्रशस्ति में कवि ने अपने आपको मूलसंघ सरस्वती गच्छ के मुनि अनन्तकीर्ति का शिष्य होना लिखा है। पूरी प्रशस्ति महत्वपूर्ण है जो निम्न प्रकार है—

श्री मूलसंघ मुनि सरसुती गछ, छांडी हो चारि कषाय निरगंछ।
अनन्तकीर्ति गुरु विदितो, तासु तणों सिषि कीयो जी बखाण।
ब्रह्म रायमल्ल जगि जाणियें, स्वामी जी पार्श्वनाथ को जी थानि ॥१४१॥

रचना काल—

अहो सोलाहसे पन्द्राह रच्यो रास, सावलि तेरसि सावण मास।
वरतै जी बुधि बारो भलो, ग्रहो जैसो जी बुधि दीन्हो अवकास।
पंडित कोई जी मत हसो, तैसी जी बुधि कीयो परगास ॥१४२॥

रचना स्थान—

बागबागी बणी नीकै जी ठाणि, बसै हो महाजन नम्र भाभीरणि।
पौणि छत्तीस लीला करै, गाम को साहिब जाति चौहाण।
राज करो परिवार स्यो, ग्रहो छहू वरसन को राखौ जी मान ॥१४३॥

छंद संख्या—

भण्यो जी रासो सिवदेवी का बालको, कडवाहो एक सौ ग्रधिक पैताल।
भाव जी भेद जुवा जुवा, छंद नामा इहु शब्द सुभवर्ण।
कर जोडै कवियण कहै, भव भव धर्म जिनेसुर सर्ण ॥१४४॥

श्री नेमिजिणेसर पय नमुं ॥

उक्त प्रशस्ति के अनुसार रास में १४५ कडवक छन्द होने चाहिये।

२. हनुमन्त कथा

प्रस्तुत कृति भी कवि की विस्तृत कृतियों में से है। भविष्यदत्त चौपई के समान इस रचना के भी हनुमन्तकथा, हनुमन्तरास एवं हनुमन्त चौपई आदि नाम मिलते हैं। हनुमान पौराणिक पुण्य पुरुषों में से एक है तथा उनकी कथा का प्रमुख उद्गम स्थान रविषेणाचार्य का पद्म पुराण है जो संस्कृत भाषा में है। हनुमान का जीवन समाज में लोकप्रिय रहा है इसलिये हनुमान के जीवन पर आधारित कितनी ही रचनाएँ मिलती हैं। प्रस्तुत कृति भी कवि की ऐसी एक लोकप्रिय कृति है। जिसकी कितनी ही प्रतियाँ राजस्थान के विभिन्न भण्डारों में संग्रहीत है।

ब्रह्म रायमल्ल ने कथा का प्रारम्भ चौबीस तीर्थंकरों की वन्दना से किया है। इसके पश्चात् सरस्वती का स्तवन किया गया है तथा अपनी निम्न शब्दों में लघुता प्रकट की है—

समरौ सरसति सामणि पाय, होइ बुधि तुम्ह तणी पसाइ ।
हौं मूरिख अति अपढ अयाण, पंडित जन ओह्या सु विहाण ।।१५।।
अक्षर पद नवि पाऊं भेद, लह्यो न अर्थ होइ बहु खेद ।
लघु दीर्घ आणुं नहीं वर्ण, करिस्या कहीं कथा आचर्ण ।।१६।।

इसके पश्चात् आचार्य कुन्दकुन्द का नमन करके कथा को प्रारम्भ किया गया है। सुमेरु के दक्षिण भाग की ओर विधाधरों की बस्ती थी। चारों ओर सघन हरियाली थी वनों में चारों ओर वृक्ष लगे हुये थे। सुपारी भी कमरख था तथा निंबु एवं आम के सघन वृक्ष, लौंग, अखरोट एवं जायफल में लदे हुये वृक्ष थे। कुंजा, मरवा एवं रायचंपा की बेलियां जुही, पाडल, बोलश्री, चमेली, एवं मुचकंद के लता एवं वृक्ष थे।

षोल सुपारी कमरख घणी, निंबु जां आवांकण सचिचिणि ।
मिरि विदाम लौंग अखरोट, बहुत जाइफल फले समाट ।।८।।
कुंजो मरवी साटी आइ, बेलि सिहाली चंपौ राइ ।
जुही पाडल बोलश्री कंद, केवड़ा कमयर मुचकंद ।।९।।

आदितपुर बहुत सुन्दर नगर था जिसके राजा का नाम प्रह्लाद था। उसके एक पुत्र था नाम था पवनकुमार। आदितपुर नगर सब तरह से सम्पन्न था। मंदिर थे, बाजार थे, बडे बडे व्यापारी थे। श्रावक गण धन धान्य से पूर्ण थे। एक दूसरे में ईर्ष्या नहीं थी। कहीं मल्लयुद्ध होता था तो कहीं अखाडा चलता था। घर घर विवाह होते रहते थे। नगर में मुनियों का आहार होता रहता था।

इसी भरत क्षेत्र में मेरु के पूर्व दिशा की ओर वसन्त नगर था उसका राजा महेन्द्र था तथा रानी का नाम इन्द्रदवनि था। अंजना उसकी पुत्री का नाम था। वह बहुत रूपवती थी। अंजना जब पूर्ण युवती हो गई तो राजा ने अपने चारों मंत्रियों से बुलाकर अंजना के लिये उचित वर की तलाश करने को कहा। प्रथम मन्त्री ने रावण से विवाह करने का प्रस्ताव किया। दूसरे मन्त्री ने रावण के पुत्र इन्द्रजीत एवं मेघनाद में से किसी एक के साथ विवाह करने के लिये कहा। तीसरे मन्त्री ने हिरणाभ के पुत्र अरिंद कुमार से करने की सलाह दी। चौथे मन्त्री ने पवनंजय के साथ विवाह करने का प्रस्ताव रखा। सभी सभासदों को अन्तिम प्रस्ताव अच्छा लगा।

कुछ दिनों पश्चात् अष्टान्हिका पर्व आ गया और सब विद्याधर अष्टान्हिका पूजा के निमित्त नन्दीश्वर द्वीप चले गये। वहां भक्तिपूर्वक पूजा होने लगी। वहीं

पर पवनकुमार के पिता प्रहलाद आ गये। दोनों राजा मिलकर अतीव प्रसन्न हुए—

> बहुत आनन्द बुहु मन भयो, ताको वर्णन जाइ न कहयो।
> कनक सिला सोभै अति भली, बैठा तहां भूपति अति बली।

राजा महेन्द्र ने अपनी पुत्री अंजना का राजा प्रहलाद के सामने प्रस्ताव रखा और कहने लगा—

> मुझ पुत्री सुन्दरि अंजनी, रूप विवेक कला बहु भणी।
> वर प्राप्ति सा कन्या भई, निस वासरि मुझ निद्रा गई।
> चित अधिक भई अधीर, तबधी [illegible] नीर।
> राज कुंवार देखे सब टोहि, बात विचार न आवें कोइ ॥५९॥
> हम ऊपरि करि दया पसाव, राखो बोल हमारो राव।
> आस तुम्हारैं चित्त सुहाइ, पवन अंजना दीजै ब्याहि ॥६०॥

अन्त में विवाह का निश्चय हो गया और शुभ मूहरत में दोनों का विवाह हो गया। एक महीने तक वहां बारात ठहरी।

लंका में रावण का शासन था। वह तीनखंड का सम्राट था। चारों दिशाओं में उसकी धाक थी। लेकिन पुंडरीक नगर के राजा वरुण अपने आपको अधिक शक्तिशाली मानते थे। इसलिये रावण ने उस पर विजय प्राप्त करने का निश्चय किया और अपना दूत उसके दरबार में भेजा। इसके पश्चात् दोनों की सेनाओं में युद्ध छिड़ा लेकिन रावण जीत नहीं सका। वह वापिस लंका आ गया और सेना एकत्रित करके युद्ध की पुनः तैयारी करने लगा। रावण ने प्रहलाद राजा को भी सेना लेकर बुलाया। पवनकुमार ने अपने पिता के समक्ष स्वयं जाने का प्रस्ताव रखा और पिता की स्वीकृति से सेना को साथ लेकर चल दिया। रात्रि होने पर सरोवर के पास पड़ाव डाल दिया। वहां पवनकुमार ने चकवी के विरह को देखा। पवनकुमार को अंजना की याद आ गयी जिसको उसने अकारण ही १२ वर्ष से छोड़ रखा था। अन्त में वह अपने मित्र की सहायता से तत्काल उसी रात्रि को अंजना से मिलने गया। अंजना से अपने किये पर क्षमा मांगी और दोनों ने रात्रि आनन्द से व्यतीत की। अंजना की प्रार्थना पर उसे एक स्वर्ण अंगूठी देकर पवनंजय वापिस युद्ध भूमि के लिये चल दिया।

अंजना गर्भवती हो गयी। चारों ओर चर्चा होने लगी। उसकी सास को जब मालूम पड़ा तो अंजना ने अपना स्पष्टीकरण दे दिया लेकिन किसी ने उस पर विश्वास नहीं किया और उसको अपने पिता के घर भेज दिया। पिता ने भी उसके चरित्र पर सन्देह किया और बहुत कुछ समझाने पर भी किसी बात पर भी

विश्वास नहीं किया और अंजना को देश निकाला दे दिया। होनहार ऐसा ही था। कवि ने ऐसी घटनाओं पर अपनी बहुत सुन्दर टिप्पणी दी है—

जा दिन आवै आपदा ता दिन ओल न कोइ।
मात पिता, कटुंब सहु ते फिरि बैरी होइ।
कंत सासु सुसरो पिता, रथ बल अधिक अनूप।
सुन्दरी निकली एकली, यो संसार सरूप ॥२७॥

अपने पिता की नगरी से अंजना अपनी एक दासी के साथ भयंकर वन में पहुंची। उसी वन में उसे एक मुनि के दर्शन हुए जिससे उसको बहुत कुछ सांत्वना मिली। उसने णमोकार मन्त्र का उच्चारण किया। मुनि ने भी उन्हें उपदेश दिया और विपत्ती में धैर्य धारण करने के लिये कहा। मुनि से अंजना ने अपनी विपत्ति का कारण पूछा। अंजना ने अपने पूर्व संचित पाप कर्मों का फल जानने के पश्चात् वह और उसकी दासी वन में रहने लगी। वहीं एक रात्रि को गुफा में अंजना ने पुत्र को जन्म दिया।

गुफा मध्य अति भयो उजास, मानिक दिणयर कियो प्रकास।
रूप कला गुण लहै न पार, परतखि..............काम अवतार ॥७९॥
विद्याधर कोटि दिपै तस देह, सोल कला चन्द्र मुख एह।
तेज पुंज बीजो दर बीर, महावज्र तसु चर्म सरीर ॥८०॥

उसी गुफा के ऊपर से एक विद्याधर विमान द्वारा सपत्नीक जा रहा था। जब उसे मालूम हुआ तो वह गुफा में जाकर अंजना एवं नवजात शिशु के सम्बन्ध में जानना चाहा। दासी द्वारा जब बात मालुम हुई कि वह तो उसका मामा ही है, वह तत्काल अंजना को अपने साथ ले गया और बालक का जन्मोत्सव मनाया। ज्योतिषी ने जन्म कुंडली बनायी और कहा कि यह बालक अपूर्व तेजस्वी होगा तथा अन्त में निर्वाण प्राप्त करेगा। मामा के विमान में पांचों बैठ कर चल दिये। बालक मामा के हाथ में था। विमान ऊपर चला जा रहा था कि मामा के हाथ से छूट कर वह नीचे गिर पड़ा। अंजना पर फिर विपत्ति आ गयी। नीचे जब विमान को उतारा तो देखा बालक प्रसन्न होकर अंगूठा चूस रहा है। अंजना की प्रसन्नता का पार नहीं रहा अन्त में वे सब अपने घर आ गये। अंजना अपने मामा के घर रहने लगी।

इधर पवनकुमार रावण से सम्मानित होने के पश्चात् वापिस अपने देश लौट आया। वहां आने पर जब उसे अंजना नहीं मिली तो वह तत्काल अपने साथी के साथ राजा महेन्द्र के यहां गया। जब वहां भी उसे अंजना नहीं मिली तो वह उसके विरह में उन्मत्त होकर चारों ओर वन, पर्वत एवं गुफाओं में उसकी तलाश करने लगा। लेकिन फिर भी उसे अंजना नहीं मिली। अन्त में उसके पिता, श्वसुर आदि

सभी उसे खोजते वहां आ गये और पवनंजय को अंजना मिलने की खुशखबरी सुनायी। कुछ समय पश्चात् पवन कुमार उसको साथ लेकर वापिस आदितपुर चला गया और वहां सुख पूर्वक राज्य करने लगा।

बहुत वर्षों पश्चात् रावण का फिर संदेश लेकर दूत आया और शीघ्र ही सेना लेकर वरुण को पराजित करने का आदेश दिया। हनुमान ने अपने पिता के साथ जाने का प्रस्ताव रखा। लेकिन पिता ने बालक हनुमान को युद्ध की भयानकता के बारे में बतलाया लेकिन उसने एक भी नहीं सुनी। अन्त में पिता ने उसे सम्मान के साथ विदा किया। हनुमान को नगर से निकलते ही शुभ शकुन हुये। कवि ने उन्हें निम्न शब्दों में गिनाया है—

> **भये सुगण सुभ चालत बार, आई बेध्या करै धोकार।**
> **बावो तीतर बाई माल, आई सारस सांड सियाल ॥११॥**
> **आंबो घूघू घूमें घणों, देहि मान रावण पति घणों।**
> **बावो सुणहो ठोकै कंध, बेगी करे शत्रु को बंध ॥१२॥**
> **बावं सिव करै वोकार, बावं रासभ बारंबार।**
> **आवो फिरि आई लोंगती, बांवें शत्रु हण सूपति ॥१३॥**

हनुमान ने वरुण की सेना को सहज ही परास्त कर दिया। इससे चारों ओर उसकी जय जय कार होने लगी। एक दिन हनुमान अपने दीवान के साथ बैठे हुये थे। एक दूत ने हनुमान के हाथ में पत्र दिया जिसमें उनसे कोकिंदा के राजा सुग्रीव की अत्यधिक सुन्दर पुत्री पद्मावती के साथ विवाह करने की प्रार्थना की गई थी। कुछ समय पश्चात् खरदूषण के मरने एवं संबुक के पतन के समाचार सुनकर हनुमान को भी दुःख हुआ।

पर्याप्त समय के पश्चात् हनुमान के पास पत्र लेकर फिर एक दूत आया पत्र में निम्न पंक्तियां थीं—

> **दूजा दिन आयो एक दूत, लिख्यो लेख दीनो हनुवंत।**
> **सीता हरण कही सहु बात, राम लखमन की कुशलात ॥५॥**
> **रामचन्द्र कीन्हो उपगार, सहु सुग्रीव सुण्यो व्योहार।**
> **राम छु आई आइ सुतार, सुणी सहु ते बात विचार ॥६॥**

पत्र को पढ़ कर हनुमान शीघ्र ही राम के पास गये। राम ने हनुमान का स्वागत किया और सीता हरण की बात बतलायी तथा तत्काल लंका में जाकर सीता से मिलकर निम्न संदेश देने के लिये कहा—

> **कहि जे सिया छु डाउं तोहि, सफल जन्म तब मेरउ होई**
> **तिया गये सो जो भजि करे, तास भार धरती पर रहे ॥२५॥**

हनुमान राम का शुभाशीर्वाद लेकर लंका के लिये रवाना हुये । मार्ग में दो मुनियों को संकट में देख कर उनका उपसर्ग शान्त किया । वहीं पर लंका सुन्दरी से विवाह किया और उसे सीता के सम्बन्ध में बात बतलायी ।

हनुमान लंका में जाकर विभीषण से मिले । वहां उनका उचित स्वागत हुआ । हनुमान जहां सीता रहती थी वहां गये ।

हनुमान ने वहां सीता के दर्शन किये । सर्व प्रथम राम नाम की मुद्रिका को ऊपर से सीता के पास गिरा दी । मुद्रिका देख कर सीता प्रसन्न हुई । उधर रावण को भी मन्दोदरी ने बहुत समझाया । उसके पहले ही १८ हजार राणियां थी और वे भी एक से एक सुन्दर थी । सीता की भी मन्दोदरी ने निम्न शब्दों में प्रशंसा की—

तुम्ह सम रूप नहीं को नारि, संयम सील वरत आचार ।
धनि पिता माता जिहि जणी, धनि रामचन्द्र तस कामिनी ।।३६।।

हनुमान ने सीता से राम के समाचार कहे तथा सीता को छुड़ाने का रामचन्द्र का निश्चय घोषित किया । हनुमान एवं सीता ने एक दूसरे की बात पूछी तथा किस तरह सीता का हरण किया गया वह बतलाया । सुग्रीव का राम से जाकर मिलना तथा उन्हें अपनी राजधानी में लाकर ठहराने की बात कही ।

उधर मन्दोदरी ने हनुमान के आने की बात रावण से कही तो उसने तत्काल उसे बांध कर लाने का आदेश दिया । हनुमान ने सबका सामना किया । रावण ने अपने पुत्र इन्द्रजीत को हनुमान को बांध कर लाने के लिये भेजा । अन्त में इन्द्रजीत हनुमान को रावण के पास ले जाने में सफल हो गया । रावण ने हनुमान को बहुत समझाया, संसार का स्वरूप बतलाया, लेकिन रावण ने एक भी नहीं सुनी । हनुमान से अपने मरण की बात बतलायी और पूंछ के कपड़ा रूई आदि बांधने तथा उस पर तेल डालने के लिये कहा । हनुमान ने तत्काल अपनी पूंछ चारों ओर घुमा दी जिससे लंका जलने लगी । इसके पश्चात् हनुमान वापिस राम के पास आ गये । राम ने हनुमान का राजसी स्वागत किया । वापिस आने के पश्चात् हनुमान ने लंका का पूरा वृत्तान्त सुनाया । इसके पश्चात् राम ने लंका विजय के लिये सेना तैयार की और वे लंका विजय के लिये चल पड़े । इसके पहले कि वे रावण पर आक्रमण करते उन्होंने रावण को समझाने के लिये अपना दूत भेजा लेकिन रावण ने दूत की बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया तथा उसके नाक कान काटने का आदेश दिया ।

अन्त में राम को लंका पर आक्रमण करना पड़ा । दोनों की सेनाओं में घोर युद्ध हुआ और अन्त में लक्ष्मण के हाथ से रावण का अन्त हुआ । सीता को लेकर राम वापिस अयोध्या लौट आये । हनुमान कुंडलपुर पर राज्य करने लगे । बहुत

समय तक राज्य करने के पश्चात् हनुमान को जगत् से उदासीनता हो गयी। उन्होंने मुनि दीक्षा धारण कर ली और महानिर्वाण प्राप्त किया।

रचना काल

कवि ने अपने इस काव्य को संवत् १६१६ वैशाख कृष्णा ६ शनिवार को समाप्त किया। उसने नम्रतापूर्वक अपने लघु ज्ञान के लिये सब विद्वानों से क्षमा मांगी है। जिसका उल्लेख उसने अपनी प्रशस्ति में किया है।[1] उसने रत्नकीर्ति और मुनि अनन्तकीर्ति के नामों का उल्लेख किया है और अपने आपको अनन्तकीर्ति का शिष्य स्वीकार किया है।[2]

> मूलसंघ भव तारण हार, सारद गच्छ गरवौ संसार।
> रत्नकीर्ति मुनि अधिक सुजाण, तास पाटि मुनि गुणहनिधाम।
> अनन्तकीर्ति मुनि प्रगट्यौ नाम, कीर्ति अनन्त विस्तरी ताम।
> मेघ बूंद जे जाइ न गिनी, तास मुनि गुण जाउन भणी।
> तास सिष्य जिण चरणां लीण, ब्रह्म राउमल मति को हीण।
> हणू कथा नौ कियौ प्रकास, उत्तम किया मुणीश्वर दास।

कवि की यह संवतोल्लेख वाली यह दूसरी रचना है।[3] कवि ने इसका रचना स्थान नहीं लिखा है और न तत्कालीन किसी शासक का नाम ही लिखा है। कवि ने प्रारम्भ और अन्त में मुनिसुव्रतनाथ का स्मरण किया है जिससे पता चलता है कि इसकी रचना मुनिसुव्रतनाथ के चैत्यालय में हुई थी।[1]

प्रस्तुत रास काव्य में ७५७ पद्य हैं जो वस्तुबन्ध, दोहा और चौपई छन्दों में विभक्त है। रास की भाषा राजस्थानी है।

---

१. भणी कथ मन मै धरि हर्ष सोलासै सोला शुभ वर्ष।
रिति वसंत मास वैशाख, नौमि सनीसर कृष्णहि पास।।

२. मूलसंघ भव तारण हार, सारद गच्छ गरवौ संसार।
रत्नकीर्ति मुनि अधिक सुजाण, तास पाटि मुनि गुणहनिधान।
अनन्तकीर्ति मुनि प्रगट्यौ नाम, कीर्ति अनन्त विस्तरी ताम।
मेघ बूंद जे जाइ न गिनी, तास मुनि गुण जासन भणी।
तास सिष्य जिण चरणां लीना, ब्रह्म राउमल मति को हीण।
हणु कथा नौ कियौ प्रकास, उत्तम क्रिया मुणीश्वर दास।

३. प्रस्तुत पांडुलिपि एक गुटके में है जो महावीर भवन में संग्रहीत है। गुटका का लेखनकाल संवत् १७१६ पौष सुदी प्रतिपदा है।

३. ज्येष्ठ जिनवर कथा

यह कवि की लघु रचना है जिसमें प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव का जीवन चरित्र अंकित है। प्रथम तीर्थंकर होने के कारण वे सबसे बड़े जिन हैं, इसलिये इस कथा का नाम जेष्ठजिनवर कथा रखा गया है। इसका रचना काल संवत् १६२५ तथा रचना स्थान सांभर (राजस्थान) है। प्रस्तुत कथा का अजमेर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर में संग्रहीत है। रचना सामान्य है।

४. प्रद्युम्नरास

परदवणरास ब्रह्म रायमल्ल की रास संज्ञक कृतियों में महत्वपूर्ण कृति है। राजस्थानी भाषा में निबद्ध इस रास काव्य का रचनाकाल संवत् १६२८ भादवा सुदी २ बुधवार है।[1] गढ हरसौर इसका रचना स्थान है। हरसोर जयपुर राज्य का ही एक ठिकाना था जहां जैन श्रीमन्तों की अच्छी बस्ती थी। जिनमन्दिर था तथा उसमें पूजा व्रत विधान होते रहते थे। कवि ने सम्भवतः संवत् १६२८ का चातुर्मास यहीं व्यतीत किया था और यहीं श्रावकों के आग्रह से इस रास की रचना समाप्त की थी।[1]

प्रद्युम्न की गणना १६६ पुण्य पुरुषों में की गयी है तथा २४ कामदेवों में भी प्रद्युम्न का सम्मानित स्थान है। ये नवें नारायण श्रीकृष्ण जी के पुत्र थे। चरम शरीरी थे। जैन वाङ्मय में प्रद्युम्न के चरित्र का महत्वपूर्ण स्थान है। अब तक संस्कृत, अपभ्रंश हिन्दी एवं राजस्थानी में विभिन्न कवियों द्वारा निबद्ध प्रद्युम्न के जीवन पर २५ कृतियां खोज ली गयी हैं।[2] ब्रम्ह रायमल्ल के पूर्व निबद्ध ७ कृतियां मिलती है और प्रस्तुत रास काव्य के रचना के पश्चात् १७ कृतियां और लिखी गयी जिनसे प्रद्युम्न के जीवन की उत्तरोत्तर लोकप्रियता का भान होता है।[3]

रास काव्य का मूल्यांकन

प्रद्युम्न रास का प्रारम्भ तीर्थंकर की वन्दना से होता है इसके पश्चात् जिनवाणी तथा फिर निर्ग्रन्थ गुरू को नमस्कार किया गया है। कवि ने फिर अपनी अल्पज्ञता का निम्न पद्य में वर्णन किया है—

हो हो मूढि अति अपढ अयाण, भावभेव जाणों नहीं जी
हो थोडी जी बुधि किम करौ बखाण, रास भणौ परदवण को जी।

---

१. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची पंचम भाग—पृष्ठ संख्या १४५

१. हो सोलहसै अठ्ठवीस विचारो, हो भादवा सुदि द्वितीया बुधवारो।
गढ हरसोर महाभलौ जी हो तिमै भला जिणेसुर थानौ।
श्रीवंत लोग बसै भलाजी, हो देव शास्त्र गुरू राखै मानौ ॥१६४॥

२. देखिये-लेखक द्वारा सम्पादित प्रद्युम्न चरित्र की प्रस्तावना, पृ० ४३

द्वारिका के वर्णन से रास आरम्भ होता है। वहां अंधकवृष्टि राजा थे जो सम्यक्दृष्टि श्रावक थे। कुन्ती इसी की पुत्री थी जिसका पांडुराज से विवाह हुआ था। इसका पुत्र वसुदेव था तथा उसकी पत्नी का नाम रोहिणी था जो रूप सौन्दर्य में अप्सरा के समान थी (रूपकला अपसरा समान)। इनके दो पुत्र नारायण एवं बलिभद्र थे। दोनों ही शलाका पुरुषों में थे तथा जैन धर्म के प्रति उनका विशेष अनुराग था। एक दिन नारायण के घर पर नारद ऋषि का आगमन हुआ। ऋषि का स्वागत सत्कार करने के पश्चात् नारायण ने नारद से अढाई द्वीप का समाचार कहने के लिये निवेदन किया क्योंकि नारद का सभी क्षेत्रों एवं स्थानों पर आवागमन रहता था। नारद ने कहा कि पूर्व और पश्चिम दोनों में केवल ज्ञानी विचरते हैं और उसके समवसरण में प्राणी मात्र धर्मलाभ लेते हैं। इसके पश्चात् नारद महलों में गये जहां श्रीकृष्ण की रानी सत्यभामा रहती थी। सत्यभामा ने नारद का स्वागत नहीं किया और अपने ही शृंगार में व्यस्त रही। इस पर नारद ने सत्यभामा को गर्व नहीं करने की बात कही किन्तु इस पर वह उल्टे नारद को मान कषाय त्यागने का उपदेश देने लगी। इस पर नारद क्रोधित हो गये और निम्न शब्दों में उसकी भर्त्सना की—

हो भणै रुखीसुर देवी अभागी, हो हम नै जी सीख देण तू लागी।
पाप धर्म जाणै नहीं जी, हो मुझ नै जी मानवान सहु आपै।
सुर नर सहु सेवा करै जी, हो तीनि लोक मुझ थे सहु कंपै।

सत्यभामा ने उसका फिर कटाक्ष रूप में उत्तर दिया जिससे नारद ऋषि और भी जल गये। उन्होंने निश्चय किया कि सत्यभामा अपने रूप लावण्य के मद में चूर है इसलिये श्रीकृष्ण जी के इससे भी सुन्दर वधु लानी चाहिये। इसी विचार से वे चारों ओर घूमने लगे। वे विद्याधरों की नगरी में गये और देश की विभिन्न राजधानियों में गये। अन्त में चल कर वे कुण्डलपुर पहुंचे जहां भीषमराज राज करते थे। श्रीमती उनकी पटरानी थी। रूप कुमार पुत्र था तथा रुक्मिणी पुत्री थी। एक मुनि ने नारद ऋषि के आने के पूर्व ही रुक्मिणी का विवाह कृष्णजी के साथ होगा ऐसी भविष्यवाणी कर दी थी। जब रुक्मिणी की भुवा सुमति ने मुनि की भविष्य-वाणी के बारे में बतलाया तो भीषम राजा ने श्रीकृष्ण जी के साथ विवाह करने का विरोध किया तथा शिशुपाल के साथ रुक्मिणी का विवाह करना निश्चय किया।

नारद ऋषि भीषम राजा के महल में गये। वहां रानियों ने नमस्कार करके उन्हें उचित आदर सत्कार दिया। रुक्मिणी ने आकर जब नारद की वन्दना की तो उसे श्रीकृष्ण जी की पटरानी बनने का आशीर्वाद दिया। नारद वहीं से कृष्ण जी की सभा में गये और वहां उन्होंने निम्न बात कही—

हो नारद बोलै हरी नरेसो, हो कुंडलपुर बसै असेसो ।
भीषम राजा राजई जी, हो तिहकै सुता रुपिणी जाणों ।
तासु रूप लिखि आणियो जी, हो सोभै नाराईण कै राणी ।।३६।।

भीषमराजा ने रुक्मिणी के विवाह की तैयारियां प्रारम्भ कर दी। लेकिन जब उसकी भुवा को मालूम पड़ा तो वह अत्यधिक चिन्तित हुई और पत्र के द्वारा श्रीकृष्ण जी को निमन्त्रण भेज दिया। पत्र वाहक ने पूरे समाचार मौखिक रूप से कहे कि विवाह के दिन नागपूजने के बहाने से रुक्मिणी बाग में आवेगी तब वहां भेंट हो सकेगी। पूर्व निश्चयानुसार रुक्मिणी वहां आगयी और कहने लगी—

हो ताहि औसरि रूपणि तहा आई, हो नाग देवता की पूज रचाइ ।
हाथ जोडि बिनती करै जी हो, मै छै सकल देवता साखी ।
नाराइण अब आइज्यौ जी, हो फुरिज्यो सही तुहारी वाचो ।।४२।।

रुक्मिणी हरण की नगर में जब खबर पहुंची तो युद्ध की तैयारी प्रारम्भ हो गयी—

हो कुंडलपुर मैं लाधी सारो, ठाइ ठाइव पडि पुकारो ।
रूपिणि नै हरि ले गयो जी, हो राजा जी भषिम बाहर लागौ ।
साठि सहस रथ जोतिया जी, हो तीनि लाख घोडा सुर बागा ।।४५।।

रुक्मिणी सेना देख कर डर गयी और कृष्ण जी से 'अब आगे क्या होगा' कहने लगी। लेकिन श्रीकृष्ण जी ने शीघ्र ही धनुषबाण चलाना प्रारम्भ कर दिया और सर्वप्रथम रूपकुमार को धराशायी कर दिया। शिशुपाल और श्रीकृष्ण में युद्ध होने लगा। और कृष्ण जी ने बाण से उसका भी सिर छेद दिया। उसके पश्चात् वे रूपकुमार को साथ में लेकर रैवत पर्वत पर चले गये वहां रुक्मिणी के साथ विवाह कर लिया। द्वारिका पहुंचने पर उनका जोरदार स्वागत किया गया।

हो हलधर किस्न द्वारिका आया, हो जिस्याजी सम निसाण बजाया

एक दिन कृष्ण ने अपना एक दूत दुर्योधन के पास भेजा और कहलवाया कि रुक्मिणी और सत्यभामा दोनों में से जिस किसी के प्रथम पुत्र होगा वह उसकी सुता उदधिमाला से विवाह करेगा। इधर सत्यभामा एवं रुक्मिणी में यह तय हुआ कि जो दोनों में से प्रथम पुत्र पैदा करेगी वह दुर्योधन की लड़की के साथ विवाह करने के पश्चात् दूसरी का सिर मुण्डन करेगी। नौ महिने के पश्चात् दोनों को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। लेकिन कृष्णजी के पास रुक्मिणी का दूत पहिले पहुंचा और सत्यभामा का दूत पीछे। पुत्र उत्पन्न होने पर द्वारिका में खूब उत्सव मनाये गये—

हो मग्र द्वारिका भयौ उछाहो, घरि घरि गावै कामणी जी ।।६७।।

जन्म के ६ दिन पश्चात् धूमकेतु नामक विद्याधर प्रद्युम्न को आकाश मार्ग से उड़ाकर ले गया और महाभयानक वन में एक सिला के नीचे दबा कर चला गया।

इसी अवसर पर वहां कालसंवर का विमान आया । प्रद्युम्न के ऊपर आने पर जब विमान रुक गया तो नीचे उतर कर उसने शिला के नीचे से शिशु प्रद्युम्न को उठा लिया और अपनी रानी कंचनमाला को ले जाकर दे दिया । कालसंवर के पहिले ही पांचसौ पुत्र थे इसलिये उसने कहा —

हो म्हारे जो पुत्र पांचसै सारो, हो ईहि बालक नौ करै प्रहारो ।
तै कुल जाईन में सहया जी, हो सुणि बोलौ संबर नर माहो ।

कालसंवर प्रद्युम्न को मेघकूट दुर्ग पर ले गया जहां उसका राज्य था । वहां प्रद्युम्न की प्राप्ति पर अनेक उत्सव मनाये गये । उधर द्वारिका में शिशु प्रद्युम्न के हरण पर शोक छा गया । रुक्मिणी रोने पीटने लगी—

रुदन करै हरि कामिणी जी, हो घूणै सीस दुवै कर पीटे ।।७६।।
हो राजा जो भीखम तणी कुमारी, हो हिवडो सिर कूटे अति भारी ।
रोवै जी खरी ऊराधणी जी, हो सुणी बात किस्न कं वि वाणि ।
मुख तंबोल हरि रालीयोजी, हो हाहाकार भयो असमाने ।।७७।।

इतने ही में नारद जी का द्वारिका आगमन हुआ । उनसे भी रुक्मिणी ने रुदनपूर्वक प्रद्युम्न के अपहरण की चर्चा की । ऋषि ने रुक्मिणी को सान्त्वना देते हुये शीघ्र ही आकाश मार्ग से विदेह क्षेत्र में जाकर सीमन्धर तीर्थंकर से प्रद्युम्न हरण के बारे में जानने के लिये कहा । नारद ऋषि तत्काल वहां से उसी क्षेत्र में गये जहां सीमंधर स्वामी का समवसरण लगा हुआ था । नारद ऋषि वन्दना करके समवसरण में बैठ गये । वहां सीमंधर स्वामी ने प्रद्युम्न के पूर्वभव, उनके अपहरण का कारण एवं वर्तमान में उसका निवास स्थान आदि के बारे में विस्तृत जानकारी दी । नारद जी ने पुनः द्वारिका में जाकर निम्न बातें कही—

हो रूपिणिस्यो मुनि बात पयासी, हो सोलह वरष गयां घरि आसी
रीती सरवर जलि भरै जी, हो सूका वन फूलै असमानो ।
दूध खिरै तुम्ह अंचला जी, हो तो जाणी साची सहनाणो ।।१०३।।

उधर कालसंवर के यहां प्रद्युम्न दिन प्रति बढने लगा । एक बार कालसंवर ने अपने पांच सौ पुत्रों को अपने शत्रु राजा सिंध भूपति को पराजित करने के लिये भेजा लेकिन वे सफल नहीं हो सके । अन्त में प्रद्युम्न उनसे आज्ञा मांग कर सिंघरथ को पराजित कराने के लिये गया और शीघ्र ही उसे बांध कर कालसंवर के पास ले आया । इसके पश्चात् वह १६ गुफाओं में गया जहां से उसे कितनी ही सिद्धियां प्राप्त हुई । घर पर जाकर जब वह कंचनमाला से मिला तो वह उसके रूप को देख कर मोहित हो गयी और उससे वासना पूर्ति की बात करने लगी । अपनी तीन विद्याएं भी उसी को दे डाली । प्रद्युम्न ने कंचनमाला से विद्या तो लेली लेकिन वह उसे माता एवं गुराणि कह कर वहां से चल दिया ।

नमस्कार करि बीनवै जी बो, ईक माता अरु भई गुराणी ।
विद्या दान दीयो घणौ जी, हो पुत्र जोगि सो काज बखाणी ।।११७,।

कंचनमाला ने तत्काल पांचसौ पुत्रों को बुला कर प्रद्युम्न को मारने की सलाह दी तथा कालसंवर के सामने अपना विरूप बनाकर प्रद्युम्न के द्वारा अपने शीलभंग के बारे में कहा । इस पर कालसंवर अत्यधिक क्रोधित होकर प्रद्युम्न को पकडना चाहा लेकिन प्रद्युम्न के सामने सेना नहीं टिक सकी तथा अपनी विद्याबल से कालसंवर को बांध लिया । इतने ही में वहां नारद ऋषि आ गये और उन्होंने कालसंवर से वास्तविक बात बतलाकर परस्पर के मनमुटाव को शान्त किया—

हो संबरि आण जाई नवि संधिउ, नागपासि स्यौ तंखण बंधिउ ।
कामदेव रिणि जीतियो जी, हो तौलग नारद मुनिवर आयो ।।१२४।।

नारद ने प्रद्युम्न से द्वारिका चलने को कहा । प्रद्युम्न ने द्वारिका जाने के पूर्व सर्व प्रथम कंचनमाला से क्षमा मांगी और कालसंवर से आज्ञा लेकर विमान द्वारा नारद के साथ द्वारिका के लिए प्रस्थान किया ।

द्वारिका में प्रवेश करने के पूर्व प्रद्युम्न ने दुर्योधन से उसकी लड़की उदधिमाला को छीन ली तथा माया का घोडा बना कर भानुकुमार के द्वारा घुडसवारी करने पर उसे खूब छकाया तथा पटक दिया प्रद्युम्न इस समय वृद्ध ब्राम्हण के वेश में थे ।

हो फेर्या जी घोडा चाबुका दीया, आडा उभौ रालिया जी ।।१४२।।

प्रद्युम्न सत्यभामा के घर गया जहां भानुकुमार का विवाह था । वहां उसने वृद्ध ब्राम्हण का रूप बनाया—

विप्र रूप बूढौ भयोजी, हो छिटिक्या होठ निकस्या दंतो ।
मुंडि हाथ डगमग करै जी, हो बैठो मंडप माहि हसंतौ ।

प्रद्युम्न ने कहा कि ब्राम्हण को जो यदि भर पेट जिमाता है तो वह वांछित फल प्राप्त करता है । सत्यभामा ने यह सुनकर उसको बैठने को आसन दिया और थाल में भोजन परोस दिया । प्रद्युम्न सारा का सारा भोजन खा गया और पानी भी खूब पी गया । फिर उसने मुंह में हाथ डाल कर उल्टी कर दी जिससे सारा महल दुर्गन्ध से भर गया । इसके पश्चात् प्रद्युम्न ने ब्रम्हचारी का रूप धारण कर लिया । और अपनी माता रुक्मिणी के घर चला गया । माता से दुर्बलता एवं चिन्ता के समाचार पूछने पर रुक्मिणी ने पुत्र के वियोग के कारण होने वाली दशा की बात कही । प्रद्युम्न अपने वास्तविक रूप में प्रकट हो गया और माता के चरण छूए ।

हो नमस्कार करि चरणां लागौ, हो भीषम पुत्री को दुख भागो ।
मधुरपात आनंद कावो, हो बूझै बात हरिख करि मातो ।
सहु संबर का घर तणी जी, हो मयण मूल को कह्यो वतांतो ।।५५।।

प्रद्युम्न ने अपने शौर्य, पराक्रम एवं विद्याबल को अपने पिता -स्वयं श्रीकृष्ण जी को भी बतलाने की एक युक्ति रची । उसने रुक्मिणी का हरण कर लिया और श्रीकृष्ण, बलराम आदि सभी को युद्ध के लिए ललकारा—

है कहिज्योजी जी तुम्ह बलिभद्र भुझारो, हो बाना घालि होई असवारो
रुपिणि नै हु ले चल्यौ जी, हो पौरिष छै तौ आई छुडा जै ।।१६६।।

प्रद्युम्न ने श्रीकृष्ण के अतिरिक्त पांचों पाण्डवों को भी युद्ध के लिये ललकारा । श्रीकृष्ण अपनी समस्त सेना के साथ युद्ध भूमि में आ डटे । प्रद्युम्न ने भी मायामयी सेना तैयार की । कवि ने युद्ध का जो वर्णन किया है वह संक्षिप्त होते हुए भी महत्वपूर्ण है—

हो असवारां मारै असवारो, हो रथ सेथी रथ जुडै भुझारो ।
हस्तीस्यौ हस्ती भिडैजी, हो घणो कहौ तो होई बिस्तारो ।।

श्रीकृष्ण की जब सेना नष्ट होने लगी तो उन्होंने गदा उठाली और प्रद्युम्न पर आक्रमण करने के लिए दौड़े । इतने में रुक्मिणी ने नारद से वास्तविक बात प्रकट करने के लिए कहा । जब श्रीकृष्ण ने प्रद्युम्न को अपने पुत्र के रूप में पाया तो उनका दिल भर आया । युद्ध बन्द कर दिया गया । प्रद्युम्न को समारोह के साथ द्वारिका में ले जाया गया । प्रद्युम्न का उदधिमाला से विवाह हो गया और वे आनन्द के साथ जीवन व्यतीत करने लगे ।

कुछ समय पश्चात् भगवान नेमिनाथ का उधर समवसरण आया । सभी उनकी वन्दना को गये । समवसरण में जब श्रीकृष्ण जी के राज्य की अवधि पूछने पर नेमिनाथ ने बारह वर्ष के पश्चात् द्वारिका दहन की बात कही । प्रद्युम्न ने संसार की असारता को जान कर वैराग्य धारण कर लिया और घोर तपस्या करके कर्मों के बन्धन को काट कर मोक्ष पद प्राप्त किया ।

कवि ने अन्त में अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है—

हो मूलसंघ मुनि प्रगटो लोई, हो अनंतकीर्ति जाणै सहु कोई ।
तासु तणो सिषि जाणिज्योजी, हो ब्रह्मि राइमलि कीयो बखाण ।।१६३

मूल्यांकन

प्रद्युम्न रास शुद्ध राजस्थानी भाषा की कृति है । इसमें तत्कालीन बोल-चाल के शब्दों का एवं लोक शैली का सुन्दरता से प्रयोग किया गया है । प्रत्येक छंद के

प्रारम्भ में 'हो' शब्द का प्रयोग किया गया है जो सम्भवतः अपने पाठकों के ध्यान को एकाग्र रखने के लिये अथवा वर्ण्य विषय पर जोर देने के लिये है। दिखावरा (३) परणी (६) बोल्या (१०) चाल्यौ (१३) भाल्यो (१५) आइयौ (४०) चाल्यौ (४१) जैसी क्रिया पदों का प्रयोग हियडै (१६) भूवा (२४) किस्न (२५) व्याहु (३७) हाँसिस्यौ (५१) जैसे शुद्ध राजस्थानी शब्दों का प्रयोग करके कवि ने राजस्थानी भाषा के प्रति अपने प्रेम को प्रदर्शित किया है।

प्रद्युम्नरास का अपना ही छंद है। सारे काव्य में एक ही रास छन्द का प्रयोग हुआ है। प्रत्येक छन्द में ६ पद है जिनमें २० से १८, १७, १७ तथा १६, १६ मात्राएं हैं। कवि ने इसे कड़वा छन्द लिखा हैं।

कवि ने पुराणों में वर्णित कथा के आधार पर ही रास काव्य की रचना की है। अपनी ओर से न तो कथा में कोई परिवर्तन किया है और न किसी नये कथानक को स्थान दिया है। हां कथा का विस्तार एवं संक्षिप्तीकरण अपने काव्य के छन्दों की सीमित संख्यां के अनुसार किया है। नेमिनाथ के समवसरण में केवल द्वारिका दहन की चर्चा ही होती है उसमें जैन सिद्धांतों का प्रतिपादन जो जैन कवियों की अपनी शैली रही है कवि ने उसे इस काव्य में स्थान नहीं दिया है।

सामाजिक तत्वों की दृष्टि से रास काव्य में कोई विशेष वर्णन तो नहीं आया किन्तु प्रद्युम्न के विवाह के समय लग्न लिखना, चौरी मण्डप बनाना, बधावा गीत गाना, वर कन्या के तेल चढ़ाना, ब्राम्हणों द्वारा वेद मन्त्र का पाठ कराना आदि कुछ वर्णन तात्कालीन समाज की ओर संकेत है।

रास सुखांत काव्य है। प्रद्युम्न राज्य सम्पदा का सुख भोगने के पश्चात् गृह त्याग कर देते हैं और अन्त में घोर तपस्या के पश्चात् निर्वाण प्राप्त करते हैं।

कवि ने इसे गढ़ हरसोर में संवत् १६२८ (सन् १५७१) में पूर्ण किया था। उस दिन भादवा शुक्ला द्वितीया बुधवार था। हरसोर में उस समय श्रावकों की अच्छी बस्ती थी। वहां भव्य जिन मन्दिर थे तथा श्रावक गण देव शास्त्र एवं गुरु का सम्मान करते थे[1]।

---

१ हो सोलहसौ अठ्ठवीस बीचारो, हो भादवा सुदि दुतिया बुधवारो।
गढ हरसौर महा भलौ जी, हो तिसैं भलौ जिणेसुर थानो।
श्रीवंत लोग बसै भला जी, हो देव शास्त्र गुरु राखैं मानो ॥१६४॥

पूरे रास में १६५ पद्य हैं जिसका कवि ने रास के अन्त में उल्लेख किया है[2]।

५ सुदर्शन रास

प्रस्तुत कृति ब्रह्म रायमल्ल की एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमें अपनी सच्चरित्रता में प्रसिद्ध सेठ सुदर्शन का जीवन वृत निबद्ध है। यह एक रास काव्य है और इसकी भी वर्णन शैली वही है जो कवि ने अन्य काव्यों में अपनायी है। सर्व प्रथम रास काव्य चौबीस तीर्थंकरों की वंदना से प्रारम्भ किया गया है जो ५५ पद्यों में समाप्त होता है।

रास की कथा जम्बूद्वीप से प्रारम्भ होती है। भरतक्षेत्र में अंग देश है उसकी राजधानी चंपा नगरी है। उसके राजा धात्रीवाहन तथा रानी का नाम अभया था। नगर सेठ थे श्रेष्ठि वृषभदास जो पूजा पाठ एवं वन्दना में अपार विश्वास रखते थे। सेठानी जिनमती भी धार्मिक प्रवृत्ति वाली थी। एक रात्रि के पिछले पहर में सेठानी ने स्वप्न देखा और मुनि द्वारा स्वप्न फल बतलाये जाने पर दोनों पति पत्नि अत्यधिक प्रसन्न हुए कि उन्हें शीघ्र ही सुपुत्र रत्न की प्राप्ति होगी। सेठ ने पुत्र जन्म पर खूब दान दिया, उत्सव किये एवं पूजा पाठ का आयोजन किया। उन्होंने पुत्र का नाम सुदर्शन रखा। बालक बड़ा हुआ। पढने लगा और जब वह युवा हो गया तो माता-पिता ने एक सुन्दर कन्या से उसका विवाह कर दिया। सुदर्शन के माता-पिता ने उसे गृहस्थी का समस्त भार सौंप कर जिन दीक्षा धारण करली। कुछ समय पश्चात् सेठ सुदर्शन के भी पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई।

एक दिन सेठ सुदर्शन कपिला ब्राम्हणी के घर के नीचे होकर निकले। कपिला सुदर्शन के रूप एवं सौन्दर्य को देख कर उस पर आसक्त हो गयी। उसे चाहने लगी। एक दिन कपिला ब्राम्हणी के पति को कहीं बाहर जाना पड़ा। कपिला ने अपने पेट के दर्द का बहाना लिया और दुख: से विहवल होकर चिल्लाने लगी तथा मन्दिर के ऊपर जाकर ढक कर सो गयी। सेठ सुदर्शन ऊपर गये और ब्राम्हणी की बीमारी के बारे में जानकारी चाही। जब वह अपने मित्र के साथ ऊपर गया तो ब्राह्मणी ने उसका हाथ पकड़ लिया और काम ज्वर का नाम लेने लगी। सेठ सुदर्शन ब्राह्मणी का चरित्र देखकर अचम्भित हो गया और अपनी स्त्री मनोरमा के अतिरिक्त सभी स्त्रियों को माता, बहिन एवं पुत्री के समान मानने की बात कहने लगा। सेठ ने ब्राम्हणी को बहुत समझाया तथा शील के महत्व को सामने रखा। अन्त में वह ब्राह्मणी के चंगुल से मुक्त होकर घर पहुंचा।

---

२ हो कडवा एकसौ अधिक पंचाणू, हो रास रहस परवमन बखाणौ।

कुछ दिनों पश्चात् बसन्त ऋतु आयी। चारों ओर पुष्प महकने लगे। राजा, रानी, सेठ सुदर्शन एवं उसकी पत्नी एवं पुत्र तथा कपिल ब्राह्मणी सभी वन विहार के लिये चले। जब रानी ने सेठ सुदर्शन को देखा तो वह उसकी अपूर्व सुन्दरता से प्रभावित हो गयी और उसके बारे में जानकारी चाही। रानी के पास ही कपिला ब्राह्मणी थी। पहिले तो उसने सेठ को नपुंसक बतलाया और रानी को कहा कि यदि वह सेठ को अपने जाल में फांस सके तब उसके चातुर्य को समझे।

रानी ने घर आकर अपनी मन की बात पंडित जी से कही। लेकिन पंडितजी ने रानी की बात को मानने के बजाय उसे शील महात्म्य पर खूब उपदेश दिया। लेकिन रानी ने कहा कि उसने कपिला ब्राम्हणी को वचन दे दिया है कि वह सुदर्शन को अपने वश में कर लेगी नहीं तो कटारी खाकर मर जावेगी। वचन का निर्वाह करना प्राचीन परम्परा रही है। अन्त में अनेक उपाय सोचे गये। अष्टान्हिका में सेठ सुदर्शन श्मशान में जाकर ध्यान लगाता था। यह बात जब रानी की दासी को मालूम हुआ तो उसने महल के रक्षकों को भुलावे में डालने के लिये मानवाकृति के आटे के पुतले को प्रतिदिन लाने ले जाने लगी। और अन्त में आठवें दिन स्वयं ध्यानस्थ सेठ को रानी के महल में लाकर पलंग पर डाल दिया।

अहो सेठि सुदर्शन रह्यो धरि ध्यान, मनु कियो वज्र का थंभ समान।
आयोजी आप समोधियो, अहो मन वचन कायाजी लियो सन्यास।
जो उपसर्ग ये टरौ, अहो हाथि भोजन करौ वन मै जी वास ।।१२२।।

रानी ने सेठ के साथ संभोग करने की कितनी ही चालें चली। विविध हाव भाव बतलाये। लेकिन वह सेठ को वश में नहीं कर सकी। अन्त में निराश होकर सेठ को बाहर निकाल दिया और स्वयं कपड़े फाड़ कर अपने आप खरोंच कर चिल्लाने लगी—

अहो रच्यो जी प्रपंच सह फाडोजी चीर, काचुयौ तोडि विस्तूरि सरीर।
वंधु बाहर करै पापणी, अहो सेठि पापी मुझ तोडियो अंग।
राति उपसर्ग किया घणा, अहो राउ स्यु कही जिम करै सिर भंग।

नगर में रानी की बात आंधी के समान फैल गयी। चारों ओर हाहाकार होने लगा तथा किसी ने भी सेठ सुदर्शन के चरित्र पर शंका प्रकट नहीं की।

अहो श्रावक क्रिया जी पालै हो सार, दान पूजा करै पर उपकार
नग्र नर नारि नै सीख दे अहो, पंडित जाणौ जी जैन पुराण।
कर्म कुकर्म सो किम करै, अहो सील न छोड़े हो जाहि पराण।

राजा ने जब रानी की बात सुनी तो उसके क्रोध का पार नहीं रहा और

उसने तत्काल सेठ को सूली लगाने का आदेश दिया। सेठाणी हाहाकार विलाप करती हुई सेठ के पास पहुंची तो उसने पूर्व जन्म के किये हुये पापों का फल बतला कर उसे सान्त्वना देना चाहा। सेठ को शूली पर चढ़ाने के लिये ले जाया गया और ज्योंही उसे शूली पर चढ़ाया वह शूली सिंहासन बन गयी। यह देख कर सेवक वहां से भागे और जाकर राजा से निवेदन किया। राजा ने उस पर विश्वास नहीं किया और तत्काल सेना लेकर वहां पहुंचा। देवताओं ने राजा को मार भगाया। राजा नंगे पांव सेठ के पास गया और विनयपूर्वक अपने अपराध के लिये क्षमा मांगने लगा। अन्त में सेठ ने देवताओं से राजा को क्यों मारते हो ऐसा कहा। देवों ने सेठ के चरित्र की बहुत प्रशंसा की और उसका खूब सम्मान करके स्वर्ग लोक चले गये।

रानी ने जब सब वृत्तान्त सुना तो उसने आत्मघात कर लिया तथा पंडिता पाडलीपुर चली गयी और वहां वैश्या के पास रहने लगी। सेठ सुदर्शन घर आकर सुख से रहने लगा तथा अपना जीवन धर्म कार्य में व्यतीत करने लगा। एक दिन वहां मुनिराज आये तथा जब सेठ ने शूली वाली घटना की बात जाननी चाही तो मुनिराज ने विस्तार पूर्वक पूर्व भव की बातों का वर्णन किया। अन्त में सेठ ने मुनि दीक्षा ली और अनेक उपसर्गों को सहने के पश्चात् कैवल्य प्राप्त करके अन्त में निर्वाण प्राप्त किया।

इस प्रकार २०१ पद्यों में निर्मित सुदर्शन रास कवि की कथा प्रधान रचना है इसमें कथा का बाहुल्य है। सभी पद्य एक ही छन्द में लिखे हुये हैं तथा उनमें कोई नवीनता नहीं है। कवि ने अपना परिचय देते हुये अपने आपको मूलसंघ के मुनि अनन्तकीर्ति का शिष्य लिखा है[1]।

रास का रचना काल संवत् १६२६ वैशाख शुक्ला सप्तमी है। उस समय अकबर का शासन था जो सभी छह दर्शनों का सम्मान करता था[2]। रचना स्थान धौलहर नगर लिखा है जो सम्भवतः धौलपुर का नाम हो। धौलपुर स्वर्ग के समान था वहां सभी ३६ जातियां थी जो प्रतिदिन जिन पूजा करती थी।

---

१ अहो श्री मूलसंघ मुनि प्रगटौ जी लोइ, अनंतकीर्ति जाणो सहु कोई
तास तणो सिषि जाणज्यो, अहो रायमल्ल ब्रह्म मनि भयो उछाह।
बुद्धि करि हीण जाणै नहीं, अहो जणयो रास सुदर्शन साह ॥१९८॥

२ अहो सोलहसै गुणतीसै वैसाखि, सातै जी राति उजाले जी पाखि।
साहि अकबर राजिआ, अहो भोगवै राज अति इन्द्र समान।
चोर लबाड राखै नहीं, अहो छह दर्शण को राखै जी मान ॥१९९॥

३ अहो धोलहर नग्र वन देहुरा थान, देवपुर सोभै जी सर्ग समान।
पौणि छत्तीस लीला करै, अहो करै पूजा नित जपै अरहंत ॥२००॥

६. श्रीपाल रास

जैन धर्म में श्रीपाल एवं मैनासुन्दरी का जीवन अत्यधिक लोकप्रिय है। सिद्ध चक्र की पूजा के महात्म्य को जन जीवन तक पहुंचाने का पूरा श्रेय मैना सुन्दरी को है जिसने इस सिद्धचक्र व्रत एवं पूजा के महात्म्य से कुष्ट रोग से पीड़ित अपने पति श्रीपाल एवं उसके ७०० साथियों का कुष्टरोग दूर कर दिया था। इसलिये जैनाचार्यों एवं जैन विद्वानों ने इन दोनों के जीवन को लेकर विविध काव्य लिखे हैं। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, राजस्थानी एवं हिन्दी में चरित, रास, चौपई, वेलि संज्ञक रचनाएं निबद्ध की गयी और उनके माध्यम से श्रीपाल एवं मैनासुन्दरी का जीवन आकर्षण का केन्द्र बन गया।

रचना काल

प्रस्तुत रास कविवर ब्रह्म रायमल्ल की काव्य रचना है जिसमें उन्होंने २९८ पद्यों में श्रीपाल एवं मैनासुन्दरी के जीवन का विषद वर्णन किया है। यह रास कवि के काव्य जीवन की परिपक्व अवस्था का काव्य है जिसे उन्होंने संवत् १६३० अषाढ सुदी १३ शनिवार को राजस्थान के प्रसिद्ध गढ़ रणथम्भौर में समाप्त किया था। अष्टान्हिका पर्व में विमोचित यह रास काव्य श्रीपाल एवं मैनासुन्दरी को समर्पित काव्य है। रणथम्भौर उस समय धन जन सम्पन्न दुर्ग था। बादशाह अकबर का उस पर शासन था। दुर्ग में चारों ओर छोटे-छोटे सरोवर, बाग एवं बगीचे थे। सरोवर जल से अप्लावित थे तथा उद्यान वृक्ष और लताओं से आच्छादित थे। दुर्ग में जैन धर्मावलम्बियों की अच्छी संख्या थी। वे सभी धन सम्पत्ति से भरपूर थे। सभी श्रावक चार प्रकार के दान-आहारदान, औषधिदान, ज्ञानदान एवं अभयदान के देने वाले थे। यही नहीं वे प्रतिदिन व्रत, उपवास, प्रोषध एवं सामायिक करते थे। ब्रह्म रायमल्ल को भी ऐसे ही दुर्ग में श्रावकों के मध्य कुछ समय के लिये रहना पड़ा और उन्होंने श्रावकों के आग्रह से वहीं पर श्रीपाल रास की रचना की।

---

१. हो सोलहसैं तीसो सुभवर्ष, हो मास आषाढ भण्यो करि हर्ष।
तिथि तेरसि सित सोभनी, हो अनुराधा नक्षत्र सुभ सार।
कर्ण जोग दीसैं भला, हो सोभन वार शनिश्चरवार ।।२९५।।

रास भणौं सरिपाल को।

हो रणथम्भमर सोभैं कवि लास, भरीया नीर ताल चहुं पास।
बाग बिहरि वाडी घणी, हो धन कण सम्पत्ति तणौं निधान
साहि अकबर राज हो। सोभैं घणा जिणेसुर थान ।।२९६।।

कवि ने काव्य के अन्त में २६६ छन्दों का उल्लेख किया है जबकि रास में २६८ छन्द हैं। सम्भवत: कवि ने अन्तिम दो छन्दों को रास काव्य की छन्द संख्या में नहीं लिया है।

हो द्वै से अधिक। छिनवै छंद, कवियण भण्यौं तासु मतिमंद।

काव्य के अन्त में कवि ने अपनी काव्य निर्माण के प्रति अनभिज्ञता प्रकट करते हुये विद्वानों से श्रीपाल रास को पढ़ कर हंसी नहीं उड़ाने की प्रार्थना की है।

पद अक्षर की सुधि नहीं, हो जैसी मति कीनौ आकास।
पंडित कोई मति हंसौ, तैसी मति कीनौ परकास ।।२६८।।
रास भणौ श्रीपाल को।

कथा भाग

श्रीपालरास चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति से प्रारम्भ होता है। उज्जैयिनी नगरी के राजा पहुपपाल के दो पुत्रियां थी। बड़ी सुरसुन्दरी एवं छोटी मैनासुन्दरी थी। राजा ने सुरसुन्दरी को सोमशर्मा की चटशाला में पढ़ने को भेजा। वहां उसने तर्कशास्त्र, पुराण, व्याकरण आदि ग्रन्थ पढ़े। छोटी लड़की यमधर नामक मुनि के पास पढ़ने लगी। जिससे मैनासुन्दरी ने भेद विज्ञान का मर्म जाना। पुत्रियों के वयस्क होने पर राजा ने सुरसुन्दरी से अपनी इच्छानुसार राजा का नाम बतलाने को कहा जिससे उसके साथ उसका विवाह किया जा सके। सुरसुन्दरी ने नागछत्रपुर के राजा का नाम लिया और पहुपपाल ने सुरसुन्दरी का तत्काल उससे विवाह कर दिया। दहेज में राजा ने हाथी, घोड़े, वस्त्र, आभूषण, दासी दास आदि बहुत से दिये।

अस्व हस्ती बहुडाइजो, हो वस्त्र पटम्बर बहु आभर्ण।
दासी दास दिया घणा, हो मणि माणिक जड़्या सोवर्ण ।।१६।।

एक दिन मैनासुन्दरी जब प्रात: पूजा से निवृत्त होकर पिता के पास आयी तो राजा ने उससे भी अपनी इच्छित वर का नाम बताने को कहा। मैना सुन्दरी प्रारम्भ से ही धार्मिक विचारों की थी इसलिये उसने उत्तर दिया कि जैसा भाग्य में लिखा होगा वही पति मिलेगा।

हो श्रावक लोग बसै धनवंत, पूजा करै जपै अरहंत।
दान चारि सुभ सकतिस्यौ, हो श्रावक व्रत पाले मनलाइ।
पोसा सामाइक सदा, हो मत मिथ्यात न लगता जाइ ।।२९७।।

माता पिता कन्या का जिसके साथ विवाह कर देते हैं, लड़की उसी को अपना पति मान लेती है तथा देह और छाया के समान अभिन्न होकर रहने लगती है।

कुल कन्या सहि नै वरै, करै स्नेह जिम देह क छांह ।।२०।।

राजा पहुपाल को अपनी लड़की की यह बात अच्छी नहीं लगी उस समय तो उसने कुछ नहीं कहा लेकिन एक दिन जब वह वन क्रीडा को गया तो उसे वहां एक कोढी राजकुमार मिला जिसके साथ में ७०० कोढी और थे। कवि ने कोढ़ियों का जो वर्णन किया है वह निम्न प्रकार है—

हो बहरी आँखी कोढ कुजालि, खसरो कंडू ते बहु भांति।
सीइल पथरी थोवरी, हो षडौ बाढ जहि बैसे नाक।
कोढ मसूरिङ जाणि जे, हो बैठे गले जिम काक ।।रास।।२५।।
हो कोढ उबंबर सेत सरीर, दाद कोढ अति दुःख गहीर।
सुसन्धौ बाल रहै नही हो, षांदी कोढ उपजैं साष।
गलत कोढ अंगुलि चुवै, हो निकलै हाड उपडै खाल।

राजा ने उसी के साथ मैना सुन्दरी का विवाह कर दिया। कवि ने विवाह विधि का निम्न प्रकार वर्णन किया है—

हो लगन महूरत वेगि लिखाई वेदी मंडप सोभा लाइ।
वस्त्र पटंबर ताणियां, हो वर कन्या ने तेल चढ़ोडि।
सोल सिंगार जु साजिया, हो बैठा वेदी अंचल जोडि ।।३४।।
हो बांभण भणै वेद झणकार, कामिणी गावै गीत सुचार।
भाट भणै बिडदावली, हो वर कन्या देखे नृप रूप ।।

मैना सुन्दरी ने बिना कुछ विरोध किये कोढी श्रीपाल को अपना पति स्वीकार कर लिया और उसी के साथ वन में रहने को चल दी। राजा ने श्रीपाल को दहेज में बहुत धन सम्पत्ति दासी दास के साथ रहने के लिये वन में भवन भी दिया। मैना सुन्दरी श्रीपाल के साथ रहने लगी। वह प्रतिदिन भगवान जिनेन्द्र की पूजा करती। एक दिन संयोग से उसी वन में एक निर्ग्रन्थ साधु आये। मैनासुन्दरी एवं श्रीपाल ने उनकी खूब सेवा सुश्रुषा की। मुनि ने श्रावक धर्म का वर्णन किया और जीवन में उसे उतारने पर जोर दिया। अन्त में मैनासुन्दरी ने श्रीपाल की कोढ मुक्ति के बारे में पूछा। इस पर मुनिश्री ने अष्टान्हिका में आठ दिन व्रत करने एवं भगवान की पूजा करने को कहा—

हो मुनिवर बोले सुणौं कुमारि, सिद्धचक्र गरऊो संसारि।
सिद्धचक्र व्रत तुम्ह् करौ, हो आठ दिवस पूजौ मन लाइ।
आठ द्रव्य ले निर्मला, हो कोढि कलेस व्याधि सहू जाइ ॥ ४६ ॥

सिद्धचक्र व्रत के महात्म्य से श्रीपाल एवं उनके साथियों का कोढ रोग दूर हो गया और उसके शरीर की लावण्यता चारों ओर चमकने लगी। श्रीपाल ने निम्न व्रत अंगीकार किये—

हो सिद्धचक्र पूजा करि सार, द्यारा पेषण दान अहार।
पछै आप भोजन करै, हो पर कामिनी देखै निज मात।
सत्य वचन बोले सदा, हो तरस जीव को करै न घात ॥६०॥
हो द्रव्य परायो लेइ न जाण, परिग्रह तणो करै परमाण।
करे अणुव्रत भावना हो, गुणव्रत तीन्यौ पालै सार।

कोढ दूर होने पर पहिले श्रीपाल की माता उधर आ गयी। इसके पश्चात् एक दिन मैनासुन्दरी के पिता ने जब श्रीपाल को अतिशय सुन्दर शरीर युक्त देखा तो उसने भी कर्म के प्रभाव को स्वीकार किया। श्रीपाल का उसने बहुत सत्कार किया और अपना आधा राज्य भी देने के लिए प्रस्ताव किया लेकिन श्रीपाल ने उसे स्वीकार नहीं किया। वे दोनों वहीं रहने लगे। श्रीपाल को श्वसुर के घर रहना उचित नहीं लगा तो वह इसी चिंता में चिन्तित रहने लगा। अन्त में वह मैनासुन्दरी से १२ वर्ष की आज्ञा लेकर रत्नदीप जाने का निश्चय किया। श्रीपाल के साथ मैना ने जाने की इच्छा प्रगट की तो उसने सीता का उदाहरण दिया जिसके कारण राम को अत्यधिक कष्ट उठाने पड़े थे—

फल लागा जे राम नै हो साथि सिया नै लीयां फिरै।

श्रीपाल अपनी मा के चरण छू कर विदेश यात्रा के लिये प्रस्थान किया। अनेक ग्राम, नगर वन एवं नदियों को पार करने के पश्चात् वह भृगुकच्छ तट पर पहुंचा। उधर समुद्र तट पर धवल सेठ पांच सौ व्यापारियों के साथ रत्नद्वीप जाने की तैय्यारी में था लेकिन उसके जहाज चल ही नहीं रहे थे। जब किसी निमित्त ज्ञानी मुनि से जहाज न चलने का कारण पूछा तो बतलाया गया कि जब तक बत्तीस लक्षणों से युक्त कोई युवक जहाज में नहीं बैठेगा तब तक जहाज नहीं चलेगा। सेठ ने अपने आदमियों को चारों ओर दौड़ाया। मार्ग में इन्हें श्रीपाल मिल गया। धवल सेठ श्रीपाल को देख कर अतीव प्रसन्न हुआ और उसका खूब आदर सत्कार किया। श्रीपाल को लेकर धवल सेठ का जहाजी बेड़ा रवाना हुआ। जब वे आधी दूर ही पहुंचे थे कि बीच में उन्हें समुद्री चोर मिल गये और धवल सेठ को बन्दी बना कर

जहाजों में भरे हुए सामान को लूट लिया । श्रीपाल से जब सबने मिल कर प्रार्थना की तो उसने धनुष-बाण लेकर लुटेरों का सामना किया और उन पर विजय प्राप्त की । श्रीपाल की वीरता से धवल सेठ एवं उसके साथी अत्यधिक प्रभावित हुये और सेठ ने उसे अपना धर्मपुत्र बना लिया ।

दोहड़ा – कोटपाल वरिणवर कह्यो, नाह सु............नर ।
ए ता मित्र जुतो करो, वे होइ सर्व संघार ।। ९६ ।।

श्रीपाल का जहाजी बेड़ा रत्नद्वीप पर आ पहुंचा । सर्व प्रथम वह वहां के जिनमन्दिर के दर्शनार्थ गया । वहां सहस्त्रकूट चैत्यालय था । चन्द्रमणिकान्त की जहां प्रतिमाएं थी । स्वर्ण के स्तम्भ थे । वेदी में पांच वर्ण की मणियां जड़ी हुई थी ।

हो सहसकूट सोभा बहु भांति, बिम्ब रयण चंद्रमणि कांति ।
कनक थंभ बहुविधि बण्या, हो पंच वर्ण मणि वेदी जडिउ ।
सिला सिघासन सोभिती हो जाणि बिधाता आपण घडिउ ।।

उस सहस्त्रकूट चैत्यालय के वज्र के कपाट थे लेकिन श्रीपाल के हाथ लगते ही वे खुल गये । श्रीपाल ने बड़ी भक्ति भाव से जिनेन्द्र भगवान के दर्शन किये । अष्ट द्रव्य से पूजा की और अपने आपको दर्शन करके धन्य समझा ।

भाव भगति जिण किया हो करि स्नान पहरे सुभ चीर ।
जिण चरण पूजा करि हो भारी हाथ लइ भरि नीर ।।१०२।।
हो जल चंदन अक्षत शुभ माल नेवज दीप धूप भरि थाल ।
नालिकेर फल बहु लिया हो पुहपांजलि रचि जोड्या हाथ ।
जिणवर गुण भास्या घणा हो जै जै स्वामी त्रिभुवन नाथ ।

रत्नदीप के विद्याधर राजा के पास मन्दिर के कपाट खुलने के समाचार पहुंचे तो वह तत्काल वहां आया और श्रीपाल को अपना परिचय देकर अपनी सर्वगुणसम्पन्न कन्या रत्नमंजूषा से विवाह करने की प्रार्थना की । विद्याधर ने किसी अवधिज्ञानी मुनि द्वारा वज्र के कपाट खुलने वाले के साथ अपनी पुत्री के विवाह की भविष्यवाणी की बात सुनी थी । उसने अपनी पुत्री को 'गुणलावण्य पुण्य की खानि' कहा । तत्काल विवाह मंडप तैयार किया गया और सात फेरों के पश्चात् वह श्रीपाल की धर्मपत्नी हो गयी । साथ में उसे अपार दहेज भी प्राप्त हुआ ।

दे विद्याधर डाइजो हस्ती, घोड़ा कनक अपार ।।११०।।

श्रीपाल अपनी नवपत्नी के साथ अपने बेड़े पर गया। धवल सेठ और उनके सभी साथियों ने ऐसी सुन्दर वधु प्राप्त करने पर उसे बधाई दी। श्रीपाल ने अपने साथियों को बड़ा भोज दिया।

हो निश्हर मध्य भयो जैकार, सीरीपाल दीनो ज्यौणार।
तथर जुगति संतोषीया, हो कनक वस्त्र दीना बहु दान।
हाथ जोड़ि बिनती करी, हो धवल सेठि नैं दीनी मान ॥११३॥

एक दिन रत्नमंजूषा ने श्रीपाल से पूरा परिचय जानना चाहा। श्रीपाल ने संक्षिप्त रूप से अपना परिचय दिया और विदेश यात्रा पर आने का निम्न कारण बताया

हो हमस्यौ कहै बाल गोपाल, राज जवाई हहु सीरीपाल।
नाम पिता को कोन लेहो, मेरा मन में उपज्यो सोग।
कामणि सेवक छाडिया हो, भुगकछु पटणि संजोग ॥११८॥

रत्नदीप से अनेक वस्तुओं को साथ लेकर धवल सेठ ने वहां से अपने देश को प्रस्थान किया। साथ में उसके ५०० जहाजों का बेड़ा था। श्रीपाल एवं रत्नमंजूषा भी साथ थे। धवल सेठ रत्नमंजूषा का रूप लावण्य देख कर आपे में नहीं रह सका। वह दिन प्रतिदिन उसके साथ सहवास की इच्छा करने लगा। श्रीपाल एवं रत्नमंजूषा के हास परिहास को देखकर वह बेहाल हो जाता और उसको प्राप्त करने का उपाय सोचता रहता।

हो रैण मंजूषा सेवै कंत, धवल सेठि अति पीसै दंत।
नींद भूख तिरषा गइ, हो मंत्री जोग्य कही सहु बात
सु'दरि स्यौ मेलो करो हो, कै हौं मरौं करौ अपघात ॥१२२॥

उसके मन्त्री ने सेठ को बहुत समझाया। कीचक एवं रावण के उदाहरण दिये। लोक में निन्दा होने की बात कही तथा श्रीपाल को धर्मपुत्र होने की बात बतलायी। लेकिन सेठ के मन पर कोई असर नहीं हुआ। अन्त में सेठ ने एक दांव फैंका और उसे एक लाख टका इनाम देने की बात कही—

हाथ जोड़ बिनती करै हो लाख टका पहली स्यौ रोक।
सु'दरि हम मेलो करो, हो जाय हमारा मन को सोक ॥१२७॥

लाख टके की बात सुन कर मन्त्री को लोभ आ गया और वह श्रीपाल के वध की चाल सोचने लगा। उसने जहाज के चालक (धीमर) से मिल कर एक षड्यन्त्र रचा जिसके फलस्वरूप जहाज के धीमर (मल्लाह) चोर-चोर चिल्लाने लगे।

श्रीपाल यह सुन कर जहाज के ऊपर चढ़ कर चारों ओर देखने लगा । धोखे से उस धीमर ने रस्सी काट दी जिससे श्रीपाल समुद्र में गिर गया । चारों ओर दुख छा गया । रैणमंजूषा विलाप करने लगी । उसने अपने सभी आभूषण छोड़ दिये तथा दिन रात आंसू बहाने लगी ।

..........हो रैण मंजूसा करै पुकार, सिर कूटै हीयो हसे
हो कहगो कोडी भड भरतार ।।१३०।।

कामान्ध धवलसेठ ने अपनी एक दूती को रत्नमंजूषा के पास भेज कर उसे फुसलाना चाहा । दूती ने सेठ के वैभव की बात कही तथा मनुष्य जन्म की सार्थकता "खाजे पीजे विलसीजे हो, अवर जनम की कही न जाइ" इन शब्दों में बतलायी । रत्नमंजूषा के शरीर में उस पतिता की बात सुन पसीना आ गया और उसकी निम्न शब्दों में भर्त्सना करके उसे अपने यहां से निकाल दिया—

हो सुणी सुंदरी कूटणि बात, हो उपनो दुख पसीनो गात ।
कोप करिवि सा बीनवी हो नरक थे वेगि जाहि अब रांड
पाप वचन तैं भासिया हो इसा बोल थे होसी भांड ।।१३४।।

इसके पश्चात् वह कामान्ध सेठ स्वयं उसके पास चला गया और कहने लगा—

हाथ जोडि वीनती करै, हो हम उपरि करि दया पसाउ
काम अग्नि तनु बालीयो हो राख्यो बोल हमारो भाउ ।।१३५।।

रत्नमंजूषा ने सेठ को अनेकों युक्तियों से पतिव्रत धर्म के बारे में कहा तथा दुश्चरित्र होने पर इस जन्म में ही नहीं दूसरे जन्म में भी जो नरक यातनाएं भोगनी पड़ती हैं उसके सम्बन्ध में कितने ही उदाहरण प्रस्तुत किये । लेकिन धवल सेठ के एक भी बात समझ में नहीं आयी । उसने रत्नमंजूषा का हाथ पकड़ लिया । इतने में ही एक दैवी घटना घटी और रत्नमंजूषा के शील की रक्षार्थ जिनशासनदेव, ज्वाला मालिनी देवी, वायु कुमार और चक्रेश्वरी देवी वहां प्रगट होकर धवल सेठ की बुरी तरह दुर्गति की ।

हो ज्वाला मालिणी देवी आइ, दीनी मोहणि अग्नि लगाइ
रोहिणी औंधौ टंकियो हो विष्टा मुख में दीनी ठेलि ।
लात घमूका अति हणैं, हो सांकल लोघ गला मे मेलि ।।१४१।।

हो धवलकुमार जब तब ग्राइ, दीनौ ग्रधिकौ पवन चलाइ ।
जल कोलोल बहु उछले हो चक्केसुरि ग्रति कीमौ कोप ।
ग्रोहण फेरे चक्र ज्यों हो, ग्रंधकार करियो ग्राटोप ।।१४२।।

हो ग्रंवा ताते छुडके तेलि, मूल नासिका दीनो ठेलि ।
छेदन भेदन दुःख सहै हो मणिभद्र ग्रायो तहि ठाउ ।
मार मार मुखि उच्चरं हो, धवल सेठ मुखि सुहेवलाइ ।।१४३।।

धवल सेठ चारों ग्रोर विपत्ति को देखकर तथा ग्रसहाय वेदना झेल कर रत्नमंजूषा के चरणों में गिर पड़ा ग्रौर उससे क्षमा मांगने लगा ग्रौर ग्रपने किये पर पश्चाताप करने लगा । रत्नमंजूषा को उस पर दया ग्रा गयी ग्रौर चक्रेश्वरी ग्रादि देवियों से उसे छोड़ देने की प्रार्थना की ।

उधर श्रीपाल ने समुद्र में गिरने के पश्चात् णमोकार मंत्र का स्मरण किया । कवि ने णमोकार मन्त्र की प्रभावना का भी वर्णन किया है । ग्रनायास ही एक लकड़ी का बड़ा टुकड़ा उसके हाथ ग्रा गया । श्रीपाल उस पर बैठ गया ग्रौर समुद्र के किनारे जा लगा । किनारे पर ही उस द्वीप के राजा के दो सेवक श्रीपाल की ही प्रतीक्षा कर रहे थे । उस द्वीप का नाम था 'दलवणपटण' तथा शासक का नाम धनपाल था । गुणमाला उसकी पुत्री थी । राजा ने जब एक बार मुनि से उसके विवाह की चर्चा की तो मुनि ने भविष्यवाणी की थी कि श्रीपाल इस समुद्र को तैर कर ग्रावेगा ग्रौर वही गुणमाला का पति होगा । सेवकों ने जाकर तत्काल राजा से निवेदन किया । धनपाल चिर ग्रभिलाषित कुमार को पाकर ग्रत्यधिक हर्षित हुग्रा ग्रौर किनारे पर ग्राकर श्रीपाल से भेंट की । श्रीपाल के स्वागत में बाजा बजने लगे तथा चारण विरुदावाली गाने लगे ।

हो भयो हरख राजा धनपाल, गयो सामुहो जहां सिरीपाल ।
नयउ छाडिउ जुगलिस्यो, हो भेरी नफेरी नाद निसाण ।
साहण सेना साखती हो चारण बोलै बिरद बखाण ।। १६२ ।।

धनपाल ने श्रीपाल को कंठ लगाया । कुशल क्षेम पूछी तथा उसे हाथी पर बिठला कर 'दलपटण' नगर में प्रवेश किया । तत्काल विवाह मंडप रचा गया और उसमें श्रीपाल ग्रौर गुणमाला का विवाह संपन्न हुग्रा । दहेज में [illegible] कितने ही गांव दिये —

हो भांवरि सात फिरिउ चढ़ि मरकि, [illegible]
राजा दीनो डायजो हो [illegible]
देस ग्राम दीया [illegible]

श्रीपाल और गुणमाला सुख से वहीं रहने लगे। इतने में ही धवल सेठ का जहाज भी संयोग से उसी द्वीप में आ गया। राजा ने सेठ का बहुत आदर सत्कार किया तथा उसे राज्य सभा में आमन्त्रित करके उचित सम्मान किया। सेठ ने श्रीपाल को भी वहीं देखा। गुप्तरूप से श्रीपाल के बारे में जानकर सेठ उससे डर गया। और एक बार फिर उसे राजद्वार से निकालने की युक्ति सोची। वह एक डूम को बुला कर राज्य सभा में श्रीपाल को अपना सम्बन्धी बतलाने को कहा। डूम और डूमनी सपरिवार राज्य सभा में आकर विविध खेल दिखाने लगे और श्रीपाल को भी अपने ही परिवार का सिद्ध करने में सफल हो गये।

डूमा पाखंड मांडियो हो रह्या सुभट नै कंठि लगाइ ।। १७८ ।।
हो एक डूमडी उठी रोई, मेरो सगौ भतीजो होइ।
एक डूमडी बोलवं हो इहु मेरी पुत्री भरतार।
बहुत दिवस थे पाइयो हो कामि तजि किम गयो गवार।
पालि पोसि मोटा किया हो करी सवाइ भोजन जोग।
समुद्र माझ लहुडउ पडिउ, हो लाधौ आवं कर्म के जोग।। १८० ।।

राजा धनपाल ने श्रीपाल को डूम का पुत्र मान कर उसे तत्काल सूली लगाने का आदेश दिया। श्रीपाल ने फिर अपने ऊपर आयी हुई विपत्ति देख कर शांत भाव से उसे सहने का निश्चय किया। उसे बुरे हाल में सूली पर ले जाया गया। रोती पीटती गुणमाला भी वहीं आ पहुंची और श्रीपाल से वास्तविक बात जाननी चही। श्रीपाल ने धवल सेठ के जहाज में बैठी हुई अपनी पत्नी रत्नमंजूषा से उसके बारे में पता लगाने को कहा। गुणमाला दौड़ती हुई उसके पास गई और श्रीपाल का जीवन वृतांत जान कर रत्नमंजूषा को साथ लेकर राजा के पास आयी। रत्नमंजूषा ने श्रीपाल के बारे में राजा से पूरा वृतांत कहा और उसके साहसिक कार्यों की पूरी जानकारी दी। तत्काल राजा ने जाकर श्रीपाल से क्षमा मांगी और फिर ससम्मान उसे नगर में घुमा कर राज्य दरबार में लाया गया। धवल सेठ को जाल रचने के अपराध में तत्काल बन्धन में डाल दिया और बहुत बुरा हाल किया।

हो राजा किंकर पठाया घणा, औरणो बंधि धवल सेठ तंक्षरणा
बंधि सेठि ले आइया हो मारत बाड न सेका करै।
मल विथी बहु नासिका हो औंधों मुख पग ऊंचा करै।।१८६।।

लेकिन पुनः श्रीपाल ने सेठ को अपना धर्म पिता बतला कर उसे छुडा दिया। वह अपने साथियों से जाकर मिला। उसका अत्यधिक सम्मान किया गया। उन्हें सामूहिक भोजन कराया और पूरी तरह से उनका आतिथ्य किया। श्रीपाल के अत्यधिक

विनय को लेकर धवल सेठ अपने जीवन को धिक्कारने लगा और इसी बीच वहीं उसकी मृत्यु हो गयी। यहां कवि ने फिर दृष्टान्तों द्वारा चरित्र हीनता को नरक बंध, अपयश एवं नीच गति का प्रमुख कारण बतलाया है।

श्रीपाल अपनी दोनों पत्नियों के साथ सुख पूर्वक रहने लगा। दिनों को जाते देर नहीं लगती। कुछ समय पश्चात् वहां कुंकण देश से एक दूत आया और श्रीपाल को वहां के राजा की आठ कन्याओं के प्रश्नों का समाधान करने के पश्चात् विवाह करने के लिये निवेदन किया। श्रीपाल ने दूत की बात स्वीकार करली और तत्काल कुंकण देश के लिये रवाना हो गया। वहां जाने पर श्रीपाल का खूब स्वागत किया गया और आठ कन्याओं से उसकी भेंट करायी गयी। श्रीपाल से उनकी समस्याओं का समाधान करने के लिये निवेदन किया जिसे श्रीपाल ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। पहिले सबसे बड़ी राज कुमारी ने इस प्रकार समस्या रखी—

सुभग गौरि बोली बड़ी, हो कोडीभड सुणि मेरो बुधि।
तीनि पदा आगै कहो, हो साहस जहां तहां हो सिद्धि।

श्रीपाल ने इसका निम्न प्रकार समाधान किया—

हो सुण्या वचन बोलै वरवीर, सुणहु कुमारि चित्त करि धीर।
सत्त सरीर हुस्यौं रहै हो जवै कर्म तैसो हो बुधि।
उदिम तउ न छोडि जै, हो साहस जहां तहां हो सिद्धि।

सोमा देवी ने अपनी समस्या इस प्रकार रखी—

हो सोमा देवी कहै विचार कौण धर्म जगि तारणहार।
सुणि कोडी भड बोलिया हो ग्यारह प्रतिमा श्रावक सार।
तेरह विधि व्रत मुनि तणा, हो कुंण धर्म्म जगि तारण हार।

एक राजकुमारी से पद का प्रश्न एवं श्रीपाल का उत्तर निम्न प्रकार था—

हो संपद बोली वचन सुमीट्ठ, सो न संजे विरला दिट्ठ।
सिरीपाल उत्तर दियो, हो दोष पराइ मध्य पइट्ठ।
बुरी पराइ ना कहै हो सो नर तौभैं विरला दीट्ठ।

इस प्रकार श्रीपाल ने आठों राज कन्याओं के प्रश्नों का समाधान कर दिया। और फिर अत्यधिक हर्ष और उल्लास के मध्य आठों राजकन्याओं से उसका विवाह हो गया। श्रीपाल विविध सुख साधनों के मध्य रहने लगे। दिनों को जाते देर नहीं लगती और इस प्रकार बारह वर्ष व्यतीत होने को आने लगे। उसे वहां मैनासुन्दरी

का ध्यान आया। और वह तत्काल अपनी आठ हजार रारिणयों तथा आठ हजार सेना घोड़े, हाथी रथ आदि के साथ वह उज्जयिनी पहुंचा।

उधर मैनासुन्दरी अपने प्रियतम की प्रतीक्षा कर रही थी। उसने एक एक दिन गिन कर बारह वर्ष व्यतीत किये थे। और जब श्रीपाल को अवधि समाप्त होने पर भी आता हुआ नहीं देखा तो उसने अपनी सास से सब संकल्प विकल्प छोड़ कर प्रातः आर्यिका दीक्षा लेने की बात कही। सास ने दस दिन तक और प्रतीक्षा करने के लिये कहा। दस दिन समाप्त होने के पूर्व ही एक दिन अकस्मात् श्रीपाल वहाँ पहुंच गया। सबसे पहिले उसने माता के चरण छुए और फिर मैनासुन्दरी ने श्रीपाल की वन्दना की। बारह वर्षों की घटनाओं की जानकारी श्रीपाल ने अपनी माता एवं पत्नी को दी। तत्काल वह माता और मैना को अपने सैन्यदल में ले गया और बारह वर्ष में जिन जिन वस्तुओं की उपलब्धि हुई थी उन्हें दिखायी।

श्रीपाल ने अपना एक दूत उज्जयिनी के राजा के पास उसकी अधीनता स्वीकार करने के लिये भेजा तथा "कांधि कुहाडी कंबल ओढ कर" भेंट करने के लिए कहा। पहिले तो राजा ने दूत को भला बुरा कहा लेकिन दूत ने जब समझाया तो राजा ने बात मानली और हाथी पर बैठ वह श्रीपाल से मिलने आया। दोनों जब परस्पर मिले तो चारों ओर अतीव आनन्द छा गया। नगर में विभिन्न उत्सव मनाये गये तथा श्रीपाल का राजा एवं नागरिकों की ओर से विविध भेंट देकर सम्मान किया गया। श्रीपाल ने उज्जयिनी में कुछ समय व्यतीत किया।

अन्त उसने अपने देश लौटने का निश्चय किया। अपने पूर्ण सैन्यबल के साथ वह चम्पा के लिये रवाना हुआ और नगर के समीप आकर डेरा डाल दिया। श्रीपाल ने अपना एक दूत वीर दमन राजा के पास भेजा और पुरानी बातों की याद दिलाते हुये अधीनता स्वीकार करने के लिये आदेश दिया। वीरदमन ने दूत की की बात स्वीकार नहीं की और युद्ध के लिए दूत को ललकारा। दोनों की सेनाओं ने युद्ध के लिये प्रयाण किया।

हो भाटि मानियो रणसंग्राम, आयो कोडी भड के ठाम।
बात पाछिवी सहु कही,
....हो सिधूडा बाजिया निसाण।
सूर किरणि सूझै नहीं, हो उडी खेह लागी असमान ।।२५७।।
हो घोड़ा सूमि खणै सुरताल, हो जाणिकि उलटिउ मेघ अकाल
रथ हस्ती बहु सासतो हो वहु पख की सेना चली।
सुभग संजोग संभालिया हो मणी वुहु राजा की मिली।

लिये यही निश्चय किया गया कि दोनों राजाओं में ही परस्पर में युद्ध हो जावे और उसमें जो विजयी हो वही राजा बने। श्रीपाल एवं वीरदमन में परस्पर युद्ध हुआ। श्रीपाल ने सहज में ही उसे पराजित कर दिया।

श्रीपाल ने जीतने पर भी अपने वृद्ध काका से राज्य करने का अनुरोध किया। वीरदमन ने श्रीपाल के इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया और संयम धारण करने का निश्चय किया। श्रीपाल ने लम्बे समय तक देश का शासन किया और प्रजा को सब प्रकार से सुखी रखा। एक बार नगर के बाहर श्रुतसागर मुनि का आगमन हुआ। श्रीपाल ने भक्तिपूर्वक वन्दना की और अपने जीवन में आने वाली विविध घटनाओं के कारणों के बारे में मुनिराज से जानना चाहा। श्रुतसागर ने विस्तार पूर्वक श्रीपाल को उसके पूर्व भव में किये हुये अच्छे बुरे कार्यों के बारे में बतलाया।

श्रीपाल फिर सुख से राज्य करने लगा। प्रतिदिन देवदर्शन, पूजन, सामायिक एवं स्वाध्याय उसके दैनिक जीवन के अंग बन गये। एक दिन जब वह वन क्रीड़ा के लिये गया तो मार्ग में कीचड़ में फंसे हाथी को देख कर उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया और उसने दिगम्बरी दीक्षा धारण करली। उसके साथ मैनासुन्दरी सहित अन्य स्त्रियों ने भी आर्यिका दीक्षा स्वीकार कर ली। अन्त में श्रीपाल ने कर्म बन्धन को काट कर मोक्ष प्राप्त किया तथा मैनासुन्दरी सहित अन्य रानियों को अपने-अपने तप के अनुसार स्वर्ग की प्राप्ति हुई। कवि ने इस प्रकार २९६ छन्दों में श्रीपाल एवं मैनासुन्दरी के जीवन पर विस्तृत प्रकाश डाला है। उसने अन्त के ५ छन्दों में अपना परिचय दिया है जो निम्न प्रकार है :—

हो मूलसंघ मुनि प्रगटो जाणि, कीरति अनंत सील की खांणि।
तासु तणो सिष्य जाणिज्यो, हो ब्रह्म रायमल्ल दिढ करि चित्त।
भाउ भेद जाणे नहीं हो तहि किङ्गो सिरीपाल चरित्त ॥२६४॥

हो सोलहसे तीसो सुभ वर्ष, हो मास असाढ भण्यो करि हर्ष।
तिथि तेरसि सित सोभनी, हो अनुराधा नक्षत्र शुभ सार।
करण जोग दीसे भला, हो सोभन वार शनिश्चरवार ॥२६५॥

हो रणथभमर सोभै कविलास, भरिया नीर ताल चहुं पास।
बाग विहरि बाडी घणी हो, धन कण संपति तणों निधान।
साहि अकबर राज हो, सोभै घणा जिणेसुर थान ॥२६६॥

हो श्रावक लोक बसैं धनवंत, पूजा करैं जपैं अरहंत ।
दान चारि सुभ सकति स्यौं हो श्रावक व्रत पालैं मन लाइ ।
पोसा सामाइक सदा हो, मत मिथ्यात न लगता जाइ ।।१९७।।

हो दूसे अधिका छिनवें छंद, कवियण भण्यौ तासु मति मंद ।
पद अक्षर की सुधि नहीं, हो जैसी मति दीनौ ओकास ।
पंडित कोई मति हसौ, तैसी मति कीनौ परगास ।।२९८।।

रास भणौ श्रीपाल को ।।

इति श्रीपाल रास समाप्ता ।

श्रीपाल रास राजस्थानी भाषा का काव्य है इसमें राजस्थानी शब्दों का पूरा प्रयोग हुआ है । कवि ने 'श्रीपाल' शब्द का भी 'सीरीपाल' शब्द के रूप में प्रयोग करके उसे राजस्थानी भाषा का रूप दिया है । लहुडी (१२) डाइजो (१६) जिणवर पूजण (१७), ज्योणार (११३), जवाइ (११८), रांड (१३४), भांवरि (१६६) जैसे शब्दों को रास काव्य में भरमार है । यही नहीं जुगतिस्यौं, चल्यौ, मिल्यौ, सुण्या, बाण्या, नैणा, रेणमंजूसा, जिणको, भणौ जैसे ठेठ राजस्थानी शब्द कवि को अत्यधिक प्रिय रहे हैं । संवत् १६३० में यह काव्य रणथम्भौर में लिखा गया था ।

अकबर के शासन में होने के कारण उस समय वहां फारसी, अरबी जैसी भाषाओं का जोर अवश्य होगा । लेकिन इस काव्य में उनके एक भी शब्द का प्रयोग नहीं होना कवि की अपनी भाषा में काव्य लिखने की कट्टरता जान पड़ती है । इतना अवश्य है कि उसने काव्य को तत्कालीन बोलचाल की भाषा में लिखा है । कविवर का ढूंढाड प्रदेश से अधिक सम्बन्ध रहने के कारण वह यहां की सीदी सादी भाषा का प्रेमी था । इसलिये रास को दुरूह शब्दों के प्रयोग से यथासम्भव दूर रखा गया है ।

श्रीपाल के जीवन में बराबर उतार चढाव आते हैं । कभी वह कुष्ट रोग से ग्रसित होकर अत्यधिक दुर्गन्ध युक्त देह को प्राप्त करता है तो कभी उसका रूप लावण्य ऐसा निखर जाता है कि उसकी कहीं उपमा नहीं मिलती । रत्नद्वीप में जाने पर उसे पूरा राजकीय सम्मान प्राप्त होता है रूप लावण्य युक्त रत्नमंजूषा जैसी सुन्दर वधु प्राप्त होती है किन्तु यही वधु उसको समुद्र में गिराने का कारण बनती है । समुद को वह पार करने में सफल होता है और पुनः दूसरे द्वीप में पहुंच जाता है जहां उसका राजसी स्वागत ही नहीं होता किन्तु गुणमाला जैसी राजकन्या

भी वधू के रूप में प्राप्त होती हैं। यहां भी विपत्ति उसका साथ नहीं छोड़ती और धवल सेठ के एक षडयन्त्र में उसे डूम पुत्र सिद्ध होने पर सूली की सजा मिलती है लेकिन दैव योग से उस विपत्ति से भी वह बच जाता है और फिर उसे राज्य सम्पदा प्राप्त होती है। इसके पश्चात् उसकी सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य में दिन प्रतिदिन वृद्धि होती रहती है। अन्त में वह स्वदेश लौटता है और चम्पा का राज्य करने में सफल होता है।

श्रीपाल का जीवन विशेषताओं से भरा पड़ा है। वह "वावे जिसो तीसो लुणो" में पूर्ण विश्वास रखता है। सिद्धचक्र पूजा से उसको कुष्ट रोग से मुक्ति मिलती है। कवि ने उसका "गयो कोढ जिम अहि कंचुली" उपमा से वर्णन किया है। प्रतिदिन देवदर्शन करना, पूजा करना, आहार दान के लिये द्वार पर खड़े होना, सत्य भाषण करना, त्रस जीवों का घात नहीं करना, आदि उसके जीवन के अंग थे। वह अत्यन्त विनयी था तथा क्षमाशील था। धवल सेठ द्वारा निरन्तर उसके साथ धोखा करने पर भी उसने राजा के बंधन से मुक्त करा दिया। वीरदमन को पराजित करने पर भी उसे राज्य कार्य सम्हालने के लिये निवेदन करना उसके महान् व्यक्तित्व का परिचायक है।

काव्य का नायक श्रीपाल है। मैनासुन्दरी यद्यपि प्रधान नायिका है लेकिन विदेश गमन से लेकर वापिस स्वदेश लौटने तक वह काव्य में उपेक्षित रहती है और नायिका का स्थान ले लेती है रत्नमंजूषा एवं गुणमाला। काव्य में कोई भी प्रतिनायक नहीं है। यद्यपि कुछ समय के लिये धवल सेठ का व्यक्तित्व प्रतिनायक के रूप में उभरता है लेकिन कुछ समय पश्चात् उसका नामल्लेख भी नहीं आता और रास के प्रारम्भिक एवं अन्तिम भाग में ओझल रहता है।

ब्रह्म रायमल्ल ने काव्य में सामाजिक तत्वों को भी वर्णन किया है। रास में चार बार विवाह के प्रसंग आते हैं और वह उनका प्रायः एकसा ही वर्णन करता है विवाह के अवसर पर गीत गाये जाते थे। लगन लिखाते थे। मंडप एवं वेदी की रचना होती थी। आम के पत्तों की माला बांधी जाती थी। लगन के लिये ब्राह्मण को बुलाया जाता था। विवाह अग्नि और ब्राह्मण की साक्षी से होता था। दहेज देने की प्रथा थी। दहेज में स्वर्ण, वस्त्र, हाथी घोड़े, दासी-दास और यहां तक गांव भी दिये जाते थे। शुभ अवसरों पर जीमनवार होती थी। स्वयं श्रीपाल ने दो बार अपनी साथियों को जीमण कराया था।

श्रीपाल रास में एक दोहा छन्द को छोड़ कर शेष सब पद्य रास छन्द में लिखे हुये हैं। यह संगीत प्रधान काव्य है जिसमें प्रत्येक छन्द के अन्त में 'रास भणो

श्रीपाल को' यह अन्तरा आता है । तथा छन्द की प्रत्येक पंक्ति में 'हो' शब्द का प्रयोग हुआ है जो भी छन्द का सस्वर पाठ करने में काम आता है ।

भविष्यदत्त चौपई

भविष्यदत्त का जीवन जैन कवियों के लिये अत्यधिक प्रिय रहा है । प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत एवं हिन्दी सभी में भविष्यदत्त के जीवन पर अनेक रचनाएं मिलती है । हिन्दी में उपलब्ध होने वाली कृतियों में ब्रह्म जिनदास, विद्याभूषण एवं ब्रह्म रायमल्ल की कृतियाँ उल्लेखनीय है । ब्रह्म रायमल्ल की यह कृति संवत् १६३३ की रचना है जिसे उसने सांगानेर नगर में महाराजा भगवन्तदास के शासन में सम्पूर्ण की थी । कवि ने अपनी कृति को कहीं पर रास, कहीं पर कथा और कहीं चौपई नाम से सम्बोधित किया है ।

भविष्यदत्त चौपई कवि की महत्वपूर्ण कृति है । कथा का प्रारम्भ मंगलाचरण से हुआ है । भरत क्षेत्र में कुरुजांगल देश और उसी में हस्तिनापुर नगर था । तीर्थंकरों के कल्याणक होने के कारण वहां सभी समृद्ध थे । चारों ओर शान्ति एवं आनन्द व्याप्त था । उसी नगर में धनवइ सेठ रहता था । उसका विवाह उसी नगर के दूसरे सेठ धनश्री की पुत्री कमलश्री के साथ हुआ । एक दिन उसी नगर में एक मुनि का आगमन हुआ । धनवई सेठ ने मुनिश्री से सन्तान के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा कि उसके सुयोग्य पुत्र होगा जो अन्त में मुनि दीक्षा धारण करेगा । कुछ समय पश्चात् कमलश्री ने पुत्र को जन्म दिया । पुत्र जन्म पर विविध उत्सव किये गये तथा स्वयं नगर के राजा ने आकर सेठ को बधाई दी । सेठ ने भी दिल खोल कर द्रव्य खर्च किया । बालक का नाम भविष्यदत्त रखा गया । सात वर्ष का होने पर उसे पढ़ने बिठा दिया गया—

बालक बरस सात को भयो, पंडित आगें पढ़रणौ दियो ।
कीया महोछा जिरणवरि थानि, सजन जन बहु दीन्हा दान ।

कुछ समय पश्चात् सेठ धनवइ को अकस्मात् कमलश्री से घृणा हो गयी और उसने तत्काल अपने घर से चले जाने को कह दिया । कमलश्री ने बहुत प्रार्थना की लेकिन सेठ ने एक भी नहीं सुनी और अन्त में वह अपने पिता के पास गयी । कमलश्री के अचानक घर आने पर उसके माता-पिता को उसके चरित्र पर सन्देह लगा इतने में धनवइ के मन्त्री ने आकर सबका भ्रम दूर कर दिया । कमलश्री अपने पिता के घर सुखचैन से रहने लगी । धनवइ का दूसरा विवाह कमलश्री की छोटी बहिन रूपा से हो गया । विवाह बहुत ही उत्साह और आनन्द के साथ हुआ ।

दोनों पति-पत्नि सुखपूर्वक रहने लगे । सरूपा के कुछ वर्षों पश्चात् पुत्र हुआ जिसका नाम बन्धुदत्त रखा गया । वह बड़ा हुआ और रत्नद्वीप में व्यापार के लिये जाने तैयार हो गया । पिता की आज्ञा पाकर उसने ५०० अन्य साथियों को भी ले लिया । जब भविष्यदत्त ने अपने भाई को व्यापार के लिये जाने की बात सुनी तो उसने भी भी उसके साथ जाने की इच्छा प्रकट की और अपनी माता से आज्ञा लेकर भाई के साथ हो गया । लेकिन सरूपा ने बन्धुदत्त को कहा कि वह उसका बड़ा भाई है इसलिये संपत्ति का मालिक भी वही होगा । अतः अच्छा यही है कि मार्ग में भविष्यदत्त का काम ही तमाम कर दिया जावे ।

बन्धुदत्त अपने साथियों के साथ व्यापार के लिए चला । साथ में किराणा एवं अन्य सामग्री ली । वे समुद्र तट पर पहुंचे और शुभ मुहरत देख कर जहाज से रत्नद्वीप के लिये प्रस्थान किया । वे धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे। जब अनुकूल हवा होती तब ही वे आगे बढ़ते । बहुत दिनों के पश्चात् जब उन्होंने मदन द्वीप को देखा तो अत्यधिक हर्षित होकर वहां उतर पड़े और वहां की शोभा निहारने लगे । जब भविष्यदत्त फूल चुनने के लिये चला गया तो बन्धुदत्त के मन में पाप उपजा और अपने भाई को वहीं छोड़ कर आगे चल दिया ।

भवसदत फल लेरा गयो, बंधुदत्त पापी देखियो ।
बात विचारी माता तणी, मन में कुमति उपजी घणी।।२०।।

भविष्यदत्त बहुत रोया चिल्लाया लेकिन वहां उसकी कौन सुनने वाला था । अन्त में हाथ मुंह धोकर एक शिला पर पंच परमेष्ठी का ध्यान करने लगा । रात्रि को वहीं शिलातल पर सो गया । प्रातः होने पर वह एक उजाड वन में होकर नगर में पहुंच गया और जिन मन्दिर देख कर वह उसी में चला गया और भक्तिपूर्वक भगवान की पूजा करने लगा । उसने अत्यधिक भक्ति से जिनेन्द्र की पूजा की । पूजा करने के पश्चात् वह थक कर सो गया ।

इसी बीच पूर्व विदेह क्षेत्र में यशोधर मुनि से अच्युत स्वर्ग का इन्द्र अपने पूर्व जन्म के मित्र धनमित्र के बारे में पूछता है वह किस गति में है । मुनिराज इन्द्र को पूरा वृतान्त सुनाते हैं और तथा कहते हैं कि इस समय वह तिलक द्वीप के नगर में चन्द्रप्रभु मन्दिर में है । मुनि के वचनों को सुन कर देवेन्द्र उस मन्दिर में गया और उसे सोता हुआ देखकर मन्दिर की दीवाल पर उसने लिखा कि हे मित्र उत्तर दिशा में पांचवें घर में एक सुन्दर कुमारी है वह उसकी प्रतीक्षा में है । वह उससे विवाह करले । उस इन्द्र ने मणिभद्र को यह भी कह दिया कि वह भविष्यदत्त का समय समय पर ध्यान रखे । जब वह निद्रा से उठा और सामने लिखे हुए अक्षर

पढे तो वह उसी के अनुसार पांचवे मकान में चला गया। जब उसने अत्यधिक रूपवती कन्या को देखा तो वह विस्मय करने लगा—

को याह सुरां अपछरा कोइ, नाग कुमारि परतषि होइ।
अम देवी खिष्टं इह थानि,भवसदत मनि भयो गुमांन ।।५५।।

कन्या द्वारा भविष्यदत्त का बहुत सम्मान किया गया और विविध प्रकार के व्यंजन भोजन के लिए तैयार किये गये और अन्त में उस नगरी के उजड़ने का कारण भी उसने बतलाया और कहा कि इस नगर का राजा यशोधन था। भवदत्त उसके पिता थे जो नगर सेठ थे। माता का नाम मदनवेगा था। उसकी बड़ी पुत्री का नाम नागश्री एवं छोटी का नाम था भविष्यानुरूपा, जो मैं हूं। उसने कहा कि एक व्यंतर ने सारे नगर को उजाड़ा। पता नहीं उसने उसे कैसे छोड़ दिया। भविष्यदत्त ने अपना वृतान्त भी भविष्यानुरूपा से निम्न प्रकार कहा—

भरत षेत्र कुरु जांगल देस, हथिणापुर भूपाल नरेस।
धनपति सेठि बसी तहि ठाम, तासु तीया कमलश्री नाम।
भविसदत्त हौं तहि को बाल, सुख में जातन जाणे काल।
दूजी मात सरूपणि पुत्र, पंडित नाम दियो बंधुदत्त।
मोहण पूरि दीप नै चल्यौ, हो पणि सानि तासु को मिल्यौ
सो पापी मति हीणो भयो, मदन दीप मुझ छाडि वि गयो
कर्म जोग पट्टण पावियो, इहि विधि तुम थानक आइयो ।।११।।

एक दूसरे का परिचय होने के पश्चात् जब भविष्यानुरूपा ने भविष्यदत्त से उसे स्त्री के रूप में अंगीकार करने के लिये कहा तो भविष्यदत्त ने बिना किसी के दी हुई वस्तु को लेने में असमर्थता प्रगट की तथा कहा कि यदि वह व्यंतर देव उसे सौंप देगा तो उसको स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होगी। कुछ समय पश्चात् वहां व्यंतर देव आया और एक मनुष्य को देख कर अत्यधिक क्रोधित हो गया। लेकिन भविष्यदत्त ने उसे लड़ने के लिए ललकारा। अन्त में जब उसे मालूम पड़ा कि वह उसी का पूर्व भव का मित्र है तो वह उसका घनिष्ठ मित्र बन गया। व्यन्तर देव ने भविष्यानुरूपा का विवाह उसके साथ कर दिया और भविष्दत्त को मदनद्वीप का राज्य सौंप कर वहां से चला गया। भविष्यदत्त एवं भविष्यानुरूपा वहां पर सुख से रहने लगे।

उधर भविष्यदत्त के वियोग में उसकी माता कमलश्री चिन्तित रहने लगी। एक दिन वह आर्यिका के पास गयी और अपने पुत्र के बारे में जानना चाहा।

आर्यिका ने उसे श्रुत पंचमी व्रत पालन का उपदेश दिया । उसने कहा कि आषाढ़ सुदी पंचमी को प्रथम बार इस व्रत को ग्रहण करके कार्तिक, फागुन या आषाढ़ की पहली शुक्ल पंचमी को व्रत का प्रारम्भ करके उस दिन उपवास करना चाहिये तथा षष्ठी के दिन एक बार अहार करना चाहिये तथा जिनेन्द्र देव की पूजा करनी चाहिये । इन दिनों में अत्यधिक संयम पूर्वक जीवन बिताना चाहिये । यह व्रत पांच वर्ष एवं पांच महिने तक होता है । उसके पश्चात् उद्यापन करना चाहिये । यदि उद्यापन करने की स्थिति नहीं हो तो दुगने समय तक इस व्रत का पालन करना चाहिये । कमलश्री ने श्रुत पंचमी के व्रत को अंगीकार कर लिया और उसका उद्यापन भी कर दिया इसके पश्चात् भी जब इसका पुत्र नहीं आया तो वह आर्यिका उसे मुनि श्री के पास ले गयी जो मन्दिर में विराजे हुए थे । वे मुनि अवधिज्ञानी थे । इसलिये कमल श्री के पूछने पर मुनि महाराज ने कहा कि उसका पुत्र अभी जीवित है । वह द्वीपान्तर में सुख से रह रहा है । यहां आने पर वह आधे राज्य का स्वामी होगा । कमलश्री फिर भविष्यदत्त के आने के दिन गिनने लगी ।

एक दिन भविष्यरूपा ने भविष्यदत्त से अपनी ससुराल के बारे में फिर पूछा। तत्काल भविष्यदत्त को अपने माता के दुखों का स्मरण आ गया । वह पछताने लगा और शीघ्र ही हस्तिनापुर जाने की तैयारी करने लगा । वे बहुत से मोती, माणिक आदि लेकर उसी गुफा में होकर समुद्र तट पर आ गये और हस्तीनापुर जाने वाले जहाज की प्रतीक्षा करने लगे । कुछ दिनों पश्चात् वहां बन्धुदत्त का जहाज भी आ गया बन्धुदत्त का बहुत बुरा हाल था । उसके पास न खाने को था और न पहिनने को । सर्व प्रथम वह भविष्यदत्त को पहिचान भी नही सका । लेकिन फिर दोनों भाई गले मिले । बन्धुदत्त ने अपने बड़े भाई से क्षमा मांगी । भविष्यदत्त ने सबका यथोचित सम्मान किया और ज्योंही वह जहाज पर बैठ कर चलने को हुआ भविष्यानुरूपा को नागशय्या एवं नागमुद्रिका की याद आ गयी । भविष्यदत्त जब नागमुद्रिका लेने को गया, बन्धुदत्त ने जहाज चलवा दिया । भविष्यदत्त फिर अकेला रह गया । भविष्यदत्त खूब रोया चिल्लाया और अन्त में मूर्छित होकर गिर पड़ा । कुछ देर बाद उसे होश आया तो वह उठ कर फिर तिलकद्वीप में चला गया । वहां भी वह अपने सूने मकान को देख कर रोने लगा । अन्त में चन्द्रप्रभु जिनालय जाकर भगवान की पूजा करने लगा ।

इधर बन्धुदत्त का मन वासना में भर गया और वह भविष्यानुरूपा से मनोकामना पुरी करने के लिये कहने लगा । किन्तु वह अपने शील पर दृढ रह कर उसे परमार्थ का उपदेश देने लगी । जहाज अन्त में तट पर आ गया । और व हस्तिनापुर पहुंच गये । बन्धुदत्त के पहुंचने पर माता पिता हर्षित हुये । लेकिन

जब कमलश्री ने भविष्यदत्त के बारे में पूछा तो किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह फिर आर्यिका के पास गयी और उसने उससे 'भविष्यदत्त एक माह में आ जावेगा' यह बात कही।

बन्धुदत्त ने आकर भविष्यदत्त की अपार सम्पत्ति को अपनी बतला दी। और सबको मान सम्मान कर अपना बना लिया। भविष्यानुरूपा के लिये कह दिया कि यह अपने तिलक द्वीप के राजा द्वारा भेंट में दी गई है। वह अभी कुंआरी है। राजा को सब तरह से झूंठ बोल कर अपना बना लिया और अपने विवाह की तैयारी करने लगा। उधर भविष्यदत्त चन्द्रप्रभु भगवान की भक्ति अर्चना करने लगा। वहां एक देव विमान पर आया और भविष्यदत्त से सब वृतान्त जानने के पश्चात् उसको विमान पर बिठला कर हस्तिनापुर ले आया। भविष्यदत्त अपनी माता कमलश्री के पास गया और उसकी बन्दना की। वह सब परिजनों से मिला और पिता को साथ लेकर राजा से भेंट की तथा भेंट में बहुत सा सामान दिया। भविष्यदत्त ने राजा से सब वृत्तांत कहा। बन्धुदत्त द्वारा किये गये दुर्व्यवहार की चर्चा की। भविष्यानुरूपा ने बन्धुदत्त द्वारा अपनी पत्नी बताये जाने का विरोध किया। राजसभा में राजा से एवं सभासदों से सब बीती बातों को बताया। राजा ने वास्तविक बात को समझ कर बन्धुदत्त को मारना चाहा लेकिन भविष्यदत्त ने राजा को ऐसा करने से रोका। बन्धुदत्त हस्तिनापुर से निकाल दिया गया।

बन्धुदत्त पोदनपुर पहुंचा और वहां राजा से कहा कि भविष्यदत्त के पास सिंघल देश की पद्मिनी है। वह अतीव लावण्यवती है। वह राजा के भोगने योग्य है वणिक पुत्र के नहीं। पोदनपुर का राजा विशाल सेना लेकर हस्तिनापुर आया और अपना दूत भेज कर राजा से पद्मिनी को देने के लिये कहा तथा आज्ञा के उल्लंघन पर नगर को नष्ट कर दिया जावेगा तथा राज्य पर अधिकार कर लिया जावेगा ऐसा कहा।

हो पठयो पोदनपुर धणी, ताही की सेना न गिणी।
भूपति बहुत भरै तसु दंड, भुजै राज निसंक अखंड।
तुमनै लुइ दीन्हो उपदेश, सुखस्यो भुजौ चाहो देस।
भवसदत्त कै जो पद्मिणी, सो तुम मोकलि ज्यो लंखणी।

भविष्यदत्त स्वयं ने शत्रु राजा का चैलेन्ज स्वीकार किया तथा सेना लेकर लड़ने के लिये आगे बढा। दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ और अन्त में भविष्यदत्त ने पोदनपुर के राजा को बांध लिया और हस्तिनापुर ले आया।

भविष्यदत्त की वीरता से राजा प्रभावित हो गया और अपनी कन्या का भी उससे विवाह कर दिया।

जैन धर्म निहचौ करै, चालै मारग न्याय।
तसु सेवा सुरपति करै अंति सुर्ग जाइ॥

भविष्यदत्त को राज्य सुख भोगते हुये कितने ही वर्ष व्यतीत हो गये। कुछ समय पश्चात् माता के कहने से भविष्यदत्त ने पंचमी व्रत ले लिया। भविष्यानुरूपा को दोहला हुआ और उसने तिलकद्वीप जाकर चन्द्रप्रभु चत्यालय के दर्शनार्थ जाने की इच्छा व्यक्त की। उसी समय मनोवेग नाम का विद्याधर वहां आ गया और वह भविष्यदत्त को विमान में बैठाकर तिलकद्वीप पहुंचा दिया। उन्होंने चारण मुनि के दर्शन कर श्रावक धर्म को भलीभांति सुना तथा चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र की भक्तिपूर्वक पूजा की। मुनिश्री ने स्वर्ग नरक का भी वर्णन किया। भविष्यानुरूपा के चार पुत्र सुप्रभ, स्वर्णप्रभ, सोमप्रभ, रूपप्रभ तथा दो पुत्री उत्पन्न हुई।

बहुत समय पश्चात् हस्तिनापुर में विमलबुद्धि नामक मुनि का आगमन हुआ। भविष्यदत्त ने सपरिवार उनकी वन्दना की। मुनि ने विस्तारपूर्वक तत्वों का विवेचन किया। अन्त में भविष्यदत्त ससार से विरक्त होकर सपरिवार मुनि से संयम व्रत धारण कर लिया तथा अपने पुत्र को राजगद्दी सौंप कर मुनि दीक्षा धारण करली और पहिले स्वर्ग में तथा फिर चौथे भव में निर्वाण प्राप्त किया।

भविष्यदत्त चौपई कवि की बड़ी रचनाओं में से है। यद्यपि काव्य में प्रमुख रूप में कथा का ही निर्वाह हुआ है लेकिन कवि ने बीच बीच में घटनाओं का विस्तृत वर्णन करके उन्हें काव्यात्मक रूप देने का प्रयास किया है। काव्य की भाषा एकदम सरल और बोलचाल की है। उसे हम राजस्थानी के अधिक निकट पाते हैं।

कवि ने भविष्यदत्त चौपई का निर्माण ढूंढाड प्रदेश के प्राचीन नगर सांगानेर में किया था। रचना समाप्ति की निश्चित तिथि संवत् १६३३ कार्तिक सुदी चतुदर्शी थी। सांगानेर आमेर के शासक राजा भगवंतदास के अधीन था तथा वे अपने परिवार के साथ सुखचैन से राज्य करते थे।[1]

---

१ देस ढूंढाहड शोभा घणी, पूजै तहा अली मन तणी।
निर्मल तलै नदी बहुफिरि, सुवस बसै बहु सांगानेरी॥१४॥
चहुं दिसि वण्या भला बाजार, भरे पाटोला मोती हार।
भवन उत्तंग जिणेसुर तणा, सोभै चंदवा तोरण घणा।

भविष्यदत्त चौपई राजस्थानी भाषा की रचना है। इस कृति में वस्तुबंध, चौपई एवं दोहा छन्द प्रमुख हैं।

कवि ने भविष्यदत्त की बृहत् कथा को न संक्षिप्त रूप में लिखी है और न विस्तार से। लेकिन इतना अवश्य है कि कुछ स्थानों को छोड़ कर वह उसमें काव्य चमत्कार उत्पन्न नहीं कर सका और सामान्य रूप से अपने पात्रों का निरूपण करता गया।

८ परमहंस चौपई

प्रस्तुत कृति ब्रह्म रायमल्ल की अन्तिम कृति है। यह एक रूपक काव्य है जिसमें परमहंस आत्मा नायक है। रचना के प्रारम्भ में २५ पद्यों में जीव के स्वरूप का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् काव्य प्रारम्भ होता है।

परमहंस की चेतना स्त्री है तथा उसके चार पुत्र हैं जिसके नाम है सुख, सत्ता बोध और चेतन। एक बार माया परमहंस के पास गयी और उसकी स्त्री बनने के लिये निवेदन किया। माया ने मीठी-मीठी बात करके परमहंस को राजी कर लिया और वह उसकी पटरानी बन गयी।

परमहंस तब कियो विचार, माया कुं कर अंगीकार।
पटराणी राणी कर भाव, परमहंस के मन अतीचाव।

माया ने घर में प्रवेश करते ही पांचों इन्द्रियों पर अपना अधिकार कर लिया। वे अपने पति परमहंस के बातों की अवहेलना करने लगी। पापी मन ने अपने पिता को बांध कर बन्दी-गृह में डाल दिया।

मन पापी जु पाप चितयो, पिता बांधि तब बंदि महि दयो।

इसके पश्चात् मन राजा राज्य करने लगे। राजकुमार मन ने दो नारियों के साथ विवाह कर लिया। उनके नाम थे प्रवृत्ति एवं निवृत्ति। दोनों ने बन्दी

राजा राज करैं भगवतदास, राजकंवर सेवे बहु तास।
परजा लोग सुखी सुखवास, दुखी दलीद्री पुरवैं आस।।

सोलाहसैं तेतीसै सार, कातिक सुदि चौदसि सनिवार।
स्वाति नक्षत्र सिद्धि सुभ जोग, पीडा दुख न व्यापैं रोग।

खाने में पड़े हुए परमहंस के दुख देखे। लेकिन वे उसे छुटकारा नहीं दिला सकी। मन की एक स्त्री प्रवृत्ति ने मोह पुत्र को जन्म दिया जो जगत में चारों ओर निडर होकर फिरने लगा।

सो मोह सगलो संसार, धन कुटुम्ब माड्यो पसार।
गति चार में फिराव सोई, धाल जाल न निकसै कोई ।।४७।।

मन की दूसरी स्त्री निवृत्ति थी। उसने 'विवेक' नाम के पुत्र को जन्म दिया। विवेक अपनी नीति के अनुसार काम करने लगा।

सब जीवन कु दे उपदेश, जिह थे नास रोग क्लेस।
कह विवेक सु बात विचार, सुलह इच्छा सुख संसार।

मन राजा अपने पिता परमहंस को छोड कर माया के साथ रहने लगा। एक दिन माया ने मन से कह कर विवेक को भी बन्दी गृह में डाल दिया क्योंकि उससे भी माया को डर लगने लग गया था। निवृत्ति ने अपने श्वसुर परमहंस को सारी स्थिति समझायी और विवेक को छुड़ाने के लिये जोर देने लगी। परमहंस ने अपनी असमर्थता प्रकट की।

परमहंस जंपै सुन बहू; एह परपंच माया का सहु।
जिसकै परत ध्व चेतना, तिह कै पास जाहु संखीना ।।६२।।

निवृत्ति रानी चेतना के पास गई और उससे विवेक पुत्र छोड़ने की प्रार्थना करने लगी। प्रवृत्ति रानी ने इसका विरोध किया और मन राजा से निम्न प्रकार निवेदन करने लगी।

मोह पुत्र थारो वर वीर, मात पिता को सेवक धीर।
स्वामी देई मोह के राज, सीरो सब तुम्हारो काज।

मन भी प्रवृत्ति रानी के बहकावे में आ गया और उसने मोह को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। मोह ने अपनी नगरी बसाई और निम्न साथियों के साथ राज्य करने लगा —

पुरी अज्ञान कोट चहुं पास, त्रिसना खाई सोत्र तास।
च्यारू गति दरवाजा बण्या, दीसैं तहां विषै मन घणा ।।७२।।

मिथ्या दरसन मंत्री तास, सेवक आठ करम को वास।
क्रोध मान डंभ परचंड, लोभ सहत तिहां निवस पंड ।।७३।।

पंच प्रमाद मंत्र तसु तणा, तिहंसुं मोह कर रंग घना ।
रात दिवस ते सेवा करैं मोह तनो बहु रख्या करैं ।।७४।।

सातौं विसन सुभ्र गती राज, जान नहीं काज अकाज ।
निगुणा संधि सभा असमान, सोभ कुरमति सिंघासन थांन ।।७५।।

चवर ढल रित विभ्ररस चौसाल, छिद्र परोहित पठउ कुल्याल ।
कुक कपट नग्र कोटवाल, पाखंडी पोल्या रखवाल ।।७६।।

नगर में सभी व्यसनों की चौकड़ी जमने लगी । सभी तरह के अनैतिक कार्य होने लगे । दूसरी ओर कुमति ने चेतना राजा से निवृत्ति के पुत्र विवेक को छोड़ने का आग्रह किया । लेकिन वहां उसकी दाल नहीं गली । तब वह मन के पास गयी और निम्न प्रकार परिचय दिया ।

बोली कुमती जोडीया हाथ, बीनती सुनो हमारी नाथ ।
सुरग तणी हु देवांगना, तेरा सुजस सुण्या हम घणां ।।८७।।

मेरा मन बहु उपनो भाव, भली बात देखन को चाव ।।
छोड़ देव आई तुम थांन, तुम देखत सुख पाके जान ।।८८।।

मन राजा को कुमति की बातें बहुत रुचि कर लगी और उसे अपनी पटरानी बना ली । कुमति ने सर्व प्रथम मन से विवेक को छोड़ने का आग्रह किया । मन ने तत्काल उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और विवेक को बन्धन मुक्त कर दिया ।

कांमी पुरुष ज कोई होई, कांमनी कह्यो न मेटै कोई ।
तिह को छांदो आवै घनो, ईह सुभ काह कांमी नर तनो ।।६५।।

विवेक बंधन से मुक्त होकर चेतना माता के पास गया और उसके पांव छुए । विवेक को देख कर चारों ओर हर्ष छा गया । एक दिन चेतना ने निवृत्ति से कहा कि मोह पापी है दुष्ट स्वभाव का है तथा उसका स्वभाव ही दूसरे को पीड़ा देना है इसलिये मोह के देश को ही छोड़ कर चला जाना चाहिये । निवृत्ति और विवेक तत्काल वहां से चल दिये । जब वे आधी दूर ही गये तो उन्हें हिंसा देश दिखायी दिया जिसमें सभी तरह के खोटे बुरे कार्य होते थे । कवि ने उसका निम्न प्रकार वर्णन किया है—

बीसै तह स्त्र ब्योहार, उपरां उपरी मारै मार ।
हांसि निंद्या तिहां घती ही होइ, मारै कोई सराहै लोई ।।१०१।।

वयां रहत परजा परमांन, बाट बढाउ न लह ठाय ।
कर बिसास मारे सबु जोग, हिंसा बेस बसै जो लोग ।।१०२।।

बोलै जको झूंठ असमान, तिह सु त्यागो तुम सुनि जान ।
अधिउ झूंठ एक बोलै बाच, जिह यें टोकर मार सांच ।।१०३।।

उसमें सभी तरह की बुराइयां थी । हिंसा झूंठ चोरी करने वालों की प्रशंसा होती थी । या तो वहां कसाई थे या फिर अत्यधिक विपन्न । नगर को देख कर दोनों को अत्यधिक वेदना हुई ।

निवृत्ति एवं विवेक फिर बढ़े । इसके पश्चात् वे 'मिथ्यात' नामक देश में पहुंचे । वहां सब उल्टी मान्यता वाले लोग थे । अन्ध विश्वास और मिथ्या मान्यताओं में वे फंसे हुए थे ।

रागसहित को मानैं देव, तारन समरथ तरन सुएव ।
कामनी संग सदा ही रह, तिह मैं सुद्ध देवता कह ।।११२।।

....

पीपल देव पूज बहु भाई, तिहमैं पापी काटन जाई ।
लेई काठ से आसन जोग, महा मूढ मिथ्याती लोग ।।१२१।।

गंगा तीरथ कह सहु कोई, तिहकै सनांन मुकति पद होई ।
तिह में अशुचि सोच लै करै, मूढ लोग देव विस्तरैं ।।१२२।।

पूज बरच अंवला तनो, सुख संपत स्वामि वे धनो ।
महादेव कह बंदना जाय, तिह नै पापी तुझिर खाय ।।१२३।।

कवि ने उस समय में व्याप्त लोक मूढताओं पर विस्तार से प्रकाश डाला है । जिन देवी देवताओं के आगे बलिदान होता था, उसकी भी कवि ने गहरी निन्दा की है तथा जोगियों की भस्मी में विश्वास करने वालों की कवि मजाक उड़ायी है । वे मद्य एवं मांस का भोजन करने वाले गुंसाई जनों को भी मिथ्यात्वी कहते हैं—

निवृत्ति और विवेक 'मिथ्यात' नगर की दयनीय स्थिति देख कर अत्यधिक दुखी हुये और वे दोनों आगे बढ़े । वे जिन शासन के देश पहुंचे और उसकी सुन्दरता से प्रसन्न होकर उसमें प्रवेश किया । जिन शासन नगर के निवासियों के सम्बन्ध में निम्न प्रकार वर्णन किया है ।

तिहां भलो दीसै संजोग, पानी छांण्या पीव सहु लोग ।
मुनीश्वर बहु पालैं आचार, पाप पुन्य को करै विचार ।।१३२।।

दया वृक्ष सिंह कर नीवास, आश्रम चिता मन को वास ।
संजम फूल ते लगते घना, तिहू का सुख भुंजे भव्यईना ।।१३२।।

सुभ भाव कोईल बोलंत, जिम वाणी तिहां वाख फलंत ।
सरस वचन बोलै गुन आन, निपज नागबेल को पान ।।१३३।।

पान फूल तीहां बहु महकाई, मुनी ध्यान मधु करत अघाई ।
उद्यान सरोवर अधिक गहीर, तिह को थाग लहू मुनि धीर ।।१३४।।

जिन शासन नगर के राजा का नाम विमल बुध था । एक दिन जब वह वन क्रीड़ा के लिये गया तो उसने निवृत्ति एवं विवेक दोनों को देख लिया । दोनों को उसने बड़ा सम्मान दिया और फिर उन्हें अपने घर ले गया । वह दोनों का भोजन आदि से सम्मान किया । इसके पश्चात् राजा ने निवृत्ति से उसके पुत्र विवेक की बड़ी भारी प्रशंसा की और कहा कि सुमति के साथ विवेक का विवाह हो जाना चाहिये । निवृत्ति ने विवेक के विवाह का निम्न शब्दों में उत्तर दिया—

भन निवृत्य सुनो हो राव, जे छै इसो तुम्हारो भाव ।
इक सोनो इक हीरा जड्यो, कहो विचार न कौन बापरो ।।१४४।।

दोनों के विवाह की तैय्यारी होने लगी—

चौरी मंडप रच्यो विसाल, सोभै तोरन मोत्यां माल ।
छाये वस्त्र पटबंर सार चंदन थंभ सुगंध सुचार ।।१४६।।

गावै त्रिया करै बहु कोड, वर कन्या को बांध्यो मोड ।।
लगन महूरत बहुल उछाह, विवेक सुमति को भयो विवाह ।।१४७।।

निवृत्ति सुमति वधू को पाकर अत्यधिक प्रसन्न हुई । खूब दान दिया । एक दिन उसने विमलबुध से जाने की आज्ञा चाही । विमलबुध ने कहा कि वे प्रवचन नगर में जावे और वहां सुख चैन से जीवन व्यतीत करें ।

तुम प्रवचन नगर म चलो, होसी सही तुम्हारो भलो ।
बंदो जाय चरन अरहंत, तिहठै सुख सु वसो अनंत ।।१५१।।

तिहां विवेक बडाई लहै, भलो पुरुष सहु कोई कहै ।
कीरत बहुत होत तुम तनी, सुख संपती तीहां मिलसी घनी ।।१५२।।

विमलबुध की बात मान कर निवृत्ति विवेक एवं सुमति तीनों प्रवचन नगर के लिये रवाना हो गये और कितने ही दिन चलने के पश्चात् वे तीनों वहां पहुंचे ।

प्रवचन नगर बहुत विशाल था। दया धर्म वहां निवास करते थे। सब जीवों को अपने समान समझा जाता था। अनाचार को स्वप्न में भी नहीं जानते थे। तथा सर्वदा व्रत शील संयम की पालना होती थी। प्रवचन नगर को वर्णन कवि के शब्दों में देखिये—

तिहां अरिहंत देव को वास, इंद्र एक सो सेव तास।
धाजा साढा बारा कोड़, सुर नर खेचर नम कर जोड़॥१५६॥

मारगनाथ लोक संचरै, करम बंध कोई नवी करै॥
उपरां उपरी वेरन कास, जिम सिधालो सिघावास॥१५७॥

उस नगर में कोट थे, सरोवर थे, जिनमें कमल खिले हुये थे। चारों ओर दरवाजे थे तथा तोरण द्वार थे। वहीं समोसरन था। तीर्थंकर के दर्शन से ही पुण्य बंध होता था। तीनों नगर के अन्दर गये और उन्होंने चारों ओर कलश लगे हुये देखे। जिन मन्दिर के दर्शन किये। उनको आनन्द की कोई सीमा नहीं रही। वहीं जिनेन्द्र का समोसरन था। चारों ओर अपार शान्ति थी। ईर्ष्या, कषाय एवं द्वेष का कहीं नाम भी नहीं था। निवृत्ति विवेक एवं सुमति के साथ समवसरन में गये तथा तीन प्रदिक्षणा देकर वहां बैठ गये। जिनेन्द्र की आशीर्वादात्मक दिव्यध्वनि निम्न प्रकार खिरी—

रहो ईहां तुम निर्भय थान, सुजो बहु सुख तनां निधान।
मन में चिंता मति कोई करो, ईहा थानक को दुन्दम हरो॥२२५॥

इस प्रकार विवेक ने 'पाप नगर' का वृत्तान्त सुनाया। जहां मोह राजा राज्य कर रहा है वहां का बुरा हाल है—

मिथ्याती बहु करै कुकर्म, जाणै नहीं जिनेश्वर धर्म,।
बहुत जाति पाखंडी फिरै, मूढ लोक तसु सेवा करे॥२३०॥

झूठ बोलतां संकन करै, धन कै काज सगा परहरै।
जै तो महा दुष्ट आचार, तो बहु मोह राव परिवार॥२३३॥

विवेक ने अपने आने का पूरा वृत्तांत कहा—

बीमल बोध की सांभिलो बात, तुम पानक आया जिन तात।
कीयो पाछलो बहु परगास, दीठो जिनवर पुगी आस॥

इधर मोह को पुत्र लाभ हुआ जो चौरासी लाख जीवों का शत्रु था। वह जिनेन्द्र की बात नहीं मानता था। उसने बहुत से तपस्वियों के तप का खंडन कर

दिया यहां तक कि ब्रह्मा, विष्णु एवं इन्द्र को भी नहीं छोड़ा। वह देश मिथ्यात देश है जहां जैन धर्म नहीं है किन्तु वहां एकान्त मत का प्रचार है।[1]

दूसरी ओर सम्यक्त्व नगर में देव शास्त्र गुरु में पूरी भक्ति थी तथा वहां सम्यग्दर्शन के आठ अंगों की पालना होती थी। तीर्थंकर ने विवेक की बहुत प्रशंसा की और उसे पुण्य नगरी का राज्य दे दिया। पुण्य नगरी में प्रतिदिन भगवान की पूजा होती थी, चारों प्रकार के दान दिये जाते थे तथा शीलव्रत की पालना होती थी। विवेक सदलबल पुण्य नगर में निवास करने चले।

> तिर्थंकर जाण्यौ गुणसार, कीन्हों विदा विवेक कुमार।
> दरसन ग्यान चरन तप सार, चहुं विधि सेन्या चली अपार ॥२७०॥
>
> उपसम गज गढ़ चल्यो कुमार, तास छत्र सिर धो भवपार।
> तास निसांन बाज बहु भांति, सम दम सजन साथ चहोत ॥२७१॥

पुण्य नगर को विवेक ने देखा। तीन गुप्तियां जिस नगर का कोट थी, पांच समितियां ही मन्दिर थीं तथा नियम रूपी कलश जिसके शिखरों पर सुशोभित था। द्वार पर आनन्द का तोरण था तथा कीर्ति ही जिसकी ध्वजा थी जो चारों ओर उछल रही थी। चार संघ ही भावना के समान थे।

पुण्य नगरी में विवेक सुख से राज्य करने लगा। चारों ओर सुख शांति थी जो मुक्ति चोर एवं अन्तराय थे वे सब विवेक से दूर रह गये। मुक्ति का सबके लिये द्वार खुल गया—

> विवेक राजा निकंट करै, जिनकी आग्या मन में धरै।
> सहल कुटंब विवेक भोवाल, सुख में जातन जान काल ॥२८३॥

इसके पश्चात् दूसरा अध्याय प्रारम्भ होता है। कवि ने इस अध्याय को निम्न प्रकार आरम्भ किया है —

दोहा

> ब्रह्म राइमल बंदिया कह्यो सास्त्र गुरु सार।
> ओर कथा आगें भई, तिह को सुणो विचार ॥२८४॥

---

१ राज करै राजा मिथ्यात, जानं नहीं जैनी की बात।
मत एकांत तास उचरै, बोध महाभड अति ही करै ॥२५४॥

सांति मुकति सुख सिद्ध ।।जि०।। लाडू इणि परि सोधियो ।।१३।।
जिम पामउ निरवांण ।।जि०।। सांभरि नयरि सुहामणो ।।१४।।
भव्य महाजन लोग, किया भणी श्रावकतणी ।।१५।।
पालउ सब सुख होइ, ब्रह्म राइमल इम भणउ ।।१६।।
धर्म्म जिणेसर सरण जिणेसर लाडू हो ।।१७।।

उक्त रचना 'सांभर' में रची गयी थी । सांभर में कवि ने जेष्ठ जिनवर कथा को संवत् १६२० में निबद्ध की थी । इसलिये यह रचना भी उसी समय की मालूम देती है ।

१२. चन्द्रगुप्त के सोलह स्वप्न

जैन पुराण साहित्य में स्वप्नों का अत्यधिक महत्व माना गया है । तीर्थंकर के गर्भ में आने के पूर्व उनकी माता को सोलह स्वप्न आते हैं और इन स्वप्नों के अनुसार ही उसे तीर्थंकर पुत्र होने का भान होता है । भरत सम्राट के स्वप्नों का भी पुराणों में खूब वर्णन मिलता है । प्रस्तुत कृति में सम्राट चन्द्रगुप्त को आने वाले सोलह स्वप्नों का वर्णन किया है । चन्द्रगुप्त हमारे देश के सम्राट थे तथा जैन धर्मानुयायी थे । सम्राट को जब स्वप्न आये तो उन्होंने अपने गुरु भद्रबाहु से उनका फल जानना चाहा । उस समय भद्रबाहु ने जो उनका संक्षिप्त फल बतलाया उसी का कविवर रायमल्ल ने प्रस्तुत कृति में वर्णन किया है ।

१. टूटी हुई डाली	क्षत्रिय जाति की दीक्षा में विश्वास नहीं रहेगा ।
२. अस्त होता हुआ सूर्य	द्वादशांग श्रुत का ह्रास होगा तथा उसे जानने वाले कम रह जावेंगे ।
३. उगते हुए चन्द्रमा में अनेक छेद	जिन शासन अनेक भागों में बंट जावेगा ।
४. बारह फण वाला सर्प	बारह वर्ष का दुष्काल पड़ेगा साधु अपने आचार से विमुख होंगे ।
५. देव विमान गिरता हुआ	भविष्य में चारण ऋद्धिधारी मुनि नहीं होंगे ।
६. कूडे में कमल उगता हुआ	संयम धर्म केवल वैश्य जाति में रहेगा । ब्राह्मण और क्षत्रिय भ्रष्ट हो जावेंगे ।

७. नाचते हुए भूत	नीच जाति के देवों में भाव होंगे तथा जैन धर्म का ह्रास होगा।
८-९. सूखा हुआ सरोवर तथा दक्षिण दिशा की ओर जल	जहां-जहां तीर्थंकरों के कल्याणक हुए हैं वहां वहां इने गिने जैनधर्मावलम्बी रहेंगे। जैन धर्म दक्षिण में रहेगा।
१०. चमकते हुए कीट	भविष्य में जैन धर्म कम हो जावेगा तथा अधिकांश लोग मिथ्या धर्मों का सेवन करते रहेंगे।
११. सोने के बर्तन में दूध पीता हुआ कुत्ता।	ऊंची जाति में लक्ष्मी नहीं होगी लेकिन नीच जाति के लोग लक्ष्मी का उपभोग करेंगे।
१२. हाथी पर बैठा हुआ बन्दर	नीच जाति के हाथ में शासन होगा तथा क्षत्रिय उसकी सेवा करेंगे।
१३. सीमा को लांघता हुआ समुद्र	राजा न्याय का मार्ग छोड़ देगा तथा प्रजा को लूटकर खायेगा।
१४. रथों में बैलों के स्थान पर घोड़े	युवा दीक्षा लेंगे तथा वृद्ध माया में फंसे रहेंगे।
१५. धूल से ढकी हुई रत्नों की राशि	पंचम काल में साधुओं में परस्पर में विरोध रहेगा।
१६. जूझते हुए काले हाथी	पंचम काल में दिन प्रतिदिन कष्ट बढ़ेंगे तथा समय पर वृष्टि नहीं होगी।

स्वप्नों का फल जान कर सम्राट चन्द्रगुप्त को जगत से वैराग्य हो गया और चैत्र सुदी ११ को अपने पुत्र को राज्य भार सौंप कर मुनि दीक्षा धारण कर ली।

रचना काल—कृति में न रचनाकाल दिया हुआ है और न रचना का स्थान। केवल कवि ने अपने नाम का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

जिण पुराण माहि हम सुणी, ताहि विधि ब्रह्म रायमल भणी ॥२५॥]

कृति में २५ पद्य हैं उनकी यह प्रारम्भिक रचना लगती है। राजस्थानी शैली की इसमें प्रमुखता है।[1]

---

१. आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर, गुटका संख्या ४, पत्र संख्या ८४ से ८६ संवत् १७२४ लिखित पं० लिखमीदास।

१३. जम्बू स्वामी चौपई

ब्रह्म रायमल्ल का यह बिना संवत् वाला प्रबन्ध काव्य है। इसमें भगवान् महावीर के पश्चात् होने वाले अन्तिम केवली जम्बू स्वामी के जीवन का वर्णन किया गया है। जम्बू कुमार एक श्रेष्ठि के पुत्र थे जिन्होंने अपनी नव विवाहित आठ पत्नियों को छोड़ कर जिन दीक्षा धारण करली थी और अन्त में घोर तपस्या के पश्चात् निर्वाण प्राप्त किया था। जम्बू स्वामी का जीवन जैन कवियों के लिये पर्याप्त आकर्षक रहा है इसलिये सभी भाषाओं में इनके जीवन पर आधारित काव्य मिलते हैं।

प्रस्तुत कृति की एक मात्र पाण्डुलिपि जयपुर के दि. जैन मन्दिर संघीजी के शास्त्र भण्डार के एक गुटके में संग्रहीत है[1]। लेखक ने जब सन् १९५८-५९ में इस मन्दिर के शास्त्रों की सूची बनायी थी तब उक्त रचना को देख कर उसका परिचय लिखा था। उस समय गुटके से विशेष नोटस् नहीं लिये जा सके लेकिन वर्तमान में वह गुटका अपने स्थान पर काफी खोज करने के पश्चात् भी उपलब्ध नहीं हो सका। इसी खोज में ग्रंथ प्रकाशन का कार्य भी कुछ समय के लिये बन्द रखा गया लेकिन उसे ढूंढने में सफलता नहीं मिल सकी। इसीलिये यहां कृति के नामोल्लेख के अतिरिक्त विस्तृत परिचय नहीं दिया जा सका। भविष्य में प्रस्तुत कृति या तो इसी भण्डार में अथवा अन्यत्र किसी भण्डार में उपलब्ध हो गयी तो उसका विस्तृत परिचय देने का प्रयास किया जावेगा।

१४. चिन्तामणि जयमाल

यह स्तवन प्रधान कृति है जिसकी एक प्रति जयपुर के दि. जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार के गुटके में संग्रहीत है।[2] भरतपुर के पंचायती जैन मन्दिर में भी उसकी एक पाण्डुलिपि उपलब्ध है।[3]

---

१. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची चतुर्थ भाग पृष्ठ संख्या ७१०

२. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची चतुर्थ भाग पृष्ठ संख्या

३. ,, पंचम भाग ,, १०५७

१५. नेमिनिर्वाण

यह भी लघुकृति है जिसमें २२ वें तीर्थंकर नेमिनाथ का स्तवन मात्र है। उसकी एक प्रति अजमेर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है।

मूल्यांकन—इस प्रकार महाकवि ब्रह्म रायमल्ल ने हिन्दी जगत् को १५ कृतियां भेंट करके साहित्य सेवा का एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। राजस्थान के ऐसे शास्त्र भण्डारों में [illegible], हो सकता है और भी कृतियां मिल जावें। श्री महावीर क्षेत्र की ओर से प्रकाशित ग्रन्थ सूचियों में ब्रह्म रायमल्ल के नाम से कुछ रचनायें और भी दी हुई हैं लेकिन कृतियों के गहन अध्ययन के पश्चात् वे ब्रह्म रायमल्ल की नहीं निकली। ऐसी कृतियों में आदित्यवार कथा[1] एवं छियालीस ठाणा[2] चर्चा के नाम उल्लेखनीय है। महाकवि ने अपनी सभी कृतियां स्वान्त : सुखाय लिखी थी क्योंकि अन्य जैन कवियों के समान कवि की कृतियों में न तो किसी श्रेष्ठि के आग्रह का उल्लेख है और न किसी भट्टारक के उपदेश का स्मरण किया है। ग्रंथ प्रशस्तियों में कवि ने अपने गुरु का, रचना समाप्ति काल वाले नगर का, नगर के तत्कालीन शासक का और वहां के जैन समाज, मन्दिर तथा व्यापार आदि की स्थिति का सामान्य उल्लेख किया है लेकिन वह अत्यधिक संक्षिप्त होने पर भी इतिहास की कड़ियों को जोड़ने वाला है तथा तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक दशा की ओर प्रकाश डालता है। साथ ही में वह कवि के घुमक्कड़ जीवन का भी द्योतक है।

महाकवि की सभी रचनाएं कुछ सामान्य अन्तर लिये हुये एकसी शैली में लिखी गयी हैं। सात लघु रचनाओं के विषय में तो हमें कुछ नहीं कहना क्योंकि वे रचनायें प्राय: सामान्य स्तर की है और काव्य की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण भी नहीं है। शेष आठ रचनाएं सभी बड़ी रचनायें हैं और वे कवि की काव्य प्रतिभा की परिचायक हैं। ये सभी रचनायें रास शैली में लिखी गयी हैं चाहें उनके नाम के आगे रास लिखा हो अथवा चौपई एवं कथा लेकिन सभी रचनाओं में कवि ने पाठकों की स्वाध्याय शक्ति का अधिक ध्यान रखा है और अपनी काव्य प्रतिभा लगाने का काम। इन सभी काव्यों को देश एवं समाज में काफी लोकप्रियता प्राप्त हुई क्योंकि राजस्थान के जैन ग्रंथागारों में ब्रह्म रायमल्ल के काव्यों को दो चार नहीं किन्तु पचासों प्रतियां मिलती है। सबसे अधिक पांडुलिपियां भविष्यदत्त चौपई,

---

१. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची चतुर्थ भाग पृष्ठ संख्या ७१२
२. वही पृष्ठ संख्या ७६५

श्रीपालरास, एवं नेमिश्वररास की मिलती है। जिससे इनकी लोकप्रियता का पता चलता है। आठ बड़ी रचनाओं में 'जम्बू-स्वामी रास' की एक पांडुलिपि जयपुर के संघीजी के मन्दिर में संग्रहीत थी। लेखक ने संघीजी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार की ग्रंथ सूची बनाते समय उक्त रचना को नोट किया थी और उसका परिचय भी दिया था लेकिन पर्याप्त प्रयास करने पर भी वह पाण्डुलिपि प्राप्त नहीं हो सकी। परमहंस चौपई की सारे राजस्थान में केवल दो भण्डारों में पांडुलिपि प्राप्त हो सकी है। वे भण्डार हैं दौसा (जयपुर) एवं अजमेर का भट्टारकीय भण्डार। सभी लघु रचनायें गुटकों में अन्य पाठों के साथ संग्रहीत हैं।

भाषा की दृष्टि से

भाषा की दृष्टि से महाकवि ब्रह्म रायमल्ल को राजस्थानी भाषा का कवि कहा जायेगा। लेकिन यह राजस्थानी ढूंढाड प्रदेश की भाषा है मारवाड़ एवं मेवाड़ भाषा की नहीं। इसके अतिरिक्त यह राजस्थानी काव्यगत भाषा न होकर बोलचाल की भाषा है। शब्द एवं क्रियाएं मिश्रित होकर बदलते रहते हैं। कवि ने रास संज्ञक, कथा संज्ञक एवं चौपई संज्ञक सभी कृतियों में इसी बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। भाषा इतनी मधुर, स्वाभाविक एवं सरल है कि थोड़ा भी पढ़ा लिखा व्यक्ति कवि के काव्यों का सहजता से रसास्वादन कर कर सकता है। पद्यों के निर्माण में स्वाभाविकता है। उसका एक उदाहरण देखिये—

> हो जाणौ बोल्या भारव स्वामी, हो तुम तौ छौ छो आकास्यां गामी।
> दीप अढाई संचरौ जी, हो पूरब पश्चिम केवल ज्ञानी।
> चोथौ काल सदा रहैजी, हो तहकी हमस्यौं कहिज्यो वातों ॥११०॥[1]

इसी तरह एक स्थान पर 'हो हमने जी सीख देण नु लागी' राजस्थानी भाषा पाठ का सुन्दर उदाहरण है[2]। कवि ने शब्दों एवं क्रियापदों को राजस्थानी बोलचाल की भाषा में परिवर्तित करके उनका काव्यों में प्रयोग किया है। ऐसे क्रियापदों में जाणिज्यौ (श्रीपाल रास/७१) माणिस्यौ (श्रीपाल रास/७३) ल्यायौ (प्रद्युम्न रास/६८) ल्याया (नेमीश्वर रास/२३) आइयो (श्रीपाल २०६) सुण्या (श्रीपाल/२१०) जैसे पचासों क्रियायें हैं। कवि ने इसी तरह राजस्थानी शब्दों का प्रयोग

---

१. प्रद्युम्नरास पद्य संख्या १०
२. वहीं पद्य संख्या १६

बहुलता से किया है जिनके कारण काव्यों में सरसता आ गयी है। कुछ शब्द निम्न प्रकार हैं—

हिन्दी शब्द	राजस्थानी शब्द
उज्जयिनी	उजेणी[3]
दहेज	डाइजो[4]
जिनालय	जिणाले[5]
श्रावक	सरावक[6]
स्नान	सनान[7]
पुष्प	पहुप[8]
पीछे	पछै[9]
स्त्री, पत्नी	तीया[10]
यौवन	जोबन[11]
जीमनवार	ज्यौणार[12]
जामाता	जंवाइ[13]
विधवा	रांड[14]

---

३. हो तिह मैं मालव देश विसाल, उजेणी नग्री भली ॥श्रीपाल॥६॥
४. हो दीयो डाइजो अधिकु सुधार ॥श्रीपाल रास॥४०
५. मढ जिणाले जगनाथ वही/४२
६. हो धर्म सरावक जती को सुणौं वही/४६
७. करे सनान लए भरि नीर ,, /५०
८. चंदन पहुप लगाए अंग ,, /५३
९. पछै आप भोजन करै ,, /६०
१०. हो तियां सहित राजा सिरीपाल श्रीपालरास/७०
११. लाधि तिया सुभ जोबन बाल ,, ११२
१२. सिरीपाल दीनी ज्यौणार ,, ११३
१३. रांज जवाइ इहु सिरिपाल ,, ११८
१४. हो देख्यौ रांड तणौ व्यवहारो ,, १३४

श्रेणिक	बाण्या[15]
ज्योतिषि	जोतिगी[16]
सास	सासु[17]
प्रद्युम्न	परदवण[18]
पृथ्वी	पीरथी[19]
स्वर्ग	सुर्ग[20]
अप्सरा	अपछरा[21]
बहिन	बहण[22]
चुपके	छाने[23]
दुर्योधन	दरजोधन[24]
युद्ध	रूभुज्भ

करण कारक में 'से' के स्थान 'स्यो' का प्रयोग किया गया है तथा हमस्यो, कलत्रस्यो, कंतस्यो, बहुस्यो, गुरुस्यो आदि का प्रयोग कवि को अधिक प्रिय रहा है। संख्या वाचक शब्दों में पहलो[1], दूजा[2], तीजा[3], चौथा[4] जैसे शब्द प्रयोग में आये हैं।

कवि ने अपने काव्यों में कुछ ठेठ राजस्थानी शब्दों का प्रयोग किया है जिससे काव्य रचना में एवं शब्दों के चयन में स्वाभाविकता आयी है। कुछ शब्द निम्न प्रकार हैं—

१. सवासिणी[5]—राजस्थान में इस शब्द का दूल्हा दुल्हिन की विवाहित बहिन

---

१५. जो सुण्या बयन जे बाण्या कह्या	श्रीपालरास	१४६
१६. हो लीयो राइ जोतिगी बुलाइ	,,	१६४
१७. हो सुंदरि बात सासुस्यों कही	,,	२२६
१८. रास भणो परदवण को जी	प्रद्युम्न रास	१
१९. नारद पीरथी सहु फिरीजी	,,	
२०–२१. सुर्ग अपछरा सारिखी जी	,,	२१
२२. हो रुपि बहण जै होइ कंवारी	,,	३२
२३. हो दरजोधन घरि लेख पठायो	,,	६०
२४. किया रूभुज्भ कियो घणो जी	,,	१३२

के लिये प्रयोग किया जाता है। सवासिणी का विशेष सम्मान होता है तथा उसे दुल्हिन की विशेष सम्हाल करनी पड़ती है।

२. कुकरी[6]—यह शब्द कुत्ते के लिये प्रयुक्त होता है। गांवों में कुत्ते को आज भी कूकरा ही कहा जाता है।

३. छाने[7]—जो कार्य दूसरों के द्वारा बिना देखे किया जाता है उसे छाने-छाने काम करना कहा जाता है।

४. रांड[8]—विधवा स्त्री/राजस्थान में किसी महिला को रांड कहना गाली देने के बराबर है।

५. ढोकना—नमस्कार करना[9]

६. लुगाई—स्त्री/महिला[10]

७. ज्योणार—सामूहिक भोजन[11]

८. बीलाई—बिल्ली[12]

महाकवि ब्रह्म रायमल्ल के काव्यों को हम निम्न भागों में विभाजित कर सकते हैं—

१. पौराणिक
२. ऐतिहासिक
३. आध्यात्मिक
४. सामाजिक
५. लघु काव्य

---

१. हो पहलौ जी राजा मंत्रीक बुध्दि प्रद्युम्नरास ६
२. हो दूजा जी पराउ जिण की वाणीं ,, २
३. हो तीजा जी पराउ गुरु निरगंथो ,, ३
४. चौथो काल सदा रहेजी........। ,, १०
५. गावैं हो गीत सवासिणी, नाचै जी अपछरा करिवि सिंगार ।।नेमीश्वररास।।१४।।
६. कुकरी काम तै काडिया अहो गई जी बीलाई ।।नेमी।।६०
७. हो राणी भणैं राउ उर मानैं, हो विद्या तीनि लेहु थो छानें ।।प्रद्युम्नरास।।११३
८. राजा मन में चितवै जी, हो देखो रांड तणा व्योहारो ।।१२३।। प्रद्युम्नरास।।
९. चरण माता का ढोकिया जी
१०. हो सौलग भामा मारि पठाई, हो गावै गीत द्वारिका लुगाई ।।प्रद्युम्न।।१५
११. हो सति भामा घरि गयो कुमारो, भानुकुमार व्याह ज्योणारो ।।प्रद्युम्न।।१४४
१२. अहो गई जी बिलाई मारग काटि ।। नेमीश्वर रास ।।६०।।

पौराणिक—कवि के पौराणिक काव्यों में श्रीपालरास, नेमीश्वररास, हनुमतकथा, प्रद्युम्नरास एवं सुदर्शनरास के नाम लिये जा सकते हैं। इन सभी काव्यों के नायक पौराणिक हैं और जिनकी कथा वस्तु का आधार महापुराण, पद्मपुराण और हरिवंशपुराण जैसे पुराण हैं लेकिन स्वयं कवि ने अपने काव्यों में कथा का आधार नहीं अपनाया है। इसका प्रमुख कारण इन कथाओं की लोक-प्रियता का होना है। कवि ने कहीं कथा का संक्षिप्तीकरण कर दिया है तो कहीं कथा को विस्तृत रूप देकर उसमें काव्यात्मक चमत्कार पैदा करना चाहा है। यद्यपि इन काव्यों में कथा वर्णन कवि का मुख्य ध्येय रहा है लेकिन अपने काव्यों को लोकप्रिय बनाने के लिये उनमें भक्तिरस, शृंगाररस, एवं वीररस का पुट दिया है और उससे सभी काव्य आकर्षक बन गये हैं। नेमिनाथ २२ वें तीर्थंकर हैं वे तो निर्वाण प्राप्त करते ही हैं किन्तु श्रीपाल, हनुमान, प्रद्युम्न एवं सुदर्शन सभी नायक जीवन के अन्त में वैराग्य धारण कर तथा घोर तपस्या करके निर्वाण प्राप्त करते हैं। इन सभी के जीवन में अनेक बाधाएं आती हैं। श्रीपाल और प्रद्युम्न को तो जीवन में अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ता है लेकिन उनकी जिनेन्द्रभक्ति में प्रबल आस्था होने के कारण उन्हें सभी विपत्तियों से मुक्ति मिलती है। सुदर्शन को तो सूली पर चढ़ाने के लिये ले जाया जाता है लेकिन उसे भी अपने पूर्वोपार्जित कर्मों एवं जिनेन्द्र भक्ति के कारण चमत्कारिक रीति से सूली के स्थान पर सिंहासन मिलता है। यद्यपि इनकी कथा का आधार पुराण है लेकिन काव्य में सभी लौकिक एवं सामाजिक तत्व विद्यमान हैं।

ऐतिहासिक— जम्बू स्वामी भगवान महावीर की परम्परा में होने वाले अन्तिम केवली हैं जिन्हें इस युग में निर्वाण की प्राप्ति हुई थी। मगध प्रदेश की राजधानी राजगृह के एक श्रेष्ठी के यहां जम्बू कुमार का जन्म हुआ। बचपन में ही सधर्मा स्वामी के उपदेश से प्रभावित होकर विरक्त हो गये। अपने कुटुम्बियों के आग्रह पर उन्होंने विवाह तो किया लेकिन विवाह के कुछ ही समय पश्चात् उन्होंने मुनि दीक्षा ले ली और ४० वर्ष तक देश के विभिन्न भागों में विहार करने के पश्चात् चौरासी मथुरा से निर्वाण प्राप्त किया। कवि ने अपने इस रास काव्य में तत्कालीन ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लेख नहीं किया है।

आध्यात्मिक—परमहंस चौपई कवि का सबसे उत्कृष्ट रूपक काव्य है जिसके परमहंस नायक हैं तथा चेतना नायिका है। अन्य पात्रों में माया, मन, प्रवृत्ति एवं निवृत्ति, विवेक एवं ज्ञानावरणादि अष्ट कर्म हैं। कवि ने अत्यधिक व्यवस्थित रूप से अपने पात्रों को प्रस्तुत किया है। काव्य का प्रमुख उद्देश्य मानव को असत् को

हटा कर सत् की ओर ले जाना है। यही नहीं मिथ्यात्व के दोषों को बतलाना भी कवि का उद्देश्य रहा है। पाप नगरी एवं पुण्य नगरी के भेद को कवि ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में प्रस्तुत किया है।

सामाजिक

राजा महाराजाओं अथवा तीर्थंकरों को काव्य का नायक बना कर उनके गुणानुवाद के अतिरिक्त सामान्य मानव के जीवन को लेकर काव्य रचना करना जैन कवियों की विशेषता रही है। ये वर्ग विहीन काव्य रचना में विश्वास रखते हैं तथा किसी भी जाति एवं वर्ग में पैदा होने पर भी यह मानव जीवन के उच्चतम ध्येय को प्राप्त कर सकता हैं इसका दिग्दर्शन कराना जैन कवियों को अभीष्ट रहा है। वैसे तो प्रायः सभी काव्यों में समाज के वातावरण, रीति-रिवाज एवं परम्पराओं का वर्णन रहता है लेकिन कुछ काव्यों में उक्त बातों का विस्तृत वर्णन मिलता है। भविष्यदत्त चौपई, जम्बूस्वामी चौपई जैसे काव्य इस शैली की प्रमुख कृतियां हैं। कवि ने इन काव्यों में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का जो स्पष्ट वर्णन किया है उससे यह काव्य अधिक लोकप्रियता प्राप्त कर सके हैं। सामाजिक काव्यों के अतिरिक्त इनको हम जन सामान्य के काव्य भी कह मानते है। जैन कवि प्रत्येक आत्मा में परमात्मा का रूप देखते हैं और प्रत्येक आत्मा से इसी परमात्मा पद को प्राप्त करने का आह्वान करते हैं।

विविध

ब्रह्म रायमल्ल ने प्रबन्ध काव्यों के अतिरिक्त कुछ लघु कृतियां भी निबद्ध की थी। ऐसी रचनाओं का विषय एक ही तरह का न होकर विविध है। निर्दोष सप्तमी कथा में सप्तमी व्रत के महात्म्य का वर्णन है तो चिन्तामणी जयमाल स्तुति परक है। चन्द्रगुप्त के सोलह स्वप्न घटना परक हैं तो पंच गुरु की जयमाल पूजा संज्ञक रचना है। कवि ने अपनी लघु रचनाओं को विविध आख्यानों से निबद्ध किया है इसलिए सभी ६ लघु कृतियों को हम इस श्रेणी की रचनाओं में रख सकते हैं।

भक्ति परक अध्ययन

महाकवि ब्रह्म रायमल्ल का युग भक्तिकाल का चरमोत्कर्ष युग माना जाता है। सूरदास, मीरा, तुलसीदास जैसे भक्त कवि ब्रह्म रायमल्ल के समकालीन कवि थे। सभी भक्त कवि उस युग में अपनी लेखनी एवं वाणी से जन-जन को राम एवं कृष्ण भक्ति में डूबो रहे थे तथा सगुण भक्ति धारा में आप्लावित करके देश में एक नया वातावरण बना रहे थे। उन भक्त कवियों ने उस युग में ऐसा सबल एवं

विस्तृत प्रवाह संचालित किया कि उसकी लपेट में न केवल वैष्णव एवं जैन ही आये किन्तु देश में रहने वाले मुसलमान एवं अन्य जातियों के सदस्य भी उसी राग में अलाप लगाने लगे। जैन कवियों ने जिनेन्द्र भक्ति की ओर जिन भक्तों को आकृष्ट किया तथा वे अपनी कृतियों में जिन भक्ति की सार्थकता को सिद्ध करने में लगे रहे। ब्रह्म रायमल्ल के अतिरिक्त भट्टारक रत्नकीर्ति, भट्टारक कुमुदचन्द्र जैसे संतों ने भी जिन भक्ति को धार्मिक क्रियाओं में सर्वोच्च स्थान दिया। १७ वीं शताब्दी के पश्चात् जितने भी जैन कवि हुये सभी ने किसी न किसी रूप में भगवान के गुणानुवाद करने पर बल दिया तथा भक्ति रस से ओत प्रोत पदों की रचना की।

ब्रह्म रायमल्ल पूरे भक्त कवि थे। जिनेन्द्र भगवान की पूजा, स्तवन एवं गुणानुवाद करने में उनकी पूर्ण श्रद्धा थी। जिन भक्ति को प्रदर्शित करने के एक मात्र साधन काव्य रचना में उनका अटूट विश्वास था। उन्होंने अपने काव्यों को तीर्थंकरों की स्तुति एवं वन्दना से आरम्भ किया है। यही नहीं अपने आपको अपढ अयाण कह-कर जिन भक्ति के प्रसाद को ही काव्य रचना में सहायक बतलाया है। ब्रह्म रायमल्ल कहते हैं कि न तो उन्होंने पुराण पढ़े हैं और न वे तर्क शास्त्र एवं व्याकरण पढ़ सके हैं। बुद्धि भी अल्प है इसलिए वह उनके गुणों का वर्णन कैसे कर सकता है।[1]

कवि ने श्रीपालरास में सिद्धचक्र पूजा के माहात्म्य का विशद वर्णन किया है। जिन पूजा को पुण्य की खान स्वीकार किया है।[2] सिद्ध चक्र की पूजा करने से कभी रोग नहीं होता है। पूजा से शोक स्वयमेव विलीन हो जाता है।[3] सिद्ध चक्र की आठ दिन तक भक्ति एवं श्रद्धा पूर्वक जो पूजा करता है उसको श्रीपाल के समान ही उत्तम फल की प्राप्ति होती है।

श्रीपाल जब बारह वर्ष की विदेश यात्रा पर जाने लगा तो मैना सुन्दरी ने उसे अरिहन्त भगवान का स्मरण करने का ही परामर्श दिया था,

---

१. स्वामी गुणह तुम्हारा तणौ विस्तार, स्वर नर फणि नवि पावै हो पार।
   ते किम जाय मैं वर्णया, स्वामी हौं मूरिख अति अपढ अयाण।
   ना मैं हो दीठा जी ग्रंथ पुराण, तर्क व्याकर्ण मैं ना भण्या।
   स्वामी थोड़ी जी बुधि किम करो बखाण।।

२. जिणवर पूज पुण्य की खानि ।।श्रीपालरास।।५५।।

३. सिद्ध चक्र पूजा करी, हो रोग सोग नवि व्यापै काल ।।५७।।

हो सुन्दरि सीख देइ सुहि कंत, [illegible] [illegible] जे भांग अरहंत ।
सत्य वचन अरहंत का, हो गुरु वंदिज्यो महा निरगंथ ।
सिद्ध चक्र व्रत सेविज्यो हो संजम शील चालिज्यो पंथ ।।रास।।७५।।

श्रीपालरास जिन पूजा एवं भक्ति के सुफल का एक सुन्दर काव्य है ।[1] काव्य में कवि ने सम्यक्त्व की महिमा का विस्तृत वर्णन किया है तथा सम्यक्त्व को ही वैभव एवं ऐश्वर्य मिलने में मूल कारण बतलाया है ।[2]

सुदर्शन रास में मंगलाचरण के रूप जो चौबीस तीर्थंकरों की वन्दना की गई है वह भक्तिरस से ओतप्रोत है । सेठ सुदर्शन को सूली से सिंहासन मिलना सेठ द्वारा भगवान की पूजा भक्ति आदि का स्पष्ट फल है । इसी तरह भविष्यदत्त चौपई में भी आरम्भ में सभी तीर्थंकरों का स्मरण किया है । मदनद्वीप में भविष्यदत्त को जिन मन्दिर क्या मिला मानों चिन्तामणि रत्न ही मिल गया । भविष्यदत्त ने पहिले पूर्ण मनोयोग से जिनेंद्र स्तवन किया और फिर अपने कष्टों को दूर करने की प्रार्थना की ।

जै जै स्वामी जग आधार, भव संसार उतारै पार
तुम छौ सरणा साधार, मुझ संसार उतारै पार
भूला पंथ दिखावण हार, तुम छौ मुकती तणा दातार ।।१६।।

जिनेन्द्र भगवान की जो अष्ट द्रव्य से पूजा करता है उसके जन्म जन्मान्तर के दुःख स्वयमेव दूर हो जाते हैं[3] । पुष्पों के साथ पूजा करने से श्रावक जन्म का वास्तविक फल प्राप्त होता है[4] । इसी प्रकार कवि ने सभी आठ द्रव्यों के बारे में कहा है ।

भविष्यदत्त जब मदन द्वीप में अकेला रह जाता है तो जिनेन्द्र स्तवन करके ही दुखों को भूल जाता है[3] । भविष्यदत्त की स्त्री जब गर्भवती हो जाती है तो उसके

---

१. हो आठ दिवस करि पूजा भली, गयो कोढ जिम अहि कंचुली ।
कामदेव काया भइ हो अंग रक्ष राजा सिरीपाल ।
सिद्ध चक्र पूजा करि हो, रोग सोग न व्यापै काल ।।

२. हो समिकित सहित पुत्र तुम आथि, इह बिभूति आई तुम साथि ।।

३. आठ द्रव्य पूज्यै जिण पाइ, जन्म जन्म को दुख पुलाइ ।।११/४७

४. जिणवर चरण पहुप पुजिया, श्रावक जन्म तणा फल लिया ।।

तिलकपुर जाकर चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र की पूजा करने की इच्छा (दोहला) होती है[1]। हनुमत कथा में भी प्रारम्भ में चौबीस तीर्थङ्करों की स्तुति के साथ स्थान-स्थान पर जिन भक्ति की प्रशंसा की गयी है। जिनेन्द्र भगवान की पूजा से शुभ कर्म का बन्ध एवं अशुभ कर्म का क्षय होता है[2]। राजा महेन्द्र नंदीश्वर द्वीप जाकर जिनेन्द्र भगवान से निर्वाण पथ का पथिक बनने की प्रार्थना करता है।

> भगति वंदना तेरी करै, मुकती कामरणी निश्चै वरै।
> नित उठि करै तुम्हारी सेव ताको पूजै सुरपति देव।।५१।।
> जिरणवर मो परि करो सनेह, कुगति कुशास्त्र निवारउ एह।
> और न कछु मांगौ तुम्ह पास, देहु स्वामि बैकुंठह वास ५२/७४

लेकिन ब्रह्म रायमल्ल की जिन भक्ति किसी संसारिक स्वार्थ के लिये नहीं है। और न ही उसने अपनी भक्ति के बदले में कुछ मांगा है। जिनेन्द्र भक्ति तो पुण्योत्पादक है और पुण्य के सहारे सभी विपत्तियां स्वयमेव दूर हो जाती है। अभाव प्राप्ति में बदल जाता है।

शृंगार परक वर्णन

जैन काव्यों का प्रमुख उद्देश्य पाठकों को विरक्ति की ओर ले जाने का रहा है इसलिए हिन्दी जैन काव्यों में प्रेम का पर्यवसान वैराग्य में होता है यद्यपि काव्यों के नायक एवं नायिका कुछ समय के लिये गार्हस्थ जीवन व्यतीत करते हैं, युद्धों में विजय प्राप्त करते हैं, विदेश यात्राएं करते हैं तथा राज्य सुख भोगते हैं लेकिन अन्त में वे तीर्थंकर अथवा मुनि की शरण में जाते हैं, उनका उपदेश सुनते हैं और अन्त में संसार से उदासीन बन कर वैराग्य धारण कर लेते हैं। इसलिये जैन काव्यों का प्रमुख लक्ष्य न तो प्रेम दर्शन को अभिव्यक्त करना है और न दाम्पत्य प्रेम की महत्ता को काव्य का मुख्य विषय बनाना है। इन काव्यों में प्रेम विवाद और कठिनाइयों का चित्रण अवश्य मिलता है लेकिन अन्त में प्रेम की क्षणभंगुरता दिखला कर वैराग्य की प्रतिष्ठा की जाती है।

---

१. सोग सवै छाडिउ तहि बार, जिनवर चरण कियो जुहार।
   गुणग्राम भास्या बहु भाइ, जहि थे पाप कर्म क्षो जाइ।। १८/३०
२. स्वामी मेरी ऐसो भाउ, असौ तिलक पुर पट्टरिण जाउ।
   आठ भेद पूजा विस्तरौ, जिणवर भवणि महोछौ करौ।। २८/४८
२. कीजै पूज चरण जिनराइ, बंधै धर्म अशुभ क्षो जाइ।। ३४/७२

लेकिन हिन्दी जैन काव्यों में शृंगार परक तत्व अथवा वर्णन मिलता ही नहीं हो ऐसी बात हम नहीं कह सकते। जैन कवि प्रसंगवश अपने काव्यों में शृंगार का भी वर्णन करते हैं और कभी कभी उल्लेखनीय चुटकी लेते हैं। उनके काव्य संयोग वियोग शृंगार दोनों से ही युक्त होते हैं ब्रह्म रायमल्ल के सभी काव्यों में शृंगार भावना का विकास देखा जा सकता है। कवि ने अपने प्रथम काव्य श्रीपालरास से लेकर अन्तिम रूपक काव्य परमहंस चौपई तक किसी न किसी रूप में शृंगाररस का वर्णन किया है और मानवीय भावनाओं को व्यक्त करने का सफल प्रयास किया है। इससे एक ओर काव्यों में सजीवता आयी है तो दूसरी ओर मानव पक्ष को प्रस्तुत करने में भी वे दूर नहीं रहे हैं

श्रीपालरास में धवल सेठ रैणमंजूषा के रूप एवं लावण्य को देख कर उसके साथ भोग भोगने की तीव्र लालसा से अपने मन्त्री से निम्न शब्दों में विचार व्यक्त करता है —

हो रैंण मंजूसा सेवे कंत, धवल सेठ अति पीसे दंत।
नींद भूख तिरखा गई, हो मंत्री जोग्य कही सहु बात।
सुन्दरि स्यौ मेलौ करौ, हो कहीं मरौ करौ अपघात ।।२२।।

धवल सेठ की दूती भी रैणमंजूषा को निम्न शब्दों में उसे समझाने लगती है—

भोग भोगउ मन तणा, हो मनुष्य जन्म संसारा आइ।
खाजे पीजे बिलसीजे, हो अवर जन्म की कही न जाइ ।।२३।।

पवनजय जब अंजना के सौन्दर्य के बारे में सुनता है तो वह कामातुर हो जाता है और अन्न एवं जल का त्याग कर बैठता है।[1] पवनजय का अंजना के साथ विवाह तो हो जाता है लेकिन १२ वर्ष तक एक दूसरे से अलग रहते हैं। एक रात्रि को जब वह चकवा चकवी के विरहालाप को सुनता है तो उसे भी अंजना का स्मरण हो आता है और वह भी विरहाकुल हो जाता है और अंजना से मिलने के लिये तड़फने लगता है।[2] ब्रह्म रायमल्ल ने कामातुरों का उस काव्य में बहुत ही

---

१ पवनंजय सुणि सुंदरि रुप, सुर कन्या थे अधिक अनूप।
काम बाण वेधियो सरीर, तजै तंबोल अन्न अरु नीर ।।२।।

२ पवनंजय सुनि पंखणि बात, काम बाण तसु बेध्यो गात।
चिंता उपनी बहुत सरीर, रहे न चित्त एक क्षण धीर ।।४६।।

सुन्दर वर्णन किया है। कामी पुरुषों को अच्छा बुरा नहीं देखता। बड़े बड़े सुभट भी कातर दशा को प्राप्त हो जाते हैं। वह कामज्वर में उसी तरह जलने लगता है जैसे अग्नि में घी डालने से अग्नि प्रज्वलित हो जाती है। उसे अन्न-जल जहर के समान लगने हैं और कामिनी स्त्रियों की कथा ही उसे अच्छी लगती है। वह कभी मूर्छित हो जाता है और कभी उसका शरीर शोक संतप्त हो जाता है। उसका मन एक क्षण भी स्थिर नहीं रहता। वह अपने अंगों को मरोड़ता रहता है। कभी वह जंभाई लेता है तो कभी उसे नृत्य एवं संगीत सुनने की इच्छा होती है।'

बारह मासा वर्णन

अन्य जैन कवियों के समान ब्रह्म रायमल्ल ने भी राजुल के शब्दों में बारह मासा का वर्णन किया है। कवि का यह वर्णन काफी स्वाभाविक एवं प्राकृतिक काम दशा के अनुकूल है। उसका बारह मासा श्रावण मास से प्रारम्भ होता है।

श्रावण मास—श्रावण मास में घनघोर वर्षा होती है। मेघों की तीव्र गर्जना होती रहती है। मोर भी नाचने लगता है। ऐसी स्थिति में राजुल नेमिनाथ से कहती है

पवन कुमार भणी तं क्षणी, सुनि हो मन्त्री वचन्ह हम भणो।
चकई एक हि रात वियोग, भरै विलाप अधिक दुख सोग ॥५०॥
कहो अंजना किम जीवसी, छांडे भये वर्ष द्वादसी।
अति अपराध भयो है मोहि, मुझ समान मूरिख नहीं कोई ॥५१॥

१ जब कामी नें व्यापै काम, जुगति अजुगति न जाणै ठाम।
चित उपजै बहुत सरीर, कातर होइ सुभट बरवीर ॥३॥
कामणि रूप सुणै जे नाम, कामी चित्त रहैं नवि ठाम।
काम बाण पीडै तं क्षणा, सास उसास लेइ अति घणा ॥४॥
काम ज्वर व्यापै तसु एह, बैस्वानर जिम दाझै देह।
घड़ी एक चित्त थिर नहि देह, मौडै अंग जंभाडी लेइ ॥५॥
जब कामी की होइ अवाज, विष सम छांडै पाणी नाज।
जाकै शरीर काम को वास, कामणि कथा सुहावै तास ॥६॥
कामनि कारजि हि लगै अंग, गीत नृत्य भावै तिण अंग
काम बाण जो हणै शरीर, मूर्छा आइ पडै घर वीर ॥७॥
व्यापै काम करै नर पाप, उपजै देह सोग संताप।
दुख भुंजै रोवै नर जाम, जबहि आइ ऊपजै काम ॥८॥

कि उसके शरीर में श्वास कैसे रह सकती है इसीलिए वह भी उन्हीं के पास रहेगी।[1]

भाद्रपद मास—भाद्रपद मास में भी खूब वर्षा होती है। नदी नालों में खूब पानी बहता है। रात्रियां डरावनी लगती हैं। श्रावकगण इस मास में व्रत एवं पूजा करते हैं। ऐसे महिने में हे राजुल अकेली कैसे रह सकती है?[2]

आसोज मास—आसोज मास में पीछे बरसने वाला पानी बरसता है। इस मास में पुरुष एवं स्त्री के टूटे हुये स्नेह भी जुड़ जाते हैं। दशराहे पर पुरुष और स्त्री भक्ति भाव से दूध दही और घृत की धारा से जिनेन्द्र भगवान की पूजा करते हैं। लेकिन हे स्वामिन् आप मुझे क्यों दुःख दे रहे हो।

कार्तिक मास—कार्तिक मास पुरुष और स्त्री दोनों को उद्दीप्त करने वाला है। चारों ओर स्वच्छ जल भरा रहता है जो स्वादिष्ट लगता है। इस मास में स्त्रियां अपना शृंगार करती है। इसी मास में देवता भी सोकर उठ जाते हैं। जिनेन्द्र भगवान पूजा भी की जाती है। हे स्वामिन् हमें छोड़ कर क्यों दुख दे रहे हो।

मंगसिर मास—मंगसिर मास में अपने पति के साथ में पत्नी को यात्रा करनी चाहिए। चारों प्रकार के दान देने चाहिये। रात्रियां बड़ी होती हैं और दिन छोटे होते हैं राजुल नेमिनाथ से कह रही है कि उसका दुख कोई नहीं जानता है।

---

१ अहो सावणडौ बरसै सुविसार, गाजै हो मेघ अति घोर सार।
अमलस लावै जी मोरडा, अहो मेरी जी काया मी रहै न सासु।
नेमि सेथि राजल भणी, स्वामी छाडु हो नही जी तुम्हारौ जी पास।।८५

२ अहो भादवडौ बरसै असमान, जे ताहौ व्रत ते ता तणौ जी थान।
पूजा हो श्रावक जन रचौ, नदी हो नाला भ.रि चालै जी नीर।
दीसै जी राति डरावणी, स्वामी तुम्ह बिना कैसौ हो रहे जी सरीर।

अहो कातिग पुरिम तीया उदमाद रिमली पाल पाणी घणा स्वाद।
करौ हो सिंगार ते कामिनी, अहो उट्ठौ जी देव जति तणा जोग।
पूजा सो कीजै जी जिण तणी, स्वामी हमकु जी दुख तुम्ह तणौ जी विजोग।।८८

अहो मागिसिरां इक कीजै जी जात, तीरथ परिसि जी कंत कै साथि।
चहुं विधि दान दीजै सदा, अहो राति बडी दिन वोछाजी होइ।
नेमि सेथी राजल भणै, स्वामि मेरौ हो दुख न जाणै जी कोइ।।८६।।

पोष मास — पोष मास में तीर्थंकरों के कल्याणक होने के कारण नर नारी पूजा करते हैं। मोतियों से चौक पूरा जाता है। स्त्रियाँ अपना शृंगार करके भक्ति-भाव से जिनेन्द्र की भक्ति करती हैं। लेकिन मुझे तो विधाता ने दुःख ही दिया है।[1]

माघ मास — माघ मास में खूब शीत पड़ता है। इस कारण वृक्ष और पौधे बर्फ से जल जाते हैं तथा नष्ट हो जाते हैं। हे स्वामिन् आपने तो मेरी चिन्ता किये बिना ही साधु-दीक्षा धारण कर ली। हे स्वामिन् ! अब मुझ पर भी दया करो।[२]

फाल्गुन मास— फाल्गुण मास में पिछली सर्दी पड़ती है। बिना नेमि के यह पापी जीव निकलता ही नहीं है, क्योंकि दोनों में इतना अधिक मोह हो गया है। तीनों लोकों का सारभूत अष्टाह्निका पर्व भी इसी मास में आता है, जब देवतागण नंदीश्वर द्वीप जाते हैं।

फागुणि पडं हीं पछेला सीज, नेमि बिणा नीकसी पापी या जीव।
मोह हमारा तुम्ह तज्यो, अहो अस अष्टाह्निका त्रिभुवन सार।
दीप नंदिस्वर सुर करो, स्वामि हमस्यो जो यसी करि हो कुमारी ।९२।

चैत्र मास — जब चैत्र के महीने में बसन्त ऋतु आती है तो वृद्धा स्त्री भी युवती बन कर गीत गाने लगती है। वन में सभी पक्षी क्रीड़ा करते रहते हैं, क्योंकि उन्हें चारों ओर सब फूल खिले हुए दिखते हैं। कोयल मधुर शब्द सुनाती रहती है इस प्रकार चैत्र मास पूरा मस्ती का महीना है। ऐसे महीने में राजुल बिना नेमि के कैसे रह सकेगी।[३]

---

1. अहो पोस मै पोस कल्याणक होई, पूजा जी नारि रचैं सहु कोई।
पूरैं जी चौक मोत्यां तणा, अहो करैं जी सिंगार गावैं नरनारि।
भावना भगति जिनवर तणी, अहो हमको जी दुःख दीन्हौ करतारि ।९०।

२. अहो माघ मांस घणा पडै जी तुसार, बनसपती दाभि सबैं हुई छार।
चित्त हमारो थिर किम रहै, अहो तुम्ह तो जी जोग लिन्हों बन आइ।
मेरी चिन्ता जी परहरी, स्वामि दया हो कीजैं अब जादौ जी राई ।९१।

३. अहो चैत आवै जब मास बसंत, बूढी हो तरणी भी गावै हो गीत।
बन में जी पंख क्रीडा करे, अहो दीसै जी सब फूली वणराइ।
करी हो सबद अति कोकिला, अहो तुम्ह बिना किम रहै जादौ जी राय ।९३।

वैसाख मास — वैसाख मास आने पर पुरुष और स्त्री में विविध भाव उत्पन्न होते हैं। वन में पक्षीगण क्रीडा करते हैं तथा स्त्रियां षट्रस व्यंजन तैयार करती हैं, लेकिन हे स्वामी ! आप तो घर-घर जाकर भिक्षा मांगते हो। यह कंजूसी आपने कबसे सीख ली ?[1]

जेठ मास — सबसे अधिक गर्मी जेठ में पड़ती है। हे स्वामी ! घर में शीतल भोजन है, स्वर्ण के थाल हैं तथा पत्नि भक्तिपूर्वक खिलाने को तैयार है। घर में अपार सम्पत्ति है लेकिन पता नहीं आप दीन वचन कहते हुए घर-घर क्यों फिरते हैं। आप जैसे व्यक्ति को कौन भला कहेगा ?[2]

आषाढ मास —आषाढ आते ही पशु-पक्षी सब घर बना कर रहने लगते हैं तथा परदेश में रहने वाले घर आ जाते हैं, लेकिन आपने तो अपनी जिद् पकड़ ली है। आप पर मन्त्र-तन्त्र का भी कोई असर नहीं होता। इसलिए मेरी प्रार्थना अपने चित्त में धारण करो।[3]

ब्रह्म रायमल्ल ने राजुल की व्यथा को बहुत ही संयत भाषा में छन्दोबद्ध किया है। विरह-वेदना के साथ-साथ राजुल के शब्दों में कवि ने जो अन्य धार्मिक क्रियाओं का तथा नेमिनाथ की मुनि क्रिया का उल्लेख किया है उससे राजुल के कथन में स्वाभाविकता आ गई है। अन्त में राजुल नेमिनाथ से यही प्रार्थना करती है कि इस जन्म में जो कुछ भोग भोगना है उन्हें भोग ही लेना चाहिए क्योंकि अगला जन्म किसने देखा है। वास्तव में जब घर में खाने को खूब अन्न है तो लंघन करके भूखो

---

१. अहो मासि वैसाख आवे जब नाह, पुरिष तीया उपजै बहु भाउ।
वन में हो पंखि क्रीडा करै, अहो छह रस भोजन सुंदरि नारि।
भीख मांगत घरि-धरि फिरै, स्वामी योहु स्याणप तुम्ह कौण विचार।९४।

२. अहो जेठि मांसा अति तपति को काल, सीतल भोजन सोवन थाल।
करौ हो भगति अति कामिनी, अहो घर मैं जी संपदा बहुविधि होइ।
दीन वचन धरि धरि फिरै, स्वामि ता नरस्यो भलौ कहै न कोई।९५।

३. अहो मास आसाढ आवै जब जाई, पसूहो पंखि रहै सब घर छाई।
परदेसी घरां गम करै, अहो तुम्ह नै जीदई लगाई वाय।
मंत्र तंत्रानवि ऊलगी, स्वामि वात चित मै धरी आदो जी राई।९६।

मरने से तो उल्टा पाप लगता है। इसके अतिरिक्त उस तरह मरने का भी क्या अर्थ है जिसको कोई लकड़ी देने वाला ही नहीं।[1]

ब्रह्म रायमल्ल ने अपने काव्यों में शृङ्गार रस की ओर भी चुटकियां ली है। रुक्मिणी जब नाग पूजा के लिए उद्यान में गयी तो वहीं नाग बिंब के पीछे ही कृष्ण जी बैठे हुए थे। दोनों के नेत्र से नेत्र मिलते ही एक-दूसरे में प्रेम हो गया।[2]

संभोग शृङ्गार

ब्रह्म रायमल्ल ने अपने काव्यों में संभोग शृङ्गार का भी अच्छा वर्णन किया है—

प्रद्युम्न की सुन्दरता पर कंचनमाला मुग्ध हो जाती है और उसके साथ अपनी काम-पिपासा शान्त करना चाहती है तथा उसे लज्जा से हटा कर निर्लज्ज बन कर सब कुछ करने की प्रार्थना करती है—

> हो भणी मयणस्यों घोक्षी लाजो हो,
> करि कुमार मन वांछित काजो।
> हम सरि कामणि को नहीं जी।

ध्यान धरते हुए सेठ सुदर्शन को अभया रानी के महल में ले जाया जाता है। वहाँ अभया रानी विनयपूर्वक सेठ से संभोग की जिस तरह इच्छा प्रकट करती है वह तो लज्जा की सीमा को ही पार करना है। अभया रानी पहले तो राग-रंग करती है और फिर सुदर्शन से इच्छानुसार काम-क्रीड़ा करने के लिए कहती है।

> अहो भाइ जी अभया जी, बैठी हो पासि, रंग का वचन अति कहै बीवा सासि।
> सफल जनम स्वामी तुम कीयो, अहो अब हम उपरी कीजे हो भाउ।
> सुख मन वांछित भोगऊ, स्वामी माणस जनम को लीजे हो लाहु।१२३।

---

१. अहो ऐसा जी बाराह मास कुमार रिति रिति भोग कीजै अतिसार।
आवता जन्म की को गिणैं, अहो घर मैं जी नाज खावानैं जी होय।
पापि लांघण करि मरो, स्वामि मुवा थे लाकडी देई न कोई।६७।
—नेमीश्वररास

२. हो सुणी बात हरि तं खिणा उठिउ नेत्र नेत्रस्यो मिलि गया जी।४३।
—प्रद्युम्नरास

इसी प्रकार के और भी प्रसंग ब्रह्म रायमल्ल के काव्यों में मिलते हैं। यद्यपि जैन हिन्दी काव्यों का प्रमुख उद्देश्य शृङ्गार रस का वर्णन करना नहीं रहा है और उन्होंने अपने काव्यों में उसे विशेष महत्त्व भी नहीं दिया है किन्तु प्रसंगवश संयत शब्दों में शृंगार रस का वर्णन यत्र-तत्र अवश्य मिलता है।

वीर रस वर्णन

हिन्दी जैन काव्य शान्त रस प्रधान है। उनके नायक एवं नायिका युद्ध से सदैव बचने का प्रयास करते हैं। यद्यपि श्रीपाल, नेमिनाथ, राजुल, हनुमान सभी क्षत्रिय कुमार हैं तथा नेमिनाथ के अतिरिक्त ये शासन भी करते हैं लेकिन वे युद्ध-प्रिय नहीं होते हुए भी युद्ध से घबरा कर भागते नहीं है और आवश्यकता पड़ने पर युद्ध का सहारा भी लेते हैं। इन काव्यों में ऐसे प्रसंग कितने ही स्थान पर आते हैं जहाँ कवि को युद्ध का वर्णन करना पड़ता है। भविष्यदत्त तो श्रेष्ठि पुत्र होने पर भी युद्ध में विजय प्राप्त करता है।

युद्ध के सबसे अधिक प्रसंग प्रद्युम्न के जीवन में आते हैं लेकिन प्रत्येक बार ही निर्णायक युद्ध होने के पूर्व ही शान्ति हो जाती है। लेकिन उससे प्रद्युम्न के युद्ध कौशल अथवा वीरता पर कोई आंच नहीं आती। वह अपने शत्रु को उसी प्रकार ललकारता है तथा युद्ध की तैयारी करता है। प्रद्युम्न तो अपने पिता श्रीकृष्ण जी से भी युद्ध भूमि में ही अपनी वीरता दिखाने के पश्चात् मिलता है। प्रद्युम्न श्रीकृष्ण सहित बलराम और पाँचों पाण्डवों को जिन शब्दों में युद्ध के लिये ललकारता है वे वीर रस से ओत-प्रोत हैं—

हो अरजन कहै धनष धरा ए, हो तेहि वैराटि छुडाई गाए।
जे बल छै तो आई ज्यो जी, हो भीम मल्ल तुम्ह बड़ा भुझारो।
रूपिणि बाहर लागि ज्यो जी, हो कै रालि धौ गदा हथियारो।६१।
हो निकुल कुम्भ सोभै तुम्ह हाथे, हो कहि ज्यो बली पाखणा साथे।
अब बल देखो तुम्ह तणो जी, हो सहदेव ज्योतिग जाणै सारो।
कहि रूपिणि किम छुटी सी जी, हो इहि ज्योतिग को करहु विचारो।

प्रद्युम्न केवल शत्रु को लड़ाई के लिये ललकारता ही नहीं है किन्तु घनघोर युद्ध के लिये भी अपने आपको प्रस्तुत करता है—

किया दल सहु संजोईया जी, हो पहिली चोट पयादां आई।
पाछे घोड़ा घालीया जी, हो रुंड मुंड अति भई लड़ाई।७२।

हो असवारो मारे असवारो, हो रथ सेथी रथ जुड़ै झुझारो ।
हस्ती स्यों हस्ती भिड़े जो, हो घणो कहो तो होई विस्तारो ।७४।

—प्रद्युम्नरास

श्रीपाल को भी राज्य प्राप्ति के लिए अपने ही काका वीरदमन से युद्ध का सहारा लेना पड़ता है। दोनों ओर से युद्ध की तैयारी होती है उसी का एक वर्णन देखिए—

हो भादि भौमियो रण संग्राम, आयो कोडी भड के ठाम ।
वाल पाखिली सहु कही, हो सिधूडा बाजिया निसाण ।
सूर किरणि सूझै नहीं हो उडी खेय लागो असमान ।५७।

हो घोडा भूमि खणै खुरताल, हो जाणिकि उलटिउ मेघ अकाल ।
रथ हस्ती बहु सालती, हो बहूं पक्ष की सेना चली ।
सुभट संजोग संभालिया, हो प्रणी बुहूं राजा की मिली ।५८।

भविष्यदत्त तो श्रेष्ठि पुत्र था। लेकिन उसकी स्त्री को ही समर्पित करने के लिए पोदनपुर के राजा के दूत ने जब जोर दिया तो युद्ध के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रहा। भविष्यदत्त स्वयं रणभूमि में उतरा और युद्ध में विजय प्राप्त की। इस युद्ध का एक वर्णन निम्न प्रकार है—

बात र बहुत भाजि बी बोढि, दंति सिरां ले छूटी मोढि ।
एक सुभट रण आधो सरं, तूटो सिर ठाडो धड फिरै ।६२।
एक सुभट के इहै सुभाउ, भागा जोग न घालै घाउ ।
उडै थांभो अधिक असमान, भइ रणो हा गिध मसाण ।६३।

ब्रह्म रायमल्ल के काव्यों के सभी नायक वीर हैं। लेकिन क्षमा, धर्म उनके जीवन में उतरा हुआ होता है। श्रीपाल भी समुद्री चोरों को बिना दण्ड दिये ही छोड़ देता है जो उसके दया-भाव उदाहरण है—

हो छोड्या चोर विनी बहु कीयो, दया भाउ करि भोजन दीयो ।
मन वच काय क्षमा करी हो हाथ जोडि बोल्या सहु चोर ।
तुम समान उत्तम नहीं, हो हम पापी लोभी घण घोर ।६२।

प्रकृति वर्णन

जैन कवियों को प्रकृति वर्णन सदा अभीष्ट रहा है। महाकवि रल्ह ने अपने जिनदत्तचरित में स्थान-स्थान पर वृक्ष, लता एवं पुष्पों का बहुत ही उत्तम वर्णन किया है। ब्रह्म रायमल्ल ने भी अपने काव्यों में अवसर मिलते ही प्रकृति का जो चित्रण किया है उससे काव्य की महत्ता में तो वृद्धि हुई ही है साथ ही वह कवि के विशाल ज्ञान का भी परिचायक है। कवि ने जिन काव्यों में प्रकृति चित्रण किया है उनमें भविष्यदत्त चौपई एवं हनुमंत कथा ये दो प्रमुख काव्य हैं।

विद्याधरों के देश आदितपुर के चारों ओर घना जंगल था। विविध प्रकार के वृक्ष थे। नदी और सरोवर थे जिनमें कमल खिले हुए थे। कुवे और बावडियां थीं जो जल से ओत-प्रोत थी। कवि ने कितने ही वृक्षों के नाम गिनाये है जो उस नगर की शोभा बढ़ाते थे।

> वन की सोभा अधिक विस्तार, राइ रिणमहु वाली दुबार।
> बील कउह धौके धकरीर, नींब कें बगुल अणि गहीर।४।
>
> सालरि खैरसाल काविड़ा, सीसौं सागवान हुरडा।
> कर्ण्वर आमण बेर सुचंग, नींबू, जांबू अर मासलिंग।५।
>
> अमृतफल कदहल बहु केलि, मंडप चढी दाख की केली।
> बार हुरद आवलां पतंग, चोच मोच नारिंग सुरंग।६।
>
> धोल, सुपारी कमरख धणी, निब जां आवां फणसंचिचिणी।
> मिरी बिदाम लौंग अखरोट वहुत जायफल फली समोट।७।
> कु‍ंजो मरवौ खाटौ जाइ, वेलि सिहाली चंपौ राइ।
>
> जुही पाडल वौलश्री कंद, चंबीलोक नयर मुचकंद।८।
>
> सिरकंव करणी कर वीर, चंदन अगर तरु बाल गहीर।
> केतकी केवडी बड़ो सुगंध, भमर वास रमहि अति अध।६।

अंजना को गर्भ रहने पर उसकी सास ने घर से निकाल दिया। पिता के घर गयी लेकिन वहाँ भी उसे सहारा नहीं मिला। अन्त में उसने वन की राह ली। जो

अत्यधिक डरावना था । कवि ने उसका सुन्दर वर्णन किया है । कुछ पंक्तियां निम्न प्रकार हैं—

बन अति अधिक महा भैभीत, सावज सिंध बसै परीत ।
चीता रींछ स्याल शूकरी, ता बन मैं पहुंती सुन्दरी ।१४। ६०।।

—हनुमन्त कथा

कवि ने लंका में सीता के चारों ओर जो सुरम्य उद्यान था उसका वर्णन भी विभिन्न वृक्षों एवं फल-फूलों के नाम देकर किया है—

नंदन बन देख्यो श्योपाइ, फुलित फुलिति भई बनराइ ।
कदली चोंच आंब नारिंग, दाख छुहारी मामतु लिंग ।
कमरख कटहल कैथ अनार, लोंग बिदाम सुपारी चार ।१५।

कुंजो मरवो जूही जाइ, केतकी महुवो महकाइ ।
पाडल बकुल बेलि सेवती, वन सोभा दीसे बहु भंती ।१६।

वन में केवल वनस्पति ही नहीं होती वहां वन जीव भी होते हैं । महाकवि ने भविष्यदत्त चौपई में इसी का एक वर्णन निम्न प्रकार किया है—

वन मै भीत अधिक असराल, सुवर संबर रोझनिमाल ।
चीता सिंघ दहाडा घणा, बांदर रींछ महिष साकणा ।१२४।

हस्ती जुथ फिरै असराल, सारदूल अष्टापद बाल ।
अजगर सर्प हरण संचरै, भयसबंत तिहि बन में फिरै ।१२५।

भविष्यदत्त ने बन में जाकर जिनेन्द्र भगवान की पूजा एवं वंदना की । कवि ने उस पूजा के लिए जो अष्ट मंगल द्रव्यों के नाम गिनाये हैं उनमें प्राकृतिक वर्णन में बहुत मान्यता है ।

इस प्रकार और भी ब्रह्म रायमल्ल के काव्यों में प्राकृतिक वर्णन हुआ है । जिससे काव्यों में स्वाभाविकता एवं सुन्दरता आयी है ।[1]

---

१. घणी कहो तो होइ विस्तार, जाति लाख दश वनस्पति सार ।

राजनैतिक स्थिति

ब्रह्म रायमल्ल के जीवन का उत्कर्ष काल संवत् १६०१ से १६४० तक रहा। इस अवधि में देश की राजनैतिक स्थिति में बराबर परिवर्तन होता रहा। इन ४० वर्षों में देहली के शासन पर एक के बाद दूसरे बादशाह होते गये। कुछ बादशाहों की तो स्वतः ही मृत्यु हो गयी और कुछ को युद्ध में पराजित होना पड़ा। प्रारम्भ के १२ वर्षों में शेरशाह सूरि एवं सलीमशाह सूरि का शासन तो फिर भी स्थिर रहा लेकिन उसके पश्चात् देश में अराजकता फैल गयी। सूरि वंश का पतन, हेमू का उदय एवं अस्त, हुमायुँ द्वारा दिल्ली पर पुनः विजय एवं कुछ ही समय पश्चात् उसकी मृत्यु जैसी घटनाएँ घटती गयीं और देश में अराजकता के अतिरिक्त स्थायी शासन स्थापित नहीं हो सका। संवत् १६१३ (सन् १५५६) में अकबर देहली के सिंहासन पर बैठा लेकिन उसने भी अपने आपको मुसीबतों से घिरा पाया। चारों ओर अशांति थी। छोटे-छोटे शासन स्थापित हो रहे थे और उनमें भी परस्पर युद्ध हुआ करते थे। बादशाह अकबर ने देश में स्थिर एवं सशक्त शासन स्थापित करने में सफलता प्राप्त की और वह दीर्घ काल तक देश के बड़े भाग पर शासन करता रहा।

राजस्थान के मेवाड़ के अतिरिक्त सभी राजाओं से अकबर ने मधुर संबंध स्थापित किये। सर्वप्रथम उसने आमेर के तत्कालीन राजा भारमल्ल से मित्रता स्थापित की और उसे पांच हजारी का मनसब का पद दिया। भारमल्ल के पश्चात् राजा भगवन्तदास (१५७४–१५८९) आमेर के शासक बने। उनका भी मुगल दरबार से घनिष्ट संबंध रहा। ब्रह्म रायमल्ल ने राजा भगवन्त के शासन का अपने काव्य 'भविष्यदत्त चौपई' में उल्लेख किया है। कवि उस समय सांगानेर में थे जहां परस्पर में पूर्ण सद्भाव एवं व्यापारिक समृद्धि थी। वहां बहुत बड़ी जैन बस्ती थी। ढूंढार प्रदेश के अन्य नगरों में भी शांति थी। जब कवि टोडारायसिंह, झुंझुनू, रणथम्भौर, सांभर एवं धौलपुर गये तो वहां भी कवि को किसी प्रकार की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। कवि ने झुंझनु के शासक के नाम का उल्लेख नहीं किया तथा सांभर के शासक का नाम भी नहीं लिखा जिससे मालूम पड़ता है कि वे दोनों ही नगर के सामान्य शासक थे।

स्वयं कवि ने अपने काव्यों में तत्कालीन राजनैतिक स्थिति के बारे में कोई विशेष उल्लेख तो नहीं किया जिससे यह तो कहा जा सकता है कि स्वयं कवि को किसी विशेष अराजकता अथवा दमन का सामना नहीं करना पड़ा तथा वे जहां भी जाते रहे उन्हें शान्त एवं धार्मिक वातावरण मिलता रहा।

कवि ने अपनी कृतियों में जिन-जिन शासकों का नामोल्लेख किया है वे हैं सम्राट अकबर, राजा भगवन्तदास एवं राजा जगन्नाथ।

सम्राट अकबर

देश के मध्यकालीन इतिहास में सम्राट अकबर का नाम विशेषत: उल्लेखनीय है। वह एक शक्तिशाली एवं दृढ़ विस्तारवादी शासक था। उसने उदार नीति अपना कर हिन्दुओं का हृदय जीतने का प्रयत्न किया। और उसे पूर्ण सफलता भी मिली। वह सभी धर्मों का आदर करता था इसलिये उसने हिन्दुओं पर लगने वाला तीर्थ-यात्री कर एवं जजिया कर समाप्त करने की घोषणा करके देश में लोकप्रियता प्राप्त की। वह समय-समय धार्मिक सन्तों की विचार गोष्ठियाँ आमन्त्रित करता था और उनके प्रवचन सुनता था। जैनाचार्य हीरविजयसूरि, विजयसेनसूरि, भानुचन्द्र उपाध्याय भ० जिनचन्द्र एवं तत्कालीन अन्य भट्टारकों ने अकबर को जैन धर्म के सिद्धान्तों की ओर आकर्षित किया। जैनाचार्यों के प्रभाव से उसने पिंजडे में बन्द पक्षियों को मुक्त कर दिया एवं शिकार खेलने पर पाबन्दी लगादी तथा स्वयं ने मांस खाना भी बन्द कर दिया।[1] महाकवि बनारसीदास तो अकबर से इतने प्रभावित थे कि जब उन्होंने अकबर की मृत्यु के समाचार सुने तो वे एक दम बेहोश हो गये।[2] ब्रह्म रायमल्ल ने श्रीपाल रास में संवत् १६३० (सन् १५७३) के सम्राट अकबर के शासन का उल्लेख करके रणथम्भौर की सुख शान्ति का वर्णन किया है।[3] पाण्डे जिनदास ने भी अपने जम्बूस्वामी चरित में अकबर के सुशासन का उल्लेख किया है।[4]

राजा भगवन्तदास

राजा भगवन्तदास आमेर के संवत् १६३१ से १६४६ तक शासक रहे। ये अकबर बादशाह के विश्वास एवं कृपापात्र शासकों में से थे। राजा भगवन्तदास संवत् १६३६ से १६४६ तक पंजाब के गवर्नर रहे और लाहौर में ही उनकी मृत्यु हो गयी। इनके १५ वर्ष के शासनकाल में ढूंढाड प्रदेश में जैन साहित्य एवं जैन संस्कृति को शासन की ओर से अत्यधिक प्रश्रय मिला। उस समय प्रदेश में भट्टारकों का पूर्ण प्रभाव था। चम्पावती (चाटसू) में संवत् १६३२ में जब नरसेन कृत श्रीपालचरित की

---

१. अकबर महान, पृष्ठ संख्या २००
२. अर्द्ध कथानक
३. श्रीपाल रास—अन्तिम प्रशस्ति
४. प्रशस्ति संग्रह—सम्पादक डॉ० कासलीवाल, पृष्ठ संख्या २१३

पाण्डुलिपि हुई थी तो चन्द्रकीर्ति उस समय भट्टारक थे।[१] इस ग्रन्थ की पार्श्वनाथ के मन्दिर में प्रतिलिपि हुई थी। लिपिकार ने प्रशस्ति में राजा भगवन्तदास एवं भट्टारक चन्द्रकीर्ति दोनों का उल्लेख किया है। इसके एक वर्ष पश्चात् ही मालपुरा ग्राम में जयमित्रहल के वर्धमान काव्य (अपभ्रंश) की प्रतिलिपि हुई थी। वहाँ श्रावकों की अच्छी बस्ती थी।[२]

ब्रह्म रायमल्ल ने जब सांगानेर में प्रवास किया तो उस समय राजा भगवन्तदास ही वहाँ के शासक थे। सांगानेर उस समय व्यापार की दृष्टि से पूर्ण समृद्ध नगर था। सभी तरह का व्यापार था तथा नगर में सुख शान्ति व्याप्त थी। निर्धन एवं दुखी समाज को शासन की ओर से सहायता मिलती थी।[३] संवत् १६३५ में मालपुरा ग्राम में "द्रव्य संग्रह वृत्ति" ग्रन्थ की प्रतिलिपि की गयी थी। प्रतिलिपि करने वाले साह कर्मा गंगवाल ने लिखा है कि उस समय यद्यपि भगवन्तदास राजा थे लेकिन मानसिंह ही उनकी ओर से राज्य का शासन चलाते थे।[४]

राजा जगन्नाथ राय

राजा जगन्नाथ टोडारायसिंह एवं रणथम्भौर के शासक थे। ये आमेर के कछावा शासकों में से थे। बादशाह अकबर की इन पर पूर्ण कृपा थी। इन्होंने महाराणा प्रताप के विरुद्ध कितने ही युद्धों में भाग लिया था।

ब्रह्म रायमल्ल अपने राजस्थान विहार के अन्तिम चरण में संवत् १६३६ में टोडारायसिंह पहुँचा था। यहीं पर महाकवि ने परमहंस चौपई की रचना की थी। प्रस्तुत चौपई उनकी अन्तिम रचना है। महाकवि ने टोडारायसिंह का जैसा वर्णन किया है उससे पता चलता है कि राजा जगन्नाथ वीर एवं प्रतापी शासक थे तथा दान देने में वे जरा भी कंजूसी नहीं करते थे।[५] राजा जगन्नाथ के शासन काल में ही टोडारायसिंह नगर के आदिनाथ चैत्यालय में पुष्पदन्त के आदिपुराण की प्रतिलिपि की गयी थी।[६] जो भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति को भेंट देने के लिये लिखी गयी थी।

---

१. प्रशस्ति संग्रह–पृष्ठ संख्या १७८
२. वही, पृष्ठ संख्या १७०
३. परजा लोग सुखी सुखी सुख, दुखी दलिद्री पुरवै आस।
४. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची चतुर्थ भाग, पृष्ठ संख्या ३४
५. राज करै राजा जगन्नाथ, दान देत न खींचे हाथ।
६. प्रशस्ति संग्रह–डॉ० कासलीवाल, पृष्ठ ८६

राजा जगन्नाथ के नाम का उल्लेख करने वाली राजस्थान के जैन ग्रन्थागारों में आज भी पचासों ग्रन्थ सुरक्षित रखे हुये हैं।

सामाजिक स्थिति

सामाजिक दृष्टि से ब्रह्म रायमल्ल का समय अत्यधिक अस्थिर था देश में मुस्लिम शासन होने तथा धार्मिक विद्वेषता को लिये हुये होने के कारण सामाज की स्थिति भी सामान्य नहीं थी। समाज पर भट्टारकों का प्रभाव व्याप्त था और धार्मिक एवं साहित्यिक क्षेत्र में उन्हीं का निर्देश चलता था। देहली के भट्टारक पट्ट पर भट्टारक धर्मचन्द्र (१५८१-१६०३) भट्टारक ललित कीर्ति एवं भट्टारक चन्द्रकीर्ति विराजमान थे। महाकवि का सम्बन्ध यद्यपि भट्टारकों से अधिक रहा होगा लेकिन उन्होंने अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व ही बनाये रखा।

ब्रह्म रायमल्ल के समय में विवाह आदि अवसरों पर बड़ी-बड़ी जीमनवार होती थी। कवि ने ऐसी ही जीमनवारों का प्रद्युम्न रास, भविष्यदत्त चौपई एवं श्रीपाल रास में वर्णन किया है। जब प्रद्युम्न सत्यभामा के घर गया तो वहां भानुकुमार के विवाह का जीमन हो रहा था।

हो सति भामा घरि गयौ कुमारी, भानु कुमार ब्याहु ज्योणारी ।। ४४ । ६३ ।

भविष्यदत्त जब बन्धुदत्त से वापिस आकर मिला तब भी मिलन की खुशी में भविष्यदत्त ने जहाज के सभी वणिक पुत्रों को सामूहिक भोजन दिया था।

बाण्या सहित करी ज्योणार, पान सुपारी वस्त्र अपार ।। ४४ । २९ ।

कवि ने उस समय के कुछ स्वादिष्ट व्यंजनों के नाम भी गिनाये हैं। ये सभी स्वादिष्ट भोजन कहलाते थे और उसके खाने के पश्चात् तृप्ति हो जाती थी।

घेवर पचधारी लापसी, जहि नै जीमत अति मन खुसी।
उजल बहुत मिठाई भली, जहि नै जीमन अति निरमली ।।६३।।

लाड़ू तोरइ विजन भांति, मेल्या बहुत राइता जाति।
मूंग मंगोरा खानि खालि, भात पकस्यो सुगंधी सालि ।।६४।।

सुरहि घ्रित महा निरदोष, जिमत होइ बहुत संतोष।
सिखरणि दही घोल बहु खीर, भवसर्वत जिमी वरवीर ।।६५।१४।।

श्रीपाल भी जब रैणमंजूषा का विवाह करके अपने जहाज पर आया था तो उसने भी सभी को जिमाया था—

हे बिजहर मध्य भयो जैकार, सिरीपाल दीनी ज्यौणार ।।११३।१७।।

उस समय भी बरातें सज-धज के साथ चढ़ती थी। बराती लोग आँखों में कज्जल मुख में पान, केशर चंदन एवं कुंकुम के तिलक लगाकर निकलते थे। बरात कभी-कभी एक-एक महिने तक रुकती थी।[1] दुल्हा सेहरा लगाते, गले में मोतियों की माला पहिनते।[2] कानों और हाथों में कुण्डल पहिनते। महाकवि ब्रह्म रायमल्ल ने श्रीपाल रास, प्रद्युम्नरास, हनुमन्त कथा, भविष्यदत्त चौपई एवं नेमीश्वररास सभी काव्यों में एक से अधिक बार विवाह विधि का वर्णन किया है। सभी में प्रायः एक सा वर्णन हुआ है। उसके अनुसार ब्राह्मण फेरे कराया करते थे। अग्नि, ब्राह्मण एवं समाज की साक्षी में विवाह लग्न सम्पन्न होता था। श्रीपालरास में इसी तरह का वर्णन निम्न प्रकार है—

हो लीयो राइ जोतिगी बुलाइ, कन्या केरो लगन लिखाइ।
मण्डप वेदी सुभ रची, हो अंब पत्र की बंधी माल ।।
कनक कलस बहु दिसी थप्या, हो छाए निर्मल वस्त्र विसाल ।।१६४।।

हो गावैं गीत तिया करि कोड, वस्त्र पटंबर बंधे मोड।
फूलमल सोभा घणी हो, चोवा चंदन वास सहोदि ।।
वेदी विप्र बुलाइयो हो, वर कन्या बैठा करि जोडि ।।१६५।।

हो भावरि सात फिरिउ बहु वाधि, भयो विवाहु अग्नि दे साखि।
राजा दीनों दाइजो हो कन्या हस्ति कनक के काम।
देस ग्राम दीना घणा हो, विनती करि दीनो बहुमान ।।१६६।।

—श्रीपाल रास

राजघराने के विवाह के अतिरिक्त सामान्य नागरिकों के यहाँ भी विवाह उसी तरह धूमधाम से सम्पन्न होते थे। दहेज देने की प्रथा उस समय भी खूब प्रचलित

---

१. हो मास एक तहा रही बराती, भोजन भगति करी घणा जी ।।८३।।

२. अहो पहिरयौ जी ब्याहण सिव देवि हो बाल, सोभा जी सेहुरो मोत्यां जी माल।
कानां जी कुंडल जगमगै, अहो मुकट बण्यौ हीरा जी लाल ।।नेमीश्वररास।।

थी। धनपति और कमलश्री के विवाह का वर्णन भी इसी प्रकार का है—

सेठिन बात मन में चितवई, पुत्री धनपति जोगी व दई ॥
मण्डप वेदी रच्या विसाल, तोरण बंध्या मोती माल ॥२७॥

बहु पक्ष बहु मंगलचार, कामिणि गावे गीत सुचार।
वर कन्या कीन्हो सिंगार, चोवा चंदन वस्त्र अपार ॥२८॥

आवें मिथा करें बहु कोड, वर कन्या के बांध्यो मोड़।
वेदी मंडप विप्र आइयो, वर कन्या हथलेवो दियो ॥

दुवे पक्ष नर बैट्ठा वालि, भयो विवाह अग्नि दे साखि ॥
पुत्री धरमें दिन्ही मान, कंचन वस्त्र मान धनमानु ॥२९॥

समाज में शिक्षा का प्रचार था। सात वर्ष के बालक को पढ़ने भेज दिया जाता था। भविष्यदत्त चौपई में सात वर्ष के भविष्यदत्त को पढने भेजने के लिया लिखा है।[1] जैन समाज व्यापारिक समाज था। वह राज्य सेवा मे जाने की अपेक्षा व्यापार करना अधिक पसन्द करता था। २० वर्ष से भी कम आयु के नवयुवक व्यापारी देश एवं विदेश में व्यापार के लिये निकल जाते थे। वे समूहों में जाते। बंधुदत्त एवं धवल सेठ के काफिले में सैकड़ों व्यापारी नवयुवक थे।[2]

दहेज

विवाह में कन्या पक्ष की ओर से दहेज देने की प्रथा थी। दहेज को 'डाइजा' कहा जाता था। श्रीपाल, भविष्यदत्त, पवनंजय सभी को दहेज में अपार सम्पत्ति मिली थी। दहेज में हाथी, घोड़ा, स्वर्ण, वस्त्राभूषण, दास, दासी और कभी-कभी आधा राज्य भी दे दिया जाता था। लेकिन यह सब स्वतः ही दिया जाता था। वर पक्ष की ओर से कोई मांग नहीं होती थी। यह अवश्य है कि उस समय भी माता-पिता को अपनी लड़की के लिये अच्छे वर प्राप्त करने की चिन्ता रहती थी। अंजना

---

१. बालक सात वर्ष को भयो, पंडित आगे पढणो दियो। —भविष्यदत्त चौपई।

२. अस्व हस्ती बहु डाइजो हो, वस्त्र पटंबर बहु आभर्ण।
दासी दास दीया घणा हो, मणि माणिक्य जड़्या सोवर्ण। श्रीपाल रास

के विवाह की उसके पिता को बहुत चिन्ता थी इसके लिये उसने अन्न जल और पान, भी छोड़ दिये थे।

> चिन्ता अधिक भई सरीर, तज्यार तंबोल अन्न अरु नीर।
> राज कुंवार देखे सब तेहि, बात विचारन आवै कोइ ।।५४।७४।

कभी-कभी वर के चयन के लिये राजा लोग अपने मंत्रियों की सलाह लिया करते थे और उनमें से किसी एक वर के साथ राजकुमारी का विवाह कर दिया करते थे। अंजना के लिये पवनजय का चयन आदित्यपुर के राजा महेन्द्र द्वारा इसी प्रकार से किया गया था।[1]

भट्टारकों का प्रभुत्व

समाज पर भट्टारकों का पूर्ण प्रभाव था। उत्सव, विधान, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा समारोह, व्रतोद्यापन आदि के सम्पन्न कराने में उनका प्रमुख योगदान रहता। इन समारोहों में या तो वे स्वयं ही सम्माननीय आध्यात्मिक सन्त के रूप में सम्मिलित होते या फिर उन्हीं के नाम से समारोह का आयोजन रहता था। भट्टारकों के अतिरिक्त संघ की प्रमुख साधुओं में मंडलाचार्य, ब्रह्मचारी आदि के नाम प्रमुख हैं। ये सभी ग्रन्थों की प्रतिलिपि करने का काम भी करते थे। संवत् १६३० असाढ़ सुदी २ सोमवार को ब्रह्म रायमल्ल को भट्टारक सकलकीर्ति विरचित यशोधर चरित्र की पाण्डुलिपि भेंट की गयी थी। भेंटकर्ता थे ठाकुरसी एवं उनकी धर्मपत्नी लखण।[2] राजस्थान में भट्टारक चन्द्रकीर्ति संवत् १६२२ से १६६२ तक भट्टारक रहे। ब्रह्म रायमल्ल और भट्टारक चन्द्रकीर्ति समकालीन थे।

लेकिन व्रत उपवास एवं प्रतिष्ठा विधान के अतिरिक्त समाज में आध्यात्मिक साहित्य की भी मांग होने लगी थी। राजस्थान में ढूंढाड़ प्रदेश और उसमें भी

---

१. सत्यंजय मंत्री इम कहै, तहि नं पुत्री दीजै नही।
राजा बात सुनो हम तणी, वर उत्तम भो जोग्य अंजनी।
आदितपुर सोभै सुभथाल, कहै राज प्रहलाद भोवाल।
रानी केतमती घर भली, इन्द्र सरीसा जोडी मिली।
पवनंजय तसु बडड कुमार, धर्मवंत गुण समुद्र अपार।
कांति दिवाकर सोभै देह, सोलह बरना चन्द्रमुख ।।

२. प्रशस्ति संग्रह—सम्पादक डॉ० कासलीवाल, पृष्ठ ५३

बैराठ एवं सांगानेर एवं टोडारायसिंह तथा उत्तर प्रदेश में आगरा इसके प्रमुख केन्द्र थे। समयसार एवं प्रवचन सार जैसे ग्रन्थों के स्वाध्याय की ओर लोगों की रुचि उत्पन्न हो रही थी। बैराठ में पं० राजमल्ल ने समयसार पर टीका लिखने के पश्चात् ब्रह्म रायमल्ल ने परमहंस चौपाई की रचना आध्यात्मिक भावना की प्रचार प्रसार की दृष्टि से की थी।

भट्टारकों के प्रोत्साहन के कारण राजस्थान में प्रतिवर्ष कहीं न कहीं बिम्ब प्रतिष्ठा समारोहों का आयोजन होता रहता था। संवत् १६०१ से १६४० तक राजस्थान में तीस से भी अधिक बिम्ब प्रतिष्ठाएँ सम्पन्न हुई। इन समारोहों के दो लाभ थे। एक तो समूची समाज के कार्यकर्ताओं, विद्वानों, साधु सन्तों एवं श्रावक-श्राविकाओं का परस्पर मिलना हो जाता था। एवं नव मन्दिरों का निर्माण कराया जाता था। यह इस बात का संकेत है कि आम जनता में ऐसे समारोहों के प्रति कितनी रुचि एवं श्रद्धा थी। समाज में प्रतिष्ठा कराने वालों का विशेष सम्मान होता था। इसके अतिरिक्त ग्रन्थों की प्रतिलिपि कराने की श्रावकों में अच्छी लगन थी। संवत् १६०१ से १६४० तक के लिखे हुये सैकड़ों ग्रन्थ राजस्थान के ग्रन्थ भण्डारों में आज भी संग्रहीत हैं। ग्रन्थों की स्वाध्याय करने वालों, प्रतिलिपि कराने वालों अथवा स्वयं करने वालों की ग्रन्थों के अन्त में प्रशंसा की जाती थी।[1]

प्रमुख जैन जातियां

ब्रह्म रायमल्ल के समय में ढूंढाड प्रदेश में खण्डेलवाल एवं अग्रवाल जैन जातियों की प्रमुखता थी। सांगानेर, रणथम्भौर, साभर, टोडायसिंह, धौलपुर जैसे नगर इन्हीं जाति विशेष जैन समाज से परिपूर्ण थे। लेकिन देहली, रणथम्भौर, सांभर जैसे नगर खण्डेलवाल जैन समाज के लिये एवं देहली एवं झुंझुनु अग्रवाल जैन समाज के केन्द्र थे। स्वयं कवि ने न तो अपनी जाति के बारे में कुछ लिखा और न किसी जाति विशेष की प्रशंसा ही की। हनुमंत कथा में कवि ने श्रावकों के सम्बन्ध में जो वर्णन दिया है वह तत्कालीन समाज का द्योतक है—

श्रावक लोक बसै धनवंत, पूजा करै जपै अरिहंत।
उपरा ऊपरी वसे न कास, जिम अमरेंद्र स्वर्ग सुखवास।

---

१. लिहइ लिहावइ, पढइ पढावइ।
जो मणि भावइ, सो णरु पावइ।
बहुणिय धम्मइय, सासय सेपय॥

ठांइ-ठांइ बहु कथा पुराण, ठाम-ठाम छै श्राही ठाण ।
ठाम-ठाम बोलै बहु, दान देव सास्त्र गुर राखै माण ।।२१।।

धार्मिक तत्व

जैन काव्यो का प्रमुख उद्देश्य जीवन निर्माण का रहा है । जीवन का अन्तिम लक्ष्य निर्वाण प्राप्त करना है इसलिये निर्वाण प्राप्ति में जो साधन है उनका भी वर्णन रहना इन काव्यों की एक विशेषता रही है । जब तक मानव धार्मिक एवं सैद्धान्तिक दृष्टि से समुन्नत नहीं होगा तब तक वह दिशा विहीन होकर इधर उधर भटकता रहेगा । यही कारण है कि अधिकांश जैन विद्वानों ने अपनी अपनी कृतियों में फिर चाहे वह किसी भी भाषा में निबद्ध क्यों न हो, जैन सिद्धान्त का वर्णन किया है और नायक नायिका के जीवन में उन्हें पूर्ण रूप से उतारने का प्रयास किया है ।

ब्रह्म रायमल्ल ने अपने काव्यों में संक्षिप्त अथवा विस्तार से जैन सिद्धान्तों का वर्णन किया है । श्रीपाल रास में जैन सिद्धान्त का विस्तृत वर्णन न करने पर भी श्रीपाल द्वारा मुनि दीक्षा लेने तथा घोर तपस्या करने का वर्णन मिलता है ।[1] इसी तरह प्रद्युम्नरास में भी भगवान नेमिनाथ द्वारा कैवल्य प्राप्ति का वर्णन करके द्वारिका दहन की भविष्यवाणी का उल्लेख किया गया है ।[2] भविष्यदत्त कथा में चारों गतियों (देव, नारकी, मनुष्य और तिर्यञ्च) पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है । काव्य में इस वर्णन को धर्म कथा के नाम से उल्लेख किया गया है ।[3] इसी काव्य में आगे चल कर श्रावक धर्म का वर्णन किया गया है । जिसमें सप्त तत्त्व, नवपदार्थ, षट्द्रव्य, पंचास्तिकाय पर सम्यक् श्रद्धा होना, ग्यारह प्रतिमा, बारह व्रत, अणुव्रत, पंच समिति तीन गुप्ति, षट् आवश्यक, अठाईस मूलगुण आदि की विस्तृत चर्चा की गयी है । धर्मोपदेश सुनने के पश्चात् सिद्धान्तों के वर्णन करने का प्रमुख उद्देश्य नायक के जीवन में वैराग्य उत्पन्न करना है । भविष्यदत्त चौपई में भविष्यदत्त निम्न प्रकार विचार करने लगा—

---

१. हो सिरिपाल मुनि तप करि घोर । तोडे कर्म्म घातिया चोर ।

२. हो जिणवर बोलै केवलवाणी, हो बरस बारहै परलो जणी ।
अग्नि दाझिलसी द्वारिका जी, हो दीपांइण व लागें आगे ।
नग्री लोग न ऊबरै जी, हो हलधर किस्न छूटि सी भाजै ।।८८।।

३. धर्म कथा स्वामी विस्तरी, मुनिवर की बहु कीरति करी ।।२१।।५८।।

भवसायर [illegible] मनि [illegible], [illegible] नहीं ।
सहु कुटुम्ब सम्पदा सार, जैसी बीज तणौ चमकार ॥२५॥

भाई कर्म गति थालै फंद, राख न सकही इन्द्र फणीन्द्र ।
जीव बहुत ही लीला करै, बंधै कर्म सु लीया फिरै ॥२६॥

चहुं गति जीव फिरै एकलो, नीच-ऊंच कुल पावै भलौ ।
सुख दुःख बांटै माही कोइ, लाधै जिसा फल भुंजै सोइ ॥२७॥

मुनि श्री के उपदेश के प्रभाव से भविष्यदत्त ने अपने पुत्र को राज्य भार देकर स्वयं ने वैराग्य धारण कर लिया । भविष्यदत्त के साथ उसके परिवार के अनेक जनों ने भी संयम एवं व्रत धारण किये ।

हनुमन्त कथा में स्वयं हनुमाण रावण को बहुत ही शिक्षा प्रद एवं हितप्रद बातें सुनाते हैं और सीता को पुनः राम को देने का परामर्श देते हैं—

पर नारी सौ संग जो करै, अपजस होइ नरक संचरै ।
सीख हमारी करो परमाणि, पठवौ सिया राम कै थान ॥५६।११६॥

रावण को हनुमान की शिक्षा अच्छी नहीं लगती और अपनी शक्ति एवं वैभव की डींग हांकने लगता है । लेकिन हनुमान फिर रावण को समझाते हैं—

सगौ न कोई पुत्री मात, पुत्र कलत्त मित्र अरु तात ।
सगौ न कोई किसको होइ, स्वारथ आप करै सहु कोय ॥६६।१००॥

भये अनन्त चक्र भूपाल, ते पणि भया काटन की पाल ।
भूप अनन्त गया न आई, आगै आहु बताया गाइ ॥६७॥

इसी अवसर पर हनुमान बारह अनुप्रेक्षाओं के माध्यम से रावण को जगत् की शरीर एवं धन दौलत की असारता एवं विनाशी स्वभाव पर प्रकाश डालता है । इस तरह सभी जैन काव्य अपने नायक एवं नायिका के चरित्र को समुज्वल एवं निर्दोष बना कर संयम अथवा गृह त्याग के पश्चात् समाप्त होते हैं ।

इन काव्यों में कथा के साथ साथ भी कभी कभी गहन चर्चा की चुटकी ले ली जाती है जो जैन सिद्धान्तों पर आधारित होती है । प्रद्युम्न रास में नारद ऋषि पाप-पुण्य के रहस्य के बारे में जो मीठी चुटकी लेते हैं वह दिखने में सरल लेकिन गम्भीर अर्थ लिये हुये है—

हो नारद जंपै सुणहु कुमारो, हो उपजै विणासै इति संसारो ।
दुखि सुखि जीव सदा रहै जो, हो पाप पुण्य द्वै गैल न छाडै ।
सहै परिसह तप करै जो, हो पहु चै मुकति कर्म सहु तोडै ।।८०।।

सम्यकत्व की महिमा सर्वोत्तम है । उसी के सहारे देव एवं इन्द्र के पद को प्राप्त किया जा सकता है । अनेक ऋद्धियाँ प्राप्त की जा सकती है तथा सर्वार्थसिद्धि एवं निर्वाण भी प्राप्त किया जा सकता है इसलिये मानव के सम्यग्दर्शन होना महान् पुण्य का सूचक है ।

हो समकित के बल सुर धरणेंद, समकित केवल उपजै इन्द्र ।
चक्रवर्ति बल भोगवै हो, समकित के बल उपजै रिधि ।
जीव सदा सुख भोगवै हो, समकित बल सरवारथ सिधि ।।१२४।।

—श्रीपाल रास

अलौकिक शक्ति वर्णन

ब्रह्म रायमल्ल ने अपने प्रायः सभी प्रमुख काव्यों में अलौकिक शक्तियों का वर्णन किया है । इन शक्तियों को नायक स्वयं अपने पुण्य से उपार्जित करता है । अथवा उसे पुण्यात्मा होने की वजह से दूसरों के द्वारा दे दी जाती है । क्या प्रद्युम्न और क्या भविष्यदत्त एवं श्रीपाल अथवा हनुमान सभी को अनेक ऋद्धियाँ प्राप्त हैं और वे इन्हीं के सहारे अनेक विपत्तियों पर विजय प्राप्त करते हैं । श्रीपाल रास में अष्टाह्निका व्रताचरण से कुष्ठ रोग दूर होना, समुद्र को लांघ जाना, रैण मंजूषा की देवियों द्वारा सतीत्व की रक्षा करना आदि सभी में अलौकिकता का आभास मिलता है । प्रद्युम्न को तो सोलह गुफाओं में जाने पर अनेक ऋद्धियाँ प्राप्त हो जाती है तथा कंचनमाला से तीन विद्याएँ प्राप्त होती है और वह इन्हीं विद्याओं के बलबूते पर कालसंवर, सत्यभामा एवं स्वयं अपने पिता श्रीकृष्ण जी को अपना पौरुष दिखलाने में सफल होता है । युद्ध में विद्या बल से शत्रुसेना को मृत्यु की नींद में सुला देना तथा आपस में मित्रता होने पर उसे पुनः जीवित कर देना एक साधारण सी बात है । इसी प्रकार भविष्यदत्त को भी ऋद्धियाँ प्राप्त हो जाती है और इन्हीं के सहारे विमान का निर्माण करके नन्दीश्वर द्वीप की अपनी पत्नी के साथ वन्दना करने जाता है । सेठ सुदर्शन का सूली से बच जाना एवं सूली का सिंहासन बन जाना चमत्कारिक घटनाएँ है जिन्हें पढ़कर पाठक आश्चर्य में भर जाता है और स्वयं भी ऐसी अलौकिक शक्ति प्राप्त करने का प्रयास करने लगता है ।

प्रद्युम्न को सोलह गुफाओं से जो अनेक विद्याएँ प्राप्त हुई थी ब्रह्म रायमल्ल ने उनका निम्न प्रकार वर्णन किया है—

हो कामदेव के पुन्य प्रभाए, हो विंतर देव मिल्या सहु आए ।
करी मैरा का वंदना जी, हो दीन्हा जो विद्या तणा भंडारो ।
छत्र सिंहासण पालिका जी, हो सैयो धनष खडग हथियारो ।।१०।५८।।

हो रत्न सुवर्ण दीया बहुभाए, हो करै वीनती आगै आए ।
हम सेवक तुम राजई जी, हो सौलह गुफा भले आयो ।
विंतर देव संतौषिया जी, हो कंचण माला के मनि भायो ।।११।।

छन्द

ब्रह्म रायमल्ल ने अपने काव्यों में सीमित किन्तु लोकप्रिय छन्दों का ही प्रयोग किया है । ये छन्द हैं दोहा, चौपई, वस्तुबन्ध एवं कडवाहा । रास काव्यों में तथा प्रमुखतः श्रीपाल रास, प्रद्युम्नरास, नेमीश्वररास में इन्हीं छन्द का प्रयोग हुआ है । नेमिश्वर रास में स्वयं ब्रह्म रायमल्ल ने कडवाहा छन्द के प्रयोग किये जाने का उल्लेख किया है—

भव्यौ जी रासो सिवदेवी का बालको ।
कडवाहा एक सौ अधिक पैंताल ।
भावजी भेद जुदा-जुदा छंद नाम इहु सब्द शुभ वर्ण ।
कर जोडै कवियण कहै भव भव धर्म जिनेसुर सर्ण ।।१४५।।

भविष्यदत्त चौपई में चौपई छन्द का प्रयोग हुआ है । केवल नाम मात्र के लिये कुछ वस्तु बंध छन्द भी आया है । इसी तरह हनुमन्त कथा में भी चौपई छन्द की ही प्रमुखता है । दूहा एवं वस्तुबंध छन्द का बहुत ही कम प्रयोग हो सका है । परमहंस चौपई में भी केवल चौपई छन्द में पूरा काव्य निबद्ध किया गया है ।

सुभाषित एवं लोकोक्तियां

ब्रह्म रायमल्ल ने अपने समय में प्रचलित लोकोक्तियों एवं सुभाषितों का अच्छा प्रयोग किया है । इनके प्रयोग से काव्यों में सजीवता आयी है । यही नहीं तत्कालीन समाज एवं आचार व्यवहार का भी पता चलता है । यहाँ कुछ सुभाषितों एवं लोकोक्तियों को प्रस्तुत किया जा रहा है—

१—चाबै जिसौ तिसौ लुणै — श्रीपाल रास

२—काग गलै किम सोमैं हार — "

३—गयो कोढ जिम अहि कैंचुली — "

४—मुवा साथि न चि मुवो कोइ — "

५—जीवत मांखी को गलै — "

६—आयौ हो नाग न पूजै हो भाई
बाहरि बाबी जी पूजण जाई — प्रद्युम्नरास ।१८।।

७—छीलिल को रालि करि करै पेट की आस ।। — नेमीश्वररास ।१२२।

८—पुण्य पाप तस जैसा बवैं,
तहि का तैसा फल भोगवैं ।। — भविष्यदत्त ।१३।२३।

९—सुभ अरु असुभ उपायो होइ,
तहि का तैसा फल नर भुंजै सोइ ।। — "

१०—जैसा कर्म उदै हो आइ, तैसो तहां बंधि ले जाइ । — ४०।२६

११—पाप पुण्य ते साथिहि फिरै — ४२।२६

१२—हो सो भली बुरा कों बुरो

१३—पोते पुण्य होइ जब घणो, होइ सफल कारिज इह तणो ।। — हनुमंत कथा

१४—दास वेलि अर आंबैं चढी, एक सिंघ अर पाखर पढी ।। — ,, ६६।७५

१५—सुख दुख अर जामण मरण जिहो पानकि लिख्यो होई ।
घडी महूरत एक खिण राखि न सकै कोइ ।। — ,, १४।८७

१६—जा दिन आवै आपदा ता दिन मीत न कोइ ।
माता पिता कुटुंब सहु ते फिरि बैरी होइ ।। — ,, २६।८६

१७—अैसो कम्मं न कीजै कोइ, बंधै पाप अधिको दुख होइ ।
जिणवर धर्म जो निंदा करै, संसार चतुर्गति तेई फिरै ।। — ,, ५४'९३

१८—जप तप संयम पाठ सहु पूजा विधि त्योहार ।
जीव दया बिण सहु अफल, ज्यो दुरजन उपगार ।। — नेमीश्वररास ।।६७।।

१९—कामणी चरित ते गिण्या न जाइ — ।।६८।। ,,

२०—जैनी की दीक्षा खांडा की धार — ।।११६।। ,,

काव्यों के प्रमुख पात्र

जैन काव्यों के प्रमुख पात्रों में ६३ शलाका महापुरुषों के अतिरिक्त पुण्य पुरुषों एवं सामान्य पुरुष एवं स्त्री भी प्रमुख पात्र के रूप में प्रस्तुत होते हैं। नायक एवं नायिकाओं के साथ ही जो दूसरे पात्र आते हैं वे भी राजा महाराजा, विद्याधर एवं परिवार के दूसरे सदस्य भी बारी-बारी से आकर काव्य को आकर्षक बनाने में सहयोगी बनते हैं। ब्रह्म रायमल्ल ने अपनी कृतियों में पात्रों की संख्या में न तो वृद्धि की है और न बिना पात्रों के कथानक को लम्बा करने का प्रयास किया गया। इन सभी पात्रों का परिचय अत्यन्त आवश्यक है जिससे उनके व्यक्तित्व की महानता को भी पाठक समझ सकें और व्यर्थ की ऊहापोह से बच सकें। अब यहाँ कुछ प्रमुख पात्रों का परिचय दिया जा रहा है—

श्रीपाल रास

१. **श्रीपाल**—श्रीपाल चम्पापुर के राजा अरिदमन के पुत्र थे। ये कोटिभट कहलाते थे। कुष्ठ रोग होने पर इन्होंने अपना राज्य अपने चाचा को सौंप कर उन्हें अन्य कुष्ठ रोगियों के साथ भागना पड़ा। कुष्ठ अवस्था में ही इनका मैना सुन्दरी से विवाह होने पर सिद्ध चक्र विधान के गन्धोदक से इन्हें कुष्ठ रोग से मुक्ति मिली। विदेश में एक विद्याधर से जल तरंगिनी एवं शत्रु निवारिणी विद्या प्राप्त की। धवल सेठ के रुके हुये जहाजों को चलाया एवं उन्हें चोरों से छुड़ाया। रैण मंजूषा नामक राज्य कन्या से विवाह होने पर इन्हें धोखे से समुद्र में गिरा दिया गया लेकिन लकड़ी के सहारे तैरते हुए एक द्वीप में जा पहुँचे। वहाँ उसने गुणमाला कन्या से विवाह किया। धवल सेठ के भाटों द्वारा इनकी जाति भाण्ड बताने पर इन्हें सूली की सजा दी गयी लेकिन रैण मंजूषा ने इनको छुड़वाया। बारह वर्ष विदेश में घूमने के पश्चात् मैना सुन्दरी सहित अनेक वर्षों तक राज्य सुख प्राप्त किया तथा अन्त में दीक्षा प्राप्त कर निर्वाण प्राप्त किया।

२. **मैना सुन्दरी** — मगध देश में उज्जैनी के राजा की राजकुमारी थी। पिता ने कर्म की बलवत्ता का बखान करने पर क्रोधित होकर कुष्ठी श्रीपाल से विवाह कर दिया। लेकिन सिद्धचक्र विधान करके उसके गन्धोदक द्वारा पति का कुष्ठ रोग दूर करने में सफलता प्राप्त की। कितने ही वर्षों तक राज्य सुख भोगने के पश्चात् संसार से विरक्त होकर दीक्षा धारण कर सोलहवें स्वर्ग में देव हो गयी।

३. **रैण मंजूषा** — हंस द्वीप के राजा कनक केतु की पुत्री थी। सहस्रकूट चैत्यालय के कपाट खोलने पर श्रीपाल से विवाह हो गया। धवल सेठ द्वारा शील भंग करने के प्रयास में वह अपने चारित्र पर दृढ़ रही और देवियों द्वारा उपसर्ग दूर किया गया। सैंकड़ों वर्षों तक राज्य सपदा भोगने पर अन्त में दीक्षा लेकर स्वर्ग प्राप्त किया।

४. **धवल सेठ**—भृगुकच्छ पट्टन का बड़ा व्यापारी एवं व्यापारिक जहाजी बेड़े का स्वामी। श्रीपाल की दूसरी स्त्री रैणमंजूषा के शील भंग करने के प्रयास करने पर देवियों द्वारा धवल सेठ को प्रताड़ित किया गया। लेकिन राजा धनपाल के दरबार में श्रीपाल को अपने भाटों द्वारा भाण्ड पुत्र सिद्ध करने के प्रयत्न में फिर नीचा देखना पड़ा। अन्त में अपने घृणित पापों के कारण स्वमेव मृत्यु को प्राप्त हुआ।

५. **गुणमाला** — श्रीपाल की तीसरी पत्नी एवं राजा धनपाल की पुत्री। इसका विवाह सागर तैर कर आने के पश्चात् श्रीपाल से हुआ। पर्याप्त समय तक राज्य सुख भोगने के पश्चात् दीक्षा लेकर स्वर्ग प्राप्त किया।

६. **वीरदमन**—श्रीपाल का चाचा। कुष्ठ रोग होने पर श्रीपाल वीरदमन को राज्य भार सौंप कर विदेश चला गया। श्रीपाल के वापस आने पर जब वीरदमन ने राज्य देने से इन्कार किया तो दोनों में युद्ध हुआ और उसमें श्रीपाल की विजय हुई। अन्त में वीरदमन ने दीक्षा ग्रहण की।

प्रद्युम्नरास

७. **प्रद्युम्न** — रुक्मिणी की कोख से पैदा होने वाला श्रीकृष्ण का पुत्र। जन्म के छठे दिन अपने पूर्व जन्म के शत्रु असुर ने उसे चुरा कर शिला के नीचे दबा दिया। कालसंवर विद्याधर ने उसका लालन-पालन किया। वहां उसे कितनी ही अलौकिक विद्याएँ प्राप्त हुई। युवा होने पर कालसंवर की स्त्री कंचनमाला इस पर मोहित हो गई लेकिन प्रद्युम्न को अपने जाल में नहीं फंसा सकी। इस घटना के पश्चात् कालसंवर एवं प्रद्युम्न में युद्ध हुआ। युद्ध में जीत कर नारद के साथ प्रद्युम्न द्वारिका लौट आया तथा अपनी जन्म माता को अनेक क्रीड़ाओं से प्रसन्न किया। काफी समय तक राज्य सुख भोगने के पश्चात् अन्त में दीक्षा धारण की और गिरनार पर्वत से मोक्ष प्राप्त किया।

८. **नारद**—सभी क्षेत्रों एवं तीर्थों में भ्रमण करने वाले ऋषि। सत्यभामा के अभिमान को खण्डित करने के लिए श्रीकृष्ण को रुक्मिणी से विवाह करने के लिये प्रोत्साहित किया। प्रद्युम्न के अपहरण होने पर रुक्मिणी को धैर्य बंधाया। कालसंवर को एवं श्रीकृष्ण और प्रद्युम्न के साथ युद्ध होने पर वास्तविक रहस्यों से परिचित करा कर युद्ध को टालने में सफलता प्राप्त की।

९. **रुक्मिणी**—कुण्डलपुर के भीष्म राजा की रूपलावण्य युक्त पुत्री थी। श्रीकृष्ण ने इसका हरण करके विवाह किया था। प्रद्युम्न इसका पुत्र था। राज्य सुख भोगने के पश्चात् आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर स्वर्ग प्राप्त किया।

१०. **भीष्मराज**—कुण्डलपुर के राजा एवं रुक्मिणी के पिता।

११. **शिशुपाल**—पाटलीपुत्र का राजा था। पहले रुक्मिणी का विवाह इसी से निश्चित हुआ था। लेकिन श्रीकृष्ण द्वारा हर लिये जाने पर दोनों में युद्ध हुआ और अन्त में श्रीकृष्ण के हाथों मारा गया।

१२. **कालसंवर**—विद्याधर राजा था। शिला तले दबे हुये प्रद्युम्न को उठाकर उसे १६ वर्ष तक अपने यहां रखा था। प्रद्युम्न के साथ युद्ध में कालसंवर पराजित हुआ।

१३. **कंचनमाला**—कालसंवर की स्त्री थी। प्रारम्भ में प्रद्युम्न को उसी ने पाल-पोष कर बड़ा किया।

१४. **श्रीकृष्ण**—नव नारायणों में एक नारायण थे। रुक्मिणी को हर कर ले आये और उसके साथ विवाह कर लिया। प्रद्युम्न इन्हीं का पुत्र था। तीर्थङ्कर नेमिनाथ के ये चचेरे भाई थे।

१५. **सत्यभामा**—श्रीकृष्ण की पत्नी।

१६. **धूमकेतु**—प्रद्युम्न का पूर्वजन्म का शत्रु।

नेमीश्वररास

१७. **समुद्रविजय**—नेमिनाथ के पिता थे। इन्होंने गिरनार पर्वत से मोक्ष प्राप्त किया।

१८. उग्रसेन—राजुल के पिता थे।

१६. नेमीश्वर—२२ वें तीर्थङ्कर नेमिनाथ का ही दूसरा नाम है। ये श्री कृष्णजी के चचेरे भाई थे। जब ये विवाह के लिये तोरण द्वार पर पहुंचे तो उन्होंने एक ओर बहुत से पशु देखे जो बरातियों के लिए खाने के लिये वहां एकत्रित किये गये थे। नेमिनाथ करुणार्द्र होकर तोरण द्वार से वैराग्य लेने चले गये। दीर्घकाल तक तपस्या करने के पश्चात् इन्होंने गिरनार से परिनिर्वाण प्राप्त किया।

२०. राजुल—राजा उग्रसेन की लड़की थी। नेमिनाथ ने इनके साथ विवाह न करके वैराग्य धारण कर लिया था। राजुल ने भी नेमिनाथ के संघ में दीक्षा धारण करली और अन्त में घोर तपस्या करके स्वर्ग प्राप्त किया।

भविष्यदत्त चौपई

२१. धनपति सेठ—कुरु जांगल देश के हस्तिनापुर का नगर सेठ था।

२२. धनेश्वर सेठ—हस्तिनापुर नगर का दूसरा धनिक श्रेष्ठि था। धनश्री उसकी पत्नी थी।

२३. कमलश्री—धनेश्वर सेठ की सुपुत्री एवं भविष्यदत्त की माता थी। कुछ समय पश्चात् धनेश्वर सेठ ने कमलश्री का परित्याग करके उसे धनपति सेठ के यहां भेज दिया। कमलश्री धार्मिक विचारों की महिला थी। भविष्यदत्त जब विदेश चला गया तब भी वह जिन-भक्ति में लगी रहती थी। अन्त में आर्यिका दीक्षा लेकर घोर तप किया तथा स्त्री पर्याय से मुक्ति प्राप्त कर स्वर्ग प्राप्त किया तथा फिर दूसरे भव में जन्म धारण करके अन्त में निर्वाण प्राप्त किया।

२४. सरूपा—धनपति सेठ की द्वितीय पत्नि तथा बन्धुदत्त की माता।

२५. भविष्यदत्त — धनपति सेठ का पुत्र था। माता का नाम कमलश्री था। अपने छोटे भाई बन्धुदत्त के साथ विदेश में व्यापार के लिए गया। मार्ग में बन्धुदत्त उसे मदन द्वीप में अकेला छोड़कर आगे चला गया। भविष्यदत्त को इसी द्वीप में अनेक विद्याएँ, अपार संपत्ति एवं लावण्यवती भविष्यानुरूपा वधु मिली। जब बन्धुदत्त का जहाज पुनः इसी द्वीप में आया तो भविष्यदत्त एवं उसकी पत्नी उसके

साथ ही गये लेकिन भविष्यदत्त जब अपनी मुद्रिका वापिस लेने द्वीप में गया तो बन्धुदत्त उसे छोड़ कर आगे बढ़ चला। भविष्यदत्त फिर अकेला रह गया। फिर एक देव उसे विमान में बिठा कर हस्तिनापुर ले आया। यहां आने पर उसने पोदनपुर के राजा को युद्ध में हरा दिया और इस तरह हस्तिनापुर का राज्य भी उसे मिल गया। वर्षों तक राज्य सुख भोगने के पश्चात् भविष्यदत्त ने मुनि दीक्षा ले ली और अन्त में तपस्या करके निर्वाण प्राप्त किया।

२६. **भविष्यानुरूपा**—भविष्यदत्त की पत्नी जो तिलक द्वीप से प्राप्त हुई थी।

२७. **बन्धुदत्त**[1]—भविष्यदत्त की दूसरी माता से उत्पन्न हुआ भाई। बन्धुदत्त ने भविष्यदत्त को दो बार धोखा दिया। उसे हस्तिनापुर के राजा ने देश से निर्वासित कर दिया था।

हनुमन्त कथा

२८. **प्रहलाद**—आदित्यपुर के शासक एवं पवनजय के पिता थे।

२९. **महेन्द्र**—सुमेरु की पूर्व की ओर महेन्द्र देश का शासक तथा अंजना का पिता।

३०. **पवनंजय**—विद्याधर राजा प्रहलाद का पुत्र एवं अंजना का पति। १४ वर्ष तक अंजना से दूर रहने के पश्चात् जब वह रावण की सहायतार्थ सेना सहित जा रहा था तो चकवी के विरह को देख कर उन्हें अंजना की याद आ गई और वह अपने साथी के साथ उससे मिलने चल दिया। शत्रु सेना पर विजय के पश्चात् जब वह वापिस आया तो उसे अंजना नहीं मिली अन्त में पर्याप्त खोज के पश्चात् अंजना हनुमान सहित मिली।

३१. **मधुलता**—अंजना की सहेली एवं दासी।

३२. **रावण**—लंका का स्वामी तथा राक्षसों का अधिपति। अनेक विद्याओं का धारक। सीता का हरण करने के कारण राम के साथ युद्ध हुआ जिसमें वह लक्ष्मण द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुआ।

---

१. रहत तहा केई दिन गया, बंधूदत्त मोहण आइगा।
दमडी एक न पूंजी रही, पाप जोग सगली खोइयो।२३।
फाटा वस्त्र अति बुरा हाल, दुर्बल अस्ति उतरी खाल।

३३. **सुग्रीव**—किकिन्धापुरी का राजा एवं राम का विश्वस्त सहायक।

३४. **हनुमान**—अंजना का पुत्र था। सीता की खोज में लंका जाते हुये उसने जैन मुनियों को बचाया था। हनुमान राम का विश्वस्त सेवक था।

सुदर्शनरास

३५. **धाडीवाहन**—अंग देश के राजा थे। रानी के बहकावे में आकर राजा ने सेठ सुदर्शन को सूली का आदेश दिया था।

३६. **अभया**—अंग देश के राजा धाडीवाहन की रानी थी। कपिला ब्राह्मणी के चक्कर में आकर सेठ सुदर्शन से अपनी शारीरिक प्यास बुझाने की दृष्टि से उसे श्मशान में सामायिक करते हुए उठा कर अपने महल में मंगा लिया। सेठ सुदर्शन अपने चरित्र पर दृढ़ रहा। लेकिन रानी ने सेठ सुदर्शन पर शील-भंग का लांछन लगा दिया। लेकिन जब शील के महात्म्य से सूली का सिंहासन बन गया और रानी को मालूम हुआ तो वह अपघात करके मर गयी।

३७. **कपिला**—वह ब्राह्मणी थी। सेठ सुदर्शन की सुन्दरता पर मुग्ध थी। दर्द का बहाना बनाकर सेठ सुदर्शन को अपने यहाँ बुला लिया तथा काम ज्वर का नाम लेकर सेठ को फुसलाना चाहा लेकिन सुदर्शन उसे बहुत समझा कर कपिला के चंगुल से मुक्त हो गया। अन्त में कपिला नगर छोड़कर पाटलीपुत्र चली गयी।

३८. **मनोरमा**—सेठ सुदर्शन की धर्म पत्नि।

३९. **सेठ सुदर्शन**—सुदर्शन चम्पा नगरी का नगर सेठ था जो अपने चरित्र के लिये वह नगर भर में प्रसिद्ध था। कपिला ब्राह्मणी एवं अभया रानी दोनों के ही चंगुल में वह नहीं फँसा। राजा ने रानी के बहकावे में आकर जब उसे सूली का आदेश दिया तो सुदर्शन ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। लेकिन उसके शील के महात्म्य से वह सूली सिंहासन बन गयी। इसके पश्चात् कितने ही वर्षों तक घर में रहने के पश्चात् मुनि दीक्षा धारण करली और तपस्या करके निर्वाण प्राप्त किया।

जम्बूस्वामीरास

४०. **जम्बूस्वामी**—भगवान् महावीर के पश्चात् होने वाले अन्तिम केवली। इनके पिता का नाम श्रेष्ठि ऋषभदत्त एवं माता का नाम धारिणी था। युवावस्था में इनका विवाह आठ कन्याओं से हो गया। लेकिन उनका मन संसार में नहीं लगा।

इसलिये एक-एक पत्नि का परित्याग करके उन्होंने वैराग्य ले लिया तथा अन्त में घोर तपस्या के पश्चात् पहिले कैवल्य और फिर निर्वाण प्राप्त किया। जैन कवियों के लिये जम्बूस्वामी का जीवन बहुत प्रिय रहा है इसलिये सभी भाषाओं में उनके जीवन से सम्बन्धित रचनाएँ मिली हैं।

काव्यों में वर्णित प्रदेश, ग्राम एवं नगर

ब्रह्म रायमल्ल ने अपने काव्यों में अनेक प्रदेशों, नगरों, ग्रामों एवं द्वीपों का का उल्लेख किया है। कुछ नगरों के सम्बन्ध में विस्तृत वर्णन किया है और कुछ का केवल नामोल्लेख मात्र किया है फिर भी ग्राम एवं नगरों के वर्णन से काव्यों में रोचकता एवं उत्सुकता आयी है। अधिकांश नगर ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक नगर हैं जिन्होंने देश की संस्कृति के विकास में भरपूर योगदान दिया है। ब्रह्म रायमल्ल ने भृगुकच्छपट्टण,[1] मालवदेश,[2] उज्जयिनी,[3] रत्नद्वीप,[4] अंगदेश,[5] चम्पापुर, दलवट्टण, दलवणपट्टण,[6] द्वारिका,[7] कुण्डलपुर,[8] हस्तीनागपुर,[9] पुंडरीक,[10] मगधदेश,[11] अयोध्या,[12] आदितपुर,[13] बसन्तनगर,[14] लंका,[15] पुण्डरीक कोकिंदा,[16] कुरुजांगलदेश,[17] पोदनपुर,[18] एवं वाराणसी[19] आदि नगरों एवं प्रदेशों का उल्लेख

१. श्रीपाल रास, ८० ।
२. वही, ६ ।
३. वही, ६ ।
४. वही, ८३ ।
५. वही, ११५ ।
६. वही, १६३ ।
७. प्रद्युम्नरास, ५ ।
नेमीश्वररास, ८ ।
८. वही, २१।३६ ।
९. भविष्यदत्त चौपई, १०–२० ।
१०. प्रद्युम्नरास, ८२ ।
११. वही, ८६ ।
१२. वही, ६३ ।
१३-१६. हनुमत कथा ।
१७. भविष्यदत्त चौपई, १०–२० ।
१८. वही ।
१९. निर्दोष सप्तमी कथा ।

किया है तथा अपने पात्रों की जीवन घटनाओं का वर्णन किया है। कुछ नगरों का विस्तृत परिचय निम्न प्रकार है—

भृगुकच्छपट्टण

सौराष्ट्र प्रान्त के वर्तमान भडौच नगर का नाम ही प्राचीन काल में भृगुकच्छपट्टण था। यह नगर जैन साहित्य, व्यापार एवं संस्कृति का प्रमुख केन्द्र माना जाता था।[1] श्रीपाल एवं धवल सेठ की प्रथम बार इसी नगर में भेट हुई थी।[2] सेठ के जहाजी बेड़े में ५०० जहाज थे। जिनसागर सूरि ने अष्टकम् में भृगुकच्छ को सौराष्ट्र का नगर लिखा है।[3] आचार्य चन्द्रकीति ने भडौच नगर में अपनी कितनी ही रचनाओं को समाप्त किया था।[4] इसी तरह ब्रह्म अजित ने भृगुकच्छपुर के नेमिनाथ चैत्यालय में हनुमत्चरित्र की रचना की थी।[5] व्यवहार भाष्य में नगर का बड़ा महत्व बतलाया है।[6] कालकाचार्य ने भी इस नगर में विहार किया था।[7] गुणचन्द्र गणि ने प्राकृत भाषा में संवत् ११६८ में इसी नगर में पासणाहचरित की रचना समाप्त की थी।[8]

मालवदेश

मालवा और मालव एक ही नाम है। भारतीय साहित्यकारों एवं विशेषतः जैन साहित्यकारों के लिए मालव देश बहुत आकर्षण का देश रहा है। जैन आगम,

---

१. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या ३७३।

२. हो लघि देस वन गिरि नदी पाल।
सागर तट्ट हुढीभयौ हो मुग, कच्छपटण सुविसाल ॥८०॥ श्रीपालरास

३. द्वीपे श्री भृगुकच्छ वृद्ध नगरे सौराष्ट्रके सर्वत: ॥२॥

४. राजस्थान के जैन संत—डा० कासलीवाल, पृ० १५७।

५. वही, पृ० १६५।

६. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० २१६।

७. वही, पृ० ४५८।

८. वही, पृ० ५४६।

पुराण एवं काव्य साहित्य में इस प्रदेश का खूब उल्लेख मिलता है। आचार्य समंतभद्र ने मालवा के विद्वानों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा था। भट्टारक ज्ञानभूषण ने मालव जन पद के श्रावकों को सम्बोधित किया था।[८] श्रीपाल मालव देश का राजा था।

उज्जयिनी

उज्जयिनी नगरी सैंकड़ों वर्षों तक मालव जन पद की राजधानी रही। जैन साहित्य एवं इतिहास में इस नगरी का नाम सदैव ही प्रमुख रूप से लिया जाता रहा। भगवान महावीर ने इसी नगरी के अतिमुक्तक श्मशान में रूद्र द्वारा किये गये घोर उपसर्ग पर विजय प्राप्त की थी। आगमों एवं अन्य साहित्य में उज्जयिनी से सम्बन्धित अनेक कथाएँ मिलती हैं। श्रीपाल राजा की राजधानी उज्जयिनी ही थी। चन्द्रगुप्त के शासनकाल में उज्जयिनी उसके राज्य का अंग थी तथा इस नगरी से भद्रबाहु के शिष्य विशाखाचार्य अपने संघ के साथ प्रयाग गये थे। भट्टारकों की भी यह नगरी केन्द्र रही थी। संवत् १६६६ में विष्णुकवि ने भविष्यदत्त चौपई की यहीं रचना की थी।[९]

रत्नद्वीप

श्रीपाल एवं भविष्यदत्त अपने समय में दोनों ही वहां व्यापार के लिये गये थे। यह कोई दक्षिण दिशा का छोटा द्वीप मालूम पड़ता है।

अंगदेश एवं चम्पानगरी

अंगदेश एक जन पद था। चम्पा नगरी इसकी राजधानी थी। यह आर्य क्षेत्र में आता था और आर्यों के २५३ जनपदों में इसका प्रमुख स्थान था। श्रीपाल रास में अंगदेश एवं उसकी राजधानी चम्पा का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

हा सुणि कोडीभड करै बखाण, अंगदेस चम्पापुरि थान।
तासु सिंधरथ राजइ, हो कुंबापहु तस तीयर सुजाणि।
तासु पुत्र सिरीपाल हा हो बचन हमारा जाणि प्रमाणि ॥११२॥

---

८. राजस्थान के जैन संत—डा० कासलीवाल, पृ० ४०।

९. संवतु सोरहसै हुई गई, अधिकी तापर छासठि भई।
पुरी उज्जैनी कविनि को वासु, बिष्णु तहां करि रह्यो निवासु ॥

सेठ सुदर्शन भी अंगदेश का ही था। सुदर्शन रास में अंगदेश को धन-धान्यपूर्ण एवं जिन भवनों से युक्त देश कहा है।[1]

दश पुर।

दशपट्टण अथवा दलवणपट्टण दशपुर के ही दूसरे नाम हैं। दशपुर पहले मन्दसौर का ही दूसरा नाम था।[2] कवि राजशेखर ने दशपुर का उल्लेख पैशाची भाषा के बोलने वालों का नगर बतलाने के लिये किया है।[3] आवश्यकचूर्णि में दशपुर की उत्पत्ति का उल्लेख आया है।[4] आचार्य समन्तभद्र संभवतः दशपुर में कुछ समय तक रहे थे।

द्वारिका

यादवों की समुद्र तट पर स्थित प्रसिद्ध पौराणिक नगरी। इसी नगरी के शासक समुद्रविजय, वासुदेव एवं हलधर थे। २२ वें तीर्थङ्कर नेमिनाथ की जन्म नगरी भी यही थी। कवि ने द्वारिका का वर्णन नेमीश्वररास एवं प्रद्युम्नरास दोनों में किया है।

अहो क्षेत्र भरथ अर जंबू दीपो।
नय द्वारावती समद समीप सोभा वाग वाडी घणा।
अहो छपन जी कोडि जादौ तणो वासो।
लोगति सुखीय लीला करैं
अहो इन्द्रपुरी जिम करैं हो विकास ॥८॥ **नेमीश्वररास**

दुर्वासा ऋषि के शाप से द्वारिका जल कर नष्ट हो गई थी।

---

१. अहो अंग देस अति भलो जी प्रधाना,
धनकण संपदा तणो जो निधान
जिन भवण बन सरोवर घणा
अहो चम्पा जो नग्री हो मध्य सुभ थान
मुनिवर निवसैं जी अति घणा।
स्वामी जी वासुपुज्य जी पहुंतो निरवाण॥

२. पम्परामायण (७-३५)।

३. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० २६।

४. वही, पृ० २५०।

५. जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश, पृ० १७४।

आदित्यपुर

सुमेरु के दक्षिण दिशा की ओर स्थित विद्याधरों का नगर था। नगर अपनी प्राकृतिक सौन्दर्य के लिये विख्यात था। पवनकुमार का पिता प्रहलाद इसी नगर का शासक था।

बसन्त नगर

सुमेरु के पूर्व दिशा की ओर स्थित विद्याधरों का दूसरा नगर। महेन्द्र इसी का शासक था। अंजना उसकी पुत्री थी।

पुंडरीक

विदेह क्षेत्र का नगर जहां सीमन्धर स्वामी शाश्वत विराज कर धर्मोपदेश का पान कराते रहते हैं।

लंका

भारत के दक्षिण की ओर स्थित लंका द्वीप बहु चर्चित द्वीप है। रावण यहां का राजा था। उसने सीता का अपहरण करके इसी द्वीप में लाकर रखा था। हनुमंत कथा में ब्रह्म रायमल्ल ने लंका वर्णन किया है। यह द्वीप त्रिकुटाचल पर्व की तलहटी में स्थित है।[1]

हस्तिनागपुर

हस्तिनापुर का ही दूसरा नाम है। यह नगर कुरुजांगल देश की राजधानी थी। ब्रह्म रायमल्ल ने इस नगर को स्वर्ग की नगरी के समान लिखा है और उसका निम्न प्रकार विस्तृत वर्णन किया है[2] —

उत्तम कुरु जंगल को देस, भली वस्त सहु भरिउ असेस।
वस्तु मनोहर लहि जे घणी, पुर्ख तहां रली मन तणी।
तह मैं हस्तनागपुर थान, सोभा जैसी सुर्ग विमान।
बाग बावडी तहां सोभा घणी, वृक्ष जाति बहु जाई न गिणी।
मुनिवर तप धरे तहां ध्यान, जाणे सोनो तिणो समान।
परिगह संगत जैसा ईस, करइ ध्यान अति महा जगीस ॥११॥

---

१. पद्मपुराण ५।१६७। २. भविष्यदत्तचौपई।

रिद्धिवंत मुनिवर अति घणा, वृक्ष फलं सहु छह रिति तणा ।
करैं घोर तप मन बच काय, उपजो केवल मुक्ति ही जाइ ।।१२।।
क्षेत्रो धान अहार होइ, दुष्कुकाल न जाणे कोइ ।
सोभ भली ताल पोखरी, दीसे निर्मल पानी भरी ।।१३।।
पंथी जणए तस भूख पलाई, सीतल नीर वृक्ष फल खाई ।।१४।।
नग्र मांहि जिण थानक घणा, माहै बिंब भला जिण तणा ।
दृढ विधि पूजा श्रावक करै, गुर का वचन स हीयडे धरै ।।१५।।
दान चारि तिहुं पात्रां देइ, पात्र कुपात्र परीक्षा लेइ ।
बिंब प्रतिष्ठा जात्रा सार, खरचै द्रव्य आपणै अपार ।।१६।।
ऊंचा मंदर पोल नगार, नाम सूचि तहाँरि विस्तार ।
घरि घरि रली बधावा होइ, खान पीडित नहि सुणि जे कोइ ।।१७।।
राजा राज करै भूपाल, जैसो स्वर्ग इन्द्र चोवास ।
पालै प्रजा चालै न्याइ, पुन्यवंत हथनापुर राइ ।।१८।।

प्रद्युम्न चरित में दुर्योधन को हस्तिनापुर का राजा लिखा है । जैन ग्रन्थों में हस्तिनापुर को देश की १० प्रसिद्ध राजधानियों एवं तीर्थों में गिनाया है ।

महाकवि की काव्य रचना के प्रमुख नगर

ब्रह्म रायमल्ल सन्त थे इसलिए वे भ्रमण किया ही करते थे । राजस्थान उनका प्रमुख प्रदेश था जिसके विभिन्न नगरों में उन्होंने विहार करके साहित्य-निर्माण का पवित्र कार्य संपन्न किया था । कवि ने उन नगरों का रचना के अन्त में जो परिचय दिया है वह अत्यधिक महत्वपूर्ण है तथा यह नगरों के व्यापार, प्राकृतिक सौन्दर्य एवं वहां की व्यवस्था के बारे में परिचय देने वाली है । हम यहां उन सभी नगरों का सामान्य परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं —

रणथम्भौर

ढूंढाड प्रदेश में रणथम्भौर का किला वीरता एवं बलिदान का प्रतीक है । उसके नाम से शौर्य एवं त्याग की कितनी ही कहानियां जुड़ी हुई हैं । 11 वीं शताब्दि से यह दुर्ग शाकम्भरी के चौहान शासकों के अधीन था । इसके पश्चात् रणथम्भौर ने

कितने ही उतार चढ़ाव देखे। कभी उसके तलवारों एवं तोपों की खुली चुनौती का सामना किया तो कभी उसने रक्षा के लिए हजारों लाखों वीरों को अपना खून बहाते देखा। हम्मीर राजा के साथ ही रणथम्भौर का भाग्य ने पलटा खाया और कभी वह मुसलिम बादशाहों की अधीन रहा तो कभी राजपूत शासकों ने उस पर अपनी पताका फहरायी। देहली के बादशाहों के लिए यह किला हमेशा ही सिरदर्द बना रहा। सम्राट अकबर ने जब इस किले पर अधिकार किया तो वहाँ कुछ शान्ति रही अन्त में मुगल सम्राट शाह आलम ने इस किले को जयपुर के महाराजा सवाई माधोसिंह को दे दिया।

रणथम्भौर जैनधर्म एवं संस्कृति का केन्द्र रहा। युद्धों एवं मारकाट के मध्य भी वहाँ कभी-कभी सांस्कृतिक कार्य होते रहे। 11 वीं शताब्दि में शाकम्भरी के सम्राट पृथ्वीराज (प्रथम) ने जैन मन्दिरों में स्वर्ण कलश चढ़ाया था।[1] सिद्धसेन सूरि ने राजस्थान के जिन पवित्र स्थानों का उल्लेख किया है उनमें रणथम्भौर का नाम भी सम्मिलित है।

राजा हम्मीर के शासन काल में भट्टारक धर्मचन्द्र ने किले में विशाल प्रतिष्ठा समारोह का आयोजन किया था[2] और मन्दिर में चौबीसी की स्थापना करवायी थी। उसके शासन में जैन धर्म का चारों ओर अच्छा प्रभाव स्थापित था। हम्मीर के पश्चात् रणथम्भौर मुसलिम शासकों के आक्रमण का शिकार बनता रहा। संवत् 1608 में पं० जिनदास ने शेरपुर के शान्तिनाथ चैत्यालय में होलीरेणुका चरित्र की रचना की थी। जिनदास रणथम्भौर के निकट नवलक्षपुर का रहने वाला था।[3] इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि रणथम्भौर में ही साह करमा द्वारा करवायी गई थी और आचार्य ललितकीर्ति को भेंट में दी गई थी। इसके एक वर्ष पश्चात् संवत् 1609 में श्रीधर

---

१. रणथंभपुरे प्राणालेहेणं जस्स सभरिवेण।
हेम धय दंड मिसओ निच्चं नच्चाविया कित्ती ॥३॥
—पद्मदेव कृत सद्गुरुपद्धति

२. संवत् माघ बदि ५ श्री मूलसंघे सरस्वती गच्छे भट्टारक श्री धर्मचन्द्र जी साहमल पीलमल चांदवाड भार्या भरवत सहरगढ रणथंभौर श्री राजा हम्मीर।

३. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची चतुर्थ भाग, पृ० २१२, पंचायती मन्दिर भरतपुर।

के भविष्यदत्त चरित की प्रतिलिपि की गई। भविष्यदत्तचरित अपभ्रंश की कृति है। इसी वर्ष एक और ग्रंथ जिणदत्तचरिउ की प्रतिलिपि की गई। प्रस्तुत पांडुलिपि आचार्य ललितकीर्त्ति को भेंट स्वरूप दी गई। उस समय साह दुलहा वहाँ के प्रमुख श्रावक थे।

संवत् 1630 में या इसके पूर्व ब्रह्म रायमल्ल रणथम्भौर पहुँचे थे। उस समय किले पर सम्राट अकबर का शासन था। तथा वहाँ अपेक्षाकृत शान्ति थी। इसी कारण कवि वहाँ श्रीपाल रास की रचना कर सके। ब्रह्म रायमल्ल वहाँ कितने समय तक रहे इस सम्बन्ध में तो कोई उल्लेख नहीं मिलता किन्तु कवि ने किले की समृद्धि की प्रशंसा की है तथा उसे धन तथा सम्पत्ति का खजाना कहा है। किले के चारों ओर पानी से भरे हुए सरोवर थे। यही नहीं वन उपवन उद्यान से वह युक्त था। किले में बहुत से जिन मन्दिर थे जो अतीव शोभायमान थे।

संवत् 1644 में भट्टारक सकलभूषण के षटकर्मोपदेश माला की प्रतिलिपि श्रीमती पार्वती ने सम्पन्न करायी। उस समय यहाँ राव जगन्नाथ का शासन था। दुर्ग के चारों ओर शान्ति थी तथा वहाँ के निवासियों का ध्यान साहित्य प्रचार की ओर जाने लगा था। इसके पश्चात् संवत् 1659 में श्री ऋषभदेव जी अग्रवाल के आग्रह से तत्वार्थसूत्र की प्रति की गई। इससे अग्रवाल जैन समाज में पूर्ण प्रभाव था। राजा जगन्नाथ ने टोडा के निवासी खीमसी को अपना मन्त्री बनाया जिन्होंने किले पर एक जिन मन्दिर का निर्माण कराया था।

हरसोर

हरसोर की राजस्थान के प्राचीन नगरों में गणना की जाती है। जो नागौर जिले में पुष्कर से डेगाना जाने वाले बस सड़क पर स्थित है। 12 वीं शताब्दि में यह नगर प्रसिद्धि पा चुका था। जिस प्रकार श्रीमाल से श्रीमाली तथा ओसिया से ओसवाल, खंडेला से खण्डेलवाल जाति का निकास हुआ था उसी प्रकार हरसोर से हरसूरा जाति की उत्पत्ति हुई थी।[1] इसी तरह हर्षपुरीय गच्छ का भी इसी नगर से उत्पत्ति हुई थी।[2] हरसोर पर प्रारम्भ में शाकम्भरी के चौहानों का शासन था। चौहानों के पश्चात् हरसोर पर मुसलमानों का अधिकार हो गया।

---

1. Ancient Cities and Town, of Rajasthan by Dr. K. C. Jain, Page 328.
2. Ibid, Page 330.

संवत् 1628 में ब्रह्म रायमल्ल हरसोर पहुँचे और वहीं पर भादवा सुदी 2 बुधवार संवत् 1628 के दिन प्रद्युम्नरास की रचना समाप्त की। कवि ने हरसोर का बहुत ही संक्षिप्त परिचय दिया है जो निम्न प्रकार है—

हो सोलहसै अठविस विचारो, हो भादव सुदि दुतीया बुधिवारो
गढ हरसौर महा भलो जी, हो देवशास्त्र गुरु राखै मानो ।।194।

17 वीं शताब्दि के प्रथम चरण में हरसोर में श्रावकों की अच्छी बस्ती थी और वे देवशास्त्र गुरू तीनों की ही भक्ति करते थे।

जयपुर के पाटोदी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार में संवत् 1662 की एक भविष्यदत्त चरित्र (श्रीधरकृत) की पांडुलिपि है जो जिसकी लिपि अजमेर में अर्जुन जोशी द्वारा की गयी थी इसके दूसरे ओर लिखा हुआ है कि हरसोर में राजा सांवलदास के शासन काल में खण्डेलवाल देव एवं उसकी पत्नी देवलदे द्वारा ग्रन्थ की प्रतिलिपि करायी गयी थी।[1]

झुंझुनू

झुंझुनु शेखावाटी प्रदेश का प्रमुख नगर है। देहली के समीप होने के कारण यहां दिगम्बर जैन भट्टारकों का बराबर आवागमन बना रहा। 15 वीं शताब्दि में होने वाले चरित्रवर्द्धन का झुंझुनु के प्रदेश ही प्रमुख कार्य क्षेत्र था।[2] नगर में दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों ही का जोर था। संवत् 1516 में इसी नगर में भट्टारक जिनचन्द के एवं मुनि सहस्त्रकीत्ति के शिष्य तिहुणा ने त्रैलोक्यदीपक (वामदेव) की प्रतिलिपि करके अपने गुरू जिनचन्द्र को भेंट की। ग्रन्थ की प्रतिलिपि कराने वाले थे खण्डेलवाल जाति के सेठी गोत्र वाले संघी मोठना उसकी पत्नी साहु एवं उसके परिवार के अन्य सदस्यगण। पंचमी व्रत के उद्यापन के उपलक्ष में प्रस्तुत ग्रन्थ प्रतिलिपि करवाकर तत्कालीन भट्टारक जिनचन्द को भेंट स्वरूप दिया गया था।[3]

संवत् 1615 में ब्रह्म रायमल्ल झुंझुनु पहुँचे। उनका वहां अच्छा स्वागत किया गया और इसी नगर में नेमीश्वररास समाप्त किया। कवि ने नगर का जो संक्षिप्त

१. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची, चतुर्थ भाग, पृ० १८४।
२. राजस्थान के जैन साहित्य, पृ० ६६।
३. स्वस्ति सं० १५१६ वर्षे ....सद्गुरुवे प्रदत्तं।

वर्णन किया है उससे पता चलता है कि नगर में चारों ओर वन उपवन थे। श्रावकों की संख्या नगर में विशेष थी। वैसे वहाँ सभी जातियों के लोग रहते थे। नगर का राजा चौहान जाति का था जो उदार एवं कुशल शासक था तथा सभी धर्मों का आदर करता था।[1]

संवत् 1815 से पूर्व महापण्डित टोडरमल [illegible] झुंझुनु प्रदेश में ही स्थित हैं। इससे भी पता चलता है कि उस समय तक यह प्रदेश जैन धर्मावलम्बियों का प्रमुख क्षेत्र था।

धौलपुर

धौलपुर पहिले राजस्थान की एक छोटी जाट रियासत थी। वर्तमान में यह सवाई माधोपुर का उपजिला है। धौलपुर राजस्थान एवं मध्यप्रदेश का सीमावर्ती प्रदेश है। वैसे धौलपुर का प्राचीन इतिहास रहा है। 8 वीं शताब्दि से 17 वीं शताब्दि तक यहाँ चौहान एवं तोमर राजपूतों का शासन रहा। कुछ समय के लिए सिकन्दर लोदी ने इस क्षेत्र को अपने राज्य में मिला लिया। खानुआ की लड़ाई के पश्चात् यह प्रदेश मुगलों के हाथ में आ गया और उसके पश्चात् मरहठाओं ने इस पर अपना अधिकार कर लिया। सन् 1806 में धौलपुर, बाड़ी, राजाखेड़ा तथा सरमथुरा को मिलाकर एक नयी रियासत को जन्म दिया गया उसे महाराज राना कीरतसिंह को दे दिया गया। उनके पश्चात् मत्स्य प्रदेश निर्माण तक धौलपुर राज्य का शासन उन्हीं के वंशजों के हाथों में रहा।

धौलपुर जैन धर्म की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण प्रदेश रहा है। अपभ्रंश के महाकवि रइधु का धौलपुर प्रदेश से विशेष सम्बन्ध रहा था और उनका जन्म भी इसी प्रदेश में हुआ था।[2] श्री जिनहंससूरि (सं० 1524-82) ने धौलपुर में बादशाह को चमत्कार दिखला कर 500 कैदियों को छुड़वाया था।[3]

संवत् 1629 अथवा इसके पूर्व से ब्रह्म रायमल्ल स्वयं धौलपुर पहुँचे और वहाँ के श्रावक श्राविकाओं को साहित्य एवं संस्कृति के प्रति जागरूकता के लिए प्रेरणा दी। ब्रह्म रायमल्ल ने नगर की सुन्दरता का यद्यपि अधिक वर्णन नहीं किया लेकिन जो

---

१. अहो सोलह सै पन्द्रह रच्यौरास..............................रासैजी मान ॥४२॥
२. राजस्थान का जैन साहित्य, पृ० १५५।
३. वही, पृ० ६७।

कुछ किया है उससे ज्ञात होता है कि उस समय नगर में सभी जातियाँ रहती थी तथा वह वन, उपवन, मन्दिर एवं मकानों की दृष्टि से नगर स्वर्ग समान मालूम होता था। कवि ने धौलपुर को धोलहरनग्र लिखा है।[1] लोगों को घनी बस्ती थी और उनकी रुचि पूजा पाठ आदि में रहती थी।

शाकम्भरी

वर्तमान सांभर का नाम ही शाकम्भरी रहा है। शाकम्भरी का उल्लेख संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश के विभिन्न ग्रन्थों में मिलता है। शाकम्भरी देवी के पीठ के रूप में वर्तमान सांभर की प्राचीनता महाभारत काल तक तो चली ही जाती है : महाभारत (वनपर्व) देवी भागवती 7।28, शिवपुराण (उमासंहिता) मार्कण्डेयपुराण और मूर्ति रहस्य आदि पौराणिक ग्रन्थों में शाकम्भरी की अवतार कथाओं में शतवार्षिकी अनावृष्टि, चिन्ताकुल ऋषियों पर देवी का अनुग्रह, जलवृष्टि, शाकादि प्रसाद दान द्वारा धरणी के भरण पोषण आदि की कथाएँ उल्लेखनीय हैं।[2] वैष्णव पुराणों में शाकम्भरी देवी के तीनों रूपों में शताक्षि, शाकम्भरी और दुर्गा का विवेचन मिलता है। देश में शाकम्भरी के तीन साधना पीठ हैं। पहला सहारनपुर में दूसरा सीकर के पास एवं तीसरा सांभर में स्थित है। यों तो सांभर को शाकम्भरी का प्रसिद्ध साधना पीठ होने का गौरव प्राप्त है लेकिन इसमें स्थित प्रसिद्ध तीर्थस्थली देवदानी (देवयानी) के आधार पर भी इस नगर की परम्परा महाभारत काल तक चली जाती है।

जैन धर्म और जैन संस्कृति की दृष्टि में शाकम्भरी प्रारम्भ से ही महत्त्वपूर्ण नगर रहा। मारवाड़ प्रदेश का प्रवेश द्वार होने के कारण भी इस नगर का अत्यधिक महत्त्व रहा। देहली एवं आगरा से आने वाले जैनाचार्य शाकम्भरी में होकर ही

---

१. अहो धोलहर नग्र वन देहुरा धाम,
देवपुर सोभै जी सर्ग समान
पौणि छत्तीस लीला करै
अहो करै पूजा नित जपै अरहंत।

२. स्वादूनि फलमूलानि भक्षणार्थं ददौ शिवा।
शाकम्भरीति नामापि तद्दिनात् समभून्नृप ।।देवी भागवती ७।२८
आतिथ्यं च कृतं तेषां, शाकेन किल भारत।
ततः शाकम्भरीत्येव नामा यस्याः प्रतिष्ठितम्। महाभारत वनपर्व ८४

मारवाड़ में विहार करते थे। अजमेर, चित्तौड़, चाकसू, नागौर एवं आमेर में होने वाले भट्टारकों ने सांभर को अपने विहार से खूब पावन किया था। महाकवि वीर आशाधर, धनपाल एवं महेश्वरसूरि ने अपनी कृतियों में शाकम्भरी का बड़ी श्रद्धा के साथ उल्लेख किया है। हिन्दी के प्रसिद्ध जैन कवि ब्रह्म रायमल्ल ने संवत् 1625 में ज्येष्ठ जिनवर कथा एवं जिन लाडूगीत की रचना सांभर में ही की थी। दोनों ही लघु रचनाएं हैं। नरायना से जो प्राचीन प्रतिमाएं उपलब्ध हुई है ये इस प्रदेश एवं उसकी राजधानी सांभर में जैन संस्कृति की विशालता पर प्रकाश डालती हैं। संवत् 1524 में यहीं जिनचन्द्राचार्य कृत सिद्धान्तसार संग्रह की प्रतिलिपि की गई।[1] संवत् 1750 में यहीं भट्टारक रत्नकीर्ति सांभर पधारे और श्राविका गोगलदे ने सूक्तमुक्तावली टीका की पांडुलिपि लिखवा कर उन्हें भेंट की थी।[2] संवत् 1829 में अजमेर के भट्टारक विजयकीति के अम्नाय के हरिनारायण ने पुराणसार की प्रति करवा कर प० माणकचन्द को भेंट में दी थी। 19 वीं शताब्दी में यहीं श्री रामलाल पहाड़्या हुए जो अपने समय के अच्छे लिपिकार थे।[3]

वर्तमान में नगर में 4 दिगम्बर जैन मन्दिर हैं जिनमें विशाल एवं प्राचीन जिन प्रतिमाएं विराजमान है। नगर के धान मण्डी के मन्दिर को जो प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह है वह यहां के निवासियों की साहित्यिक रुचि की ओर संकेत करने वाला है। नगर में इस युग मे भी जैनों की अच्छी बस्ती है और वे अपने आचार व्यवहार तथा शिक्षा आदि की दृष्टि से प्रदेश में प्रमुख माने जाते हैं।

सांगानेर

राजस्थान की राजधानी जयपुर से १२ किलोमीटर पर दक्षिण की ओर स्थित सांगानेर प्रदेश के प्राचीन नगरों में प्रमुख नगर माना जाता है। प्राचीन ग्रन्थों में इस नगर का नाम संग्रामपुर भी मिलता है। १० वीं शताब्दी के पूर्व में ही इस नगर के कभी अपने विकास की चरम सीमा पर पहुंच कर प्रसन्नता के प्रसून बरसाये तो कभी पतन की ओर दृष्टि डाल कर उसे आंसू भी बहाने पड़े। १२ वीं शताब्दी तक यह नगर अपने पूर्ण वैभव पर था। वहीं विशाल मन्दिर थे। धवल एवं कलापूर्ण प्रासाद थे। व्यापार एवं उद्योग था। इसके साथ ही वहां थे—सभ्य एवं

१. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची, पंचम भाग, पृ० ८३।
२. वही, पृ० ७०६।
३. वही, पृ० २६०।

सुसंस्कृत नागरिक। सांगानेर (संग्रामपुर) के समीप ही चम्पावती (चाकसू) तक्षकगढ़ (टोडारायसिंह) एवं आम्रगढ़ (आमेर) के राज्य थे जिन्हें उसकी समृद्धि एवं वैभव पर ईर्ष्या थी। कालान्तर में नगर के भाग्य ने पलटा खाया और धीरे-धीरे वह वीरान नगर-सा बन गया। जिसमें संघी जी का जैन मन्दिर एवं अन्य घरों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रहा। मन्दिर के उत्तुंग शिखर ही नगर के वैभव के एक मात्र प्रतीक रह गये।

१६ वीं शताब्दी में आमेर के राज सिंहासन पर राजा पृथ्वीसिंह सुशोभित थे। वे वीर राजपूत थे तथा अपने राज्य की सीमाएँ बढ़ाने के तीव्र इच्छुक थे। उनके १२ राजकुमार थे जिन्हें पृथ्वीसिंह ने आमेर में ही एक-एक कोटड़ी (किले के रूप में) बनाने की स्वीकृति दे दी। इन्हीं १२ राजकुमारों में से एक राजकुमार ने सांगा जो वीरता एवं सूझ वाले थे। महाराजा पृथ्वीसिंह के पश्चात् महाराजा रतनसिंह आमेर के शासक बने। रतनसिंह की और राजकुमार सांगा की अधिक दिन तक नहीं बन सकी। राजकुमार सांगा बीकानेर के शासक जयसिंह के पास चले गये। कुछ ही समय में उसने वहाँ सेना एकत्रित की और शस्त्रों से पूर्ण सुसज्जित होकर आमेर की ओर चल दिया। मार्ग में मोजमाबाद के मैदान में ही दोनों सेनाओं में जमकर लड़ाई हुई और उस युद्ध में विजयश्री सांगा के हाथ लगी। राजकुमार सांगा आमेर की ओर चल पड़े। मार्ग में उसे एक उजड़ी हुई बस्ती दिखलाई दी। सांगा जैन मन्दिर की कला एवं उसकी भव्यता को देखकर प्रसन्न हो गया। मन्दिर में विराजमान पार्श्वनाथ की प्रतिमा के दर्शन किये और उजड़ी हुई बस्ती को पुन: बसाने का संकल्प किया। यह १६ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण की घटना है। बस्ती का नाम सांगा के नाम से संग्रामपुर के स्थान पर सांगानेर प्रसिद्ध हो गया। कुछ ही वर्षों में वह पुन: अच्छा नगर बन गया।

सन् 1561 में जब मुगल बादशाह अकबर अजमेर के ख्वाजा की दरगाह में अपनी भक्ति प्रदर्शित करने गये तो आमेर के राजा भारमल्ल ने उनका स्वागत सांगानेर में ही किया। महाराजा भगवन्तदास के शासन मे हिन्दी के प्रसिद्ध कवि ब्रह्म रायमल्ल हुए जिन्होंने सांगानेर में ही सन् 1576 में भविष्यदत्त चौपई की रचना समाप्त की। सन् 1582 में जैनाचार्य हीरविजय सूरि सम्राट अकबर के निमन्त्रण पर उनके दरबार में गये थे तो वे सांगानेर होकर ही देहली गये थे। सांगानेर निवासियों ने उनका हार्दिक स्वागत किया था। इसके पश्चात् यह नगर 16 वीं शताब्दि से 19 वीं शताब्दि तक विद्वानों का उल्लेखनीय केन्द्र रहा

सांगानेर का उल्लेख ब्रह्म रायमल्ल ने तो किया ही है इस नगर में खुशालचन्द काला (17 वीं शताब्दि), पुण्यकीर्ति (संवत् 1660), जोधराजगोदीका (16 वीं-17 वीं शताब्दि) हेमराज ।। (17 वीं शताब्दि) तथा किशनसिंह जैसे विद्वान् हुए। जयपुर बसने के 50 वर्ष बाद तक यह नगर जैन साहित्यिकों के लिए विशेष आकर्षण का केन्द्र रहा। ब्रह्म रायमल्ल ने सांगानेर के बारे में जो वर्णन किया है उससे पता चलता है कि उस समय यह नगर धन-धान्यपूर्ण था तथा चारों ओर पूर्ण सुख शान्ति थी। श्रावकों की यहाँ बस्ती थी वे सभी धन सम्पत्ति युक्त थे। सबसे अच्छी बात यह थी कि उनमें आपस में पूर्ण मतैक्य था। नगर में जो जैन मन्दिर थे उनके उन्नत शिखर आकाश को छूते थे। बाजार में जवाहरात का व्यापार खूब होता था। सांगानेर ढूढाहड देश में विशेष शोभा युक्त था। शहर के पास ही नदी बहती थी और चारों ओर पूर्ण सुख-शान्ति व्याप्त थी।

विद्वानों के केन्द्र के साथ ही सांगानेर भट्टारकों का केन्द्र भी था। आमेर गद्दी होने के पश्चात् भी वे बराबर सांगानेर आया करते थे। अभी तक जितनी भी प्रशस्तियाँ मिली है उनमें सभी में भट्टारकों का अत्यधिक श्रद्धा के साथ नामोल्लेख किया गया है। लेकिन भट्टारकों का विशेष विहार भट्टारक चन्द्रकीति (संवत् 1622-62 तक) से बढ़ा और भट्टारक देवेन्द्र कीर्ति, भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति, भट्टारक जगत्कीर्ति, भट्टारक महेन्द्रकीर्ति, भट्टारक सुखेन्द्रकीर्ति आदि का विशेष आवागमन रहा। तेरहपन्थ के उदय के समय भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति वहीं सांगानेर में थे।[1] खुशालचन्द काला लक्ष्मीदास के शिष्य थे जो स्वयं भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के प्रमुख शिष्य थे।

देस ढूंढाहड सोभा घणी, पूजै तहा आलि मण तणी।
निर्मल तलै नदी बहु फिरै, सुख सै बसे बहु सांगानेरि ।।
चहुदिशि बण्या भला बाजार, भरे पटोला मोती हार।
भवन उत्तुंग जिनेश्वर तणा, सोभै चंदवा तोरणा घणा।
राजा राजै भगवन्तदास, राजेश्वर सेवहि बहु तास।
परजा लोग सुखी सब बसै, दुखी दलिद्री पुरवै आस।
श्रावक लोग बसै धनवन्त, पूजा करहि जपहि अरिहन्त।
उपरा ऊपरी वैर न काम, जिहि अहिमिन्द सुर्ग सुखनाम ।।

1. भट्टारक आंवेरिके नरेन्द्रकीरति नाम।
यह कुपन्थ तिनके समै नयो चल्यो अघ धाम ।।

भट्टारकों एवं विद्वानों का केन्द्र होने के साथ ही यहाँ प्राचीन साहित्य का भारी संग्रह था। बड़े-बड़े शास्त्र भण्डार थे। तथा उनमें प्राचीन ग्रन्थों की प्रतिलिपि करने के पूर्ण साधन थे। जयपुर के तेरहपन्थी मन्दिर (बड़ा), ठोलियों का मन्दिर, बधीचन्द जी का मन्दिर एवं गोधों के मन्दिर में जो शास्त्र भण्डार हैं वे सब पहिले सांगानेर के विभिन्न शास्त्र भण्डारों में थे। इसके अतिरिक्त यह नगर भट्टारकों का भी केन्द्र था। दिगम्बर समाज के तेरहपन्थ का सबसे अधिक पोषण यहीं हुआ तथा इसके मुख्य नेता अमरा भौसा ने जो हिन्दी के कवि जोधराज गोदीका के पिता थे। बख्तराम साह ने अपने ग्रन्थ मिथ्यात्व खण्डन पुस्तक में तेरहपन्थ एवं अमरचन्द के बारे में विस्तृत जानकारी दी है। जिसके अनुसार अपना भौसा को धन का अत्यधिक गुमान था तथा वह जिनवाणी का अविनय करता था इसलिए उसको वहाँ के श्रावकों ने जिन मन्दिर से निकाल दिया इसके पश्चात् उसने तेरहपंथ का प्रचार किया और अपना एक नया मन्दिर बनवा लिया।[२]

---

2. जैपुर निकटि बसै एक ओर, सांगानेरि आदि तैं ठोर।
सबै सुखी ता नगरी माहि, तिन में श्रावक सुबस बसाहि।
बड़े-बड़े चैत्यालय जहां, ब्रह्मचार इक बसैं तहां।
अमरचन्द ही ताको नाम, सोभित सकल गुननि का धाम।
ताके ढिगी मिली श्रावक पन्च, कथा सुनत तजि कैं परपन्च।
तिनि मैं अमरा भौसा जाति, गोदीका यह व्योंक कहाति।
धनको गरब अधिक तिन धरयौ, जिनवाणी को अविनयकरयो।
तब बालो श्रावकनि विचारि, जिन मन्दिर तैं दयो निकारि।
जब उन कीन्हों क्रोध अनंत, कही चले हो नूतन पन्थ।
तब वैं अध्यातमी कितेक मिलै, द्वादश सबै येकसे भिले।
बनवो कछुयक लालच देवे, अपने मत में आने छे छे।
नयो देहुरो ठान्यो ओर, पूजा पाठ रचे बर जोर।
सतरहै मेद निहोतरै साल, मत आधो असै कध जाल।
लोगनि मिलि कै मतो उपायो, तेरहपन्थ नाम ठहरायो।

उस समय सांगानेर के जैन समाज की बहुत ख्याति बढ़ गयी थी तथा धार्मिक एवं सामाजिक मामलों को निबटाने की दृष्टि से भी वहां के प्रमुख श्रावकों के पास आते और उनसे मार्ग दर्शन चाहा जाता। कविवर जोधराज गोदीका के कारण सांगानेर को और भी प्रसिद्धि एवं लोकप्रियता प्राप्त हुई। उसने लिखा है कि हजारों नगरों में सांगानेर प्रमुख नगर था।[1]

सांगानेर साहित्यिक केन्द्र के अतिरिक्त व्यापारिक केन्द्र था। जयपुर बसने के पूर्व इस नगर का बहुत महत्त्व था। बाहर के विद्वान् एवं व्यापारी यहाँ आकर रहने लगते थे। हिन्दी के विद्वान् किशनसिंह (17–18 वीं शताब्दि) व्यापार के लिए ही रामपुरा छोड़कर सांगानेर आकर रहने लगे थे। इसी तरह ब्रह्म रायमल्ल (16 वीं शताब्दि) ने भी यहाँ काफी समय तक रहे थे। हेमराज द्वितीय सांगानेर के थे लेकिन फिर कामा जाकर रहने लगे थे।[2]

सांगानेर में बड़ी भारी संख्या में ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ की गई जिससे यहाँ के समाज की साहित्यिक प्रियता का पता लगता है। संवत् १६०० में सांगा के शासन में भट्टारक वर्धमान देव कृत वरांग चरित्र की प्रतिलिपि की गयी थी। उसमें सांगा को 'राव' की उपाधि से सम्बोधित किया है।[1] सांगानेर के पुनर्स्थापन के पश्चात् संवतोल्लेख वाली यह प्रथम पाण्डुलिपि है। इसी ग्रन्थ की पुनः संवत् १६३१ में प्रतिलिपि की गयी थी। उस समय नगर पर महाराजाधिराज भगवन्तसिंह का राज था।[2] इसके पश्चात् आदिनाथ चैत्यालय में संस्कृत की प्रसिद्ध पुराण कृति हरिवंशपुराण की प्रतिलिपि की गयी। उस समय महाराजा मानसिंह का शासन था। संवत् १७१२ में आर्यिका चन्द्रश्री ने दिगम्बर जैन मन्दिर ठोलियों में चातुर्मास किया। उनकी शिष्या नाम्ही ने उस समय अष्टान्हिका व्रत रखा और उसके निमित्त

---

१. सांगानेरि सुथान में, देश ढूंढाहड़ि सार।
   ता सम नहि को और पुर, देखे सहर हजार ॥

२. उपनौ सांगानेरि को, अब कामागढ वास।
   यहां हेम दोहा रचे, स्वपर बुद्धि परकास ॥

१. ग्रन्थ सूची प्रथम भाग-पृष्ठ संख्या ३८४।

२. ग्रन्थ सूची तृतीय भाग-पृष्ठ संख्या ७८।

धर्म परीक्षा की प्रति करवा कर मन्दिर में विराजमान की।[3] १८ वीं एवं १६ वीं शताब्दी में यहां ग्रन्थों की प्रतिलिपि करने का कार्य बराबर चलता रहा। जयपुर के ग्रन्थ भण्डारों से पचास से भी अधिक ऐसी पाण्डुलिपियां होंगी जिनका लेखन कार्य इसी नगर में हुआ था। प्रतिलिपि करने वाले पण्डितों में पं० चोखचन्द, पं० रायाई-राम गोधा एवं उनके शिष्य नानगराम का नाम उल्लेखनीय है।

सांगानेर जैन एवं वैष्णव मन्दिरों की दृष्टि से भी उल्लेखनीय नगर है। यहां का संघी जी का जैन मन्दिर राजस्थान के प्राचीन एवं कलापूर्ण मन्दिरों में से एक मन्दिर है। इस मन्दिर का निर्माण १० वीं शताब्दि में हुआ था। मन्दिर के चौक में जो वेदी है उसकी बांदरवाल में संवत् १००१ का एक लेख अंकित है।[4] जिसके अनुसार मन्दिर का निर्माण संवत् १००१ के पूर्व ही होना चाहिये।

इस मन्दिर की कला की तुलना आबू के दिलवाड़ा के जैन मन्दिर से की जा सकती है। जिसका निर्माण इसके बाद में हुआ था। मन्दिर का द्वार अत्यधिक कला-पूर्ण है और चौक में दोनों ओर स्तम्भों पर किन्नर-किन्नरियां विविध वाद्य यन्त्रों के साथ नृत्य करती हुई प्रदर्शित की गयी हैं। उनके हाथ में फूलों की माला है तथा वे चंवर करते हुए दिखलाये गये है। दूसरे चौक में जो वेदी है उसके तोरणद्वार एवं बांदरवाल अत्यधिक कला पूर्ण है और ऐसा लगता है जैसे कलाकार ने अपनी सम्पूर्ण कला उन्हीं में उडेल दी है। कलाकार के भाव एकदम स्पष्ट है और जिन्हें देखते ही दर्शक भाव विभोर हो जाता है। इसी चौक के दक्षिण की ओर गर्भ-गृह मे संवत् ११८६ की श्वेत पाषाण की भगवान पार्श्वनाथ की बहुत ही मनोज्ञ प्रतिमा है जिसके दर्शन मात्र से ही दर्शक के हृदय में अपूर्व श्रद्धा उत्पन्न होती है। मन्दिर के द्वितीय चौक के द्वार के उत्तर की ओर 'ढोलामारू' का चित्र अंकित है। जिससे पता चलता है कि ११ वीं शताब्दि में भी ढोला मारु अत्यधिक लोकप्रिय था। मन्दिर के तीन शिखर सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र के प्रतीक है।

जैन मन्दिर के अतिरिक्त यहां का सांगा बाबा का मन्दिर भी अत्यधिक लोकप्रिय एवं इतिहास प्रसिद्ध मन्दिर है। जहां सांगा बाबा के चित्र की पूजा की जाती है। यहां एक सांगेश्वर महादेव का मन्दिर है जिसका निर्माण राजकुमार सांगा

३. ग्रन्थ सूची पंचम भाग–पृष्ठ संख्या ११६।

४. संवत् १००१ लिखित पण्डित तेजा शिष्य आचार्य पूर्णचन्द्र।

ने कराया। एक जनश्रुति के अनुसार राजा मानसिंह की कहानी जुड़ी हुई है तभी से "साँगानेर का साँगा बाबा लाये राजा मान" के नाम से दोहा भी लोकप्रिय बन गया।

साँगानेर आज भी हाथ से बने कागज एवं विशिष्ट कपड़े की छपाई के लिये प्रसिद्ध है। नगर का तेजी से विकास हो रहा है और इसकी आज जनसंख्या १६००० तक पहुँच गयी है।

तक्षकगढ़ (टोडारायसिंह)

टोडारायसिंह ढूंढाड़ प्रदेश के प्राचीन नगरों में गिना जाता है। शिलालेखों, ग्रन्थ प्रशस्तियों एवं मूर्तिलेखों में इस नगर के टोडारायस्तन, तोडागढ़, तक्षकगढ़, तक्षकदुर्ग आदि नाम मिलते हैं। वर्तमान में यह टोंक जिले में अवस्थित है तथा जयपुर से दक्षिण की ओर ६० मील है। नगर के चारों ओर परकोटा है तथा परकोटे में कितने ही खण्डहर भवन हैं जिनसे पता चलता है कि कभी यह नगर समृद्धशाली एवं राज्य की राजधानी रहा था। स्वयं तक्षकगढ़ नाम ही इस बात का द्योतक है कि यह नगर नाग जाति के शासकों का नगर था। मथुरा एवं पद्मावती में नाग जाति का दूसरी तीसरी शताब्दी में शासन था इसलिये यह नगर भी उसी समय बसाया गया होगा। ७वीं शताब्दी में टोडारायसिंह चाटसू के गुहिल वंशीय शासकों द्वारा शासित था। १२ वीं शताब्दी में यह नगर अजमेर के चौहानों के अधीन आ गया। इसके पश्चात् टोडारायसिंह विभिन्न शासकों के अधीन चलता रहा इसमें देहली, आगरा एवं जयपुर के नाम उल्लेखनीय हैं। सोलंकियों के शासन में यह नगर विकास की ओर बढ़ने लगा।

अकबर ने सोलंकियों से टोडारायसिंह को जीत लिया और आमेर के राजा भारमल के छोटे भाई जगन्नाथ को यहाँ का शासन भार सम्हला दिया। जगन्नाथ राय के शासनकाल में यहाँ बावड़ियों का निर्माण हुआ। स्वयं महाराजा ने भी अपने नाम की बावड़ी बनवायी। इसलिये टोडारायसिंह बावड़ी, दावड़ी, गट्टी और पट्टी के लिये प्रदेश भर में प्रसिद्ध हो गया।

टोडारायसिंह जैन साहित्य एवं संस्कृति की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण नगर माना जाता रहा। राजस्थान के जैन ग्रन्थ भण्डारों में सैंकड़ों ऐसी पाण्डुलिपियाँ

---

१. प्रशस्ति संग्रह—डा० कासलीवाल—पृष्ठ संख्या ११३।

हैं जिनकी प्रतिलिपि इसी नगर में हुई थी और उनके आधार पर इसे जैन साहित्य एवं संस्कृति का केन्द्र माना जा सकता है। सबसे अधिक प्रतिलिपियाँ १५ वीं शताब्दी से १८ वीं शताब्दी तक की मिलती है। संवत् १४६७ में यहाँ प्रवचनसार की प्रति की गयी थी। संवत् १६१२ में राव श्रीरामचन्द्र के शासन काल में पुष्पदन्त कृत पार्श्वकुमार चरिउ की प्रतिलिपि की गयी थी, इसी तरह संवत् १६२४ में जब यहाँ राव जगन्नाथ का शासन था, आदिपुराण (पुष्पदन्त कृत) की पाण्डुलिपि तैयार की गयी थी।[1] संवत् १६३६ में हिन्दी के प्रसिद्ध कवि ब्रह्म रायमल का आगमन हुआ और उन्होंने अपनी आध्यात्मिक कृति परमहंस चौपई की रचना समाप्त की।

१८ वीं शताब्दी में यहां संस्कृति के दो उच्चकोटि के विद्वान् हुये। इनमें प्रथम विद्वान् पेमराज श्रेष्ठी के पुत्र वादिराज थे जिन्होंने इसी नगर में संवत् १७२९ में वाग्भट्टालंकारावचूरि--कवि चन्द्रिका की रचना की थी।[3] कवि वहाँ के राजा राजसिंह के मन्त्री थे जो भीमसिंह के पुत्र थे। वादिराज के ही भाई जगन्नाथ थे। ये भी संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। जगन्नाथ भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति के प्रिय शिष्य थे और उनके समय में टोडारायसिंह में संस्कृत ग्रन्थों का अच्छा पठन पाठन था।

यहाँ का प्रसिद्ध आदिनाथ दि. जैन मन्दिर संवत् १५९५ में मंडलाचार्य धर्मचन्द्र के उपदेश से खण्डेलवाल जाति के श्रावकों ने निर्माण कराया था।[4] उस समय नगर पर महाराजाधिराज सूर्यसेन के पुत्र सौदीसेन तथा उनके पुत्र पृथ्वीराज पूरणमल का शासन था। इसी मन्दिर में आदिनाथ की जो मूलनायक प्रतिमा है उसकी प्रतिष्ठा संवत् १५१६ में हुई थी।[5] इस मन्दिर में संवत् ११३७ की प्राचीनतम

---

१. वही, पृष्ठ ८६

२. सोलासै छत्तीस बखान, ज्येष्ठ मावली तेरस जान।
सोमैवार सनीसरवार, ग्रह नक्षत्र योग शुभसार ।। ६४४ ।।
देस भावो तिहि नागरचाल, तक्षिकगढ़ अति बन्यौ विसाल।
सोभै वाडी बाग सुचंग, कूप बावड़ी निरमल अंग ।। ६४५ ।।

३. श्रीराजसिंह नृपति जैयसिंह एवं श्रीतक्षकाख्य नगरी अणहिल्लतुल्या।
श्री वादिराज विबुधो ऽपर वादिराज, श्री सूत्रवृत्तिरिह नंदतु चार्कचन्द्रः ।।

४. आदिनाथ के मन्दिर में वेदी के पीछे की अंकित शिलालेख।

५. आदिनाथ के मन्दिर में तिवारे में दायी ओर वेदी का लेख।

प्रतिमा है। यहां पार्श्वनाथ की दो पाँच फीट ऊँची प्रतिमाएँ हैं जो अत्यधिक मनोज्ञ हैं। इनमें से एक मूर्ति मन्दिर की मरम्मत करते समय प्राप्त हुई थी।

आदिनाथ के समान ही नेमिनाथ का मन्दिर भी विशाल एवं प्राचीन है। इसमें नेमिनाथ स्वामी की मूलनायक प्रतिमा है जो अत्यधिक मनोहर एवं मनोज्ञ है। ग्राम में उत्तर-पश्चिम की ओर छतरियाँ हैं वहाँ भट्टारकों की निषेधिकाएं हैं। भट्टारक प्रभाचन्द्र की निषेधिका संवत् १५८६ में स्थापित की गयी थी। दूसरी निषेधिका संवत् १६४४ में स्थापित की गयी थी। इन निषेधिकाओं से ज्ञात होता है कि टोडारायसिंह कभी भट्टारकों की गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र रहा था।

यहीं पहाड़ पर एक नशिया है जो कभी जैन मन्दिर था तथा आजकल सार्वजनिक स्थान बना हुआ है। मन्दिर के द्वार पर संवत् १८८० का एक लेख आज भी उपलब्ध है।

सवाई माधोपुर

रणथम्भौर दुर्ग की छत्रछाया में बसा हुआ सवाई माधोपुर महाराजा सवाई माधोसिंह (१७००-६७) द्वारा संवत् १८१६ (१७६२) में बसाया हुआ प्राचीन नगर है। आजकल यह नगर जिला मुख्यालय है। चारों ओर घने जंगल एवं पर्वतमालाओं से घिरा हुआ सवाई माधोपुर की प्राकृतिक छटा देखते ही बनती है। नगर के पास ही घने जंगल में शेरगढ़ है जो पहले अच्छी बस्ती थी। वहाँ का जैन मन्दिर अपने प्राचीन वैभव की याद दिला रहे हैं।

सवाई माधोपुर जैन मन्दिरों एवं शास्त्र भण्डारों की दृष्टि से कभी समृद्ध नगर रहा था। यहाँ के मन्दिरों में प्राचीन मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित हैं मूर्तियाँ भी विशाल एवं कलापूर्ण हैं जिससे पता चलता है कि कभी यह नगर जैन धर्म एवं संस्कृति का बड़ा केन्द्र था। संवत् १८२६ में सम्पन्न पंचकल्याणक प्रतिष्ठा अपने ढंग की महत्वपूर्ण प्रतिष्ठा थी तथा जिसमें हजारों की संख्या में जैन प्रतिमायें सुदूर प्रान्तों से लायी जाकर प्रतिष्ठापित की गयी थी। इसके प्रतिष्ठापक थे दीवान संघी नन्दलाल प्रतिष्ठाकारक भट्टारक सुरेन्द्र कीर्ति थे। उस समय यहाँ पर जयपुर के महाराजा सवाई पृथ्वीसिंह जी का शासन था।

वर्तमान में यहाँ रणथम्भौर, शेरगढ़ तथा चमत्कार जी के मन्दिर के अतिरिक्त ६ मन्दिर एवं चैत्यालय है।

दिगम्बर जैन मन्दिर दीवान जी का विशाल मन्दिर है। मन्दिर तीन शिखरों एवं चार कोनों में चार छत्रियों सहित है। मन्दिर में एक भौंहरा है जिसमें मूर्तियाँ विराजमान हैं। यहाँ हस्तलिखित ग्रन्थों का भी अच्छा संग्रह है। जिसमें करीब 300 पांडुलिपियाँ होंगी।

नगर का दूसरा प्रसिद्ध मन्दिर सांवला जी का है। सांवला बाबा की मूर्ति मनोज्ञ एवं चमत्कारिक है। इसीलिए जब जयपुर राज्य में वैष्णव जैन उपद्रव हुये उस समय इस मन्दिर को लूटने का प्रयास किया गया था लेकिन मूर्ति की चमत्कार से उपद्रवी कुछ भी नहीं कर सके। इस मन्दिर में 13 वीं–14 वीं शताब्दी तक की मूर्तियां हैं।

पंचायती दिगम्बर जैन मन्दिर यहाँ का नवीन मन्दिर है। साम्प्रदायिक उपद्रव में पंचायती मन्दिर को भी लूटा गया तथा नष्ट किया गया। उसके स्थान पर इस मन्दिर का निर्माण कराया गया। यह पंचायती बड़ा मन्दिर पार्श्वनाथ जी का है इसमें हस्तलिखित ग्रन्थों का अच्छा संग्रह है। मुसावड़ियों के मन्दिर का निर्माण साम्प्रदायिक उपद्रव के बाद हुआ। यह नगर सेठ का मन्दिर है।

सवाई माधोपुर में जैन कवि चम्पाराम हुए जिन्होंने संवत् 1864 में भद्रबाहु चरित भाषा टीका लिखी। चम्पाराम हीरालाल भांवसा के पुत्र थे।[1] संवत् 1825 में यहाँ द्रव्य संग्रह की प्रतिलिपि की गयी। इसी तरह पचासों और भी प्रतियाँ मिलती है जिनकी यहाँ प्रतिलिपि हुई थी।

देहली

गत सैकड़ों वर्षों से देहली को भारत का प्रमुख नगर रहने का सौभाग्य प्राप्त है। इसलिये यहाँ के नागरिकों ने यदि अच्छे दिन देखें हैं तो उन्हें अनेक बार बुरे दिन भी देखने पड़े हैं। तैमूरलंग, नादिरशाह जैसे नृशंस आक्रमणकारियों ने यहाँ के नागरिकों पर जो अत्याचार किये थे वह मुस्लिम युग में नगर की संस्कृति एवं सभ्यता को मिटाने के जो बर्बर कार्य किये थे उन्हें याद करते ही पाषाण हृदय भी द्रवित हो जाता है। लेकिन अनेक अत्याचारों, लूट, खसोट एवं विनाश कार्य होने पर

1. ग्रन्थ सूची भाग–3, पृष्ठ 212

भी यहां के नागरिकों ने कभी हिम्मत नहीं हारी और अपने साहस, सूझबूझ से संस्कृति एवं धार्मिक विकास में लगे रहे ।

देहली में जैन धर्म का प्रारम्भ से ही वर्चस्व रहा । जैनों की संख्या, साहित्य-निर्माण एवं धार्मिक तथा सांस्कृतिक समारोहों की दृष्टि से इसने देश का मार्गदर्शन किया है । राजपूत काल से भी अधिक सम्मान जैन श्रेष्ठियों का मुसलिम काल में रहा । अलाउद्दीन खिलजी के समय (१२९६-१३१६) में नगर सेठ पूर्णचन्द्र नामक श्रावक था । बादशाह की उस पर विशेष कृपा थी । सेठ पूर्णचन्द्र के आग्रह वश तत्कालीन दिगम्बर आचार्य माधवसेन देहली आये शास्त्रार्थ में दो ब्राह्मण विद्वानों को हराया । फिरोजशाह तुगलक के समय देहली में भट्टारक गादी की स्थापना की गई । इसके बाद से देहली भट्टारकों का प्रमुख केन्द्र-स्थान बन गया । राजस्थान के विभिन्न जैन-ग्रन्थ भण्डारों में १४वीं शताब्दी में देहली नगर में होने वाली पाण्डुलिपियों का संग्रह मिलता है । जयपुर, उदयपुर आदि नगरों के शास्त्र भण्डारों में १४ वीं एवं १५ वीं शताब्दी की जो पाण्डुलिपियां उपलब्ध होती हैं वे अधिकांश देहली में लिपि-बद्ध की गई थी । अपभ्रंश के भी कितने ही ग्रन्थ देहली में लिखित किये गये थे । ग्रंथों में ही हुई प्रशस्तियों के आधार पर देहली के जैनों में साहित्यिक प्रेम का पता लगता है । विबुध श्रीधर ने संवत् ११८९ को देहली में नट्टल साहू की प्रेरणा से पासणाह-चरिउ की रचना की थी । उस समय यहां पर तोमरवंशीय शासक अनंगपाल का शासन था ।

ब्रह्म रायमल्ल ने १६१३ में प्राचीन ग्रन्थों की प्रतिलिपि करके अपना साहित्यिक जीवन देहली में ही प्रारम्भ किया था । उस समय यहां भट्टारकों का चरमोत्कर्ष था । चारों ओर धार्मिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में उन्हीं का शासन चलता था । मुगल शासन में ही देहली में लाल मन्दिर का निर्माण हुआ जो जैनों के महान् प्रभाव का द्योतक है । ब्रिटिश युग में भी जैनधर्मावलम्बियों ने शासन एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में अपना प्रभाव रखा । आज भी देहली का जैन समाज साहित्यिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यधिक जागरूक माना जाता है ।

भविष्यदत्त चौपई

भविष्यदत्त चौपई महाकवि की प्रमुख कृति है। इसका रचना काल संवत् १६३३ कार्तिक सुदि १४ शनिवार तथा रचना स्थान सांगानेर है। प्रस्तुत पाठ कृति का प्रारम्भिक अंश है। जो तीन पाण्डुलिपियों के आधार पर तैयार किया गया है। इन पाण्डुलिपियों का परिचय निम्न प्रकार है—

क प्रति — पत्र संख्या ६६। आकार ६ × ७।। इञ्च।

लिपिकाल संवत् १७१६ पौष शुक्ला प्रतिपदा।

प्राप्ति स्थान—साहित्य शोध विभाग, दि० जैन अ० क्षेत्र, श्री महावीरजी, जयपुर।

विशेष— प्रस्तुत पाण्डुलिपि एक गुटके में संग्रहीत है जिसमें ब्रह्म रायमल्ल की दूसरी कृति हनुमंत कथा का भी संग्रह है। इसके अतिरिक्त सील रासो एवं दान-सील-तप-भावना की चौपई का संग्रह भी है लेकिन दोनों कृतियां ही अपूर्ण है। गुटका जीर्ण अवस्था में है।

ख प्रति — पत्र संख्या ६८। आकार ७ × ७ इञ्च।

लेखन काल — संवत् १६६० भादवा बुदि शुक्रवार।

प्राप्ति स्थान — साहित्य शोध विभाग, महावीर निकेतन, जयपुर।

विशेष — प्रस्तुत पाण्डुलिपि एक गुटके में संग्रहीत है। जिसमें प्रारम्भ के १७ पृष्ठ नहीं है। उसमें चौपई की पद्य संख्या अलग-अलग न देकर एक साथ दी गई है जिनकी संख्या ६१५ दी हुई है। इस पाण्डुलिपि में ६१५ वां पद्य निम्न प्रकार

दिया हुआ है जिसमें स्वयं महाकवि एवं साथ में उनके गुरु का स्मरण भी किया गया है—

मंगल श्री अरहंत जिणिंद, मंगल अनन्तकीति मुणिंद ।
मंगल पढइ करई अखाण, मंगल ब्रह्म रायमल सुजाण ।।११५।।

पाण्डुलिपि की लेखक प्रशस्ति भी बहुत महत्वपूर्ण है। जिससे पता चलता है कि यह गुटका आगरा में बादशाह शाहजहाँ की हवेली में लिखा गया था। उस हवेली में जौता पाटणी रहते थे। वहाँ चन्द्रप्रभु का मन्दिर था। उस मन्दिर में छीतर गोदी-का की पाण्डुलिपि थी जिसे देखकर प्रस्तुत पाण्डुलिपि तैयार की गयी थी। ग्रन्थ प्रशस्ति महत्वपूर्ण है जो निम्न प्रकार है —

संवत् १६९० वर्षे भादवा वद १ सुक्रवार। पोथी लिख्यते पोथी सा. जौता पाटणी दानुका की लिखी आगरा मध्ये पतिसाही श्री साहिजहां की हवेली श्री जलाखाँ कोरची की मध्ये वास जौता पाटणी। सुभं भवतु। श्री चन्द्रप्रभ के देहुरै। सा. छीतर गोदीका की पोथी देखि लिखी।

मनधरि कथा सुणै कोई, ताहि घरि सुख संपति सुत होई।
थोड़ी मति किया बखाण, भवसदंत पायो निर्वाण ।।१।।
प्रशांतमति गंभीरं, विश्व विद्या कुलग्रहं ।
भव्यौकसरणं जीयाद, श्रीमद् सर्वज्ञशासन ।।१।।

ग प्रति—पत्र संख्या ६६। आकार ११ × ४ इन्च।

लेखन काल—संवत् १७८४ जेठ बदि ७ सोमवार।

प्राप्ति स्थान—महावीर भवन, जयपुर।

प्रशस्ति—संवत् १७८४ का जेठ बदि ७ सोमवार। आंबेरि नगरे श्री मल्लिनाथ जिनालये। साहां का देहुरामध्ये। भट्टारक जी श्री श्री श्री देवेन्द्रकीत्ति जी का सिषि पांडे दयाराम लिखितं जाति सोनी नराणा का वासी पोथी लिखी।

प्रस्तुत पाण्डुलिपि में प्रारम्भ में मंगलाचरण एवं प्रारम्भिक में पद्यों की संख्या अलग-अलग दी गयी है। इसके पश्चात् पद्यों की संख्या एक साथ दी हुई है।

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

अथ भविष्यदत्त चौपई लिख्यते ॥

मंगलाचरण

स्वामी चंद्रप्रभ जिणनाथ । नमौं चरण धरि मस्तकि हाथ ॥
लंछिन अच्यो चंद्रमा तासु । काया उज्जल अधिक उजासु ॥१॥

चौबीस तीर्थङ्कर स्तवन

आदिनाथ बंदौ जिणदेव । सुर नर फण मिलि आए सेव ।
अजितनाथ जे बंदौ भाइ । दुःख दालिद्र रोग सहु जाइ ॥२॥

संभवनाथ नमौं गुणवंत । भए सिद्ध सुख लहैं अनंत ।
अभिनन्दण प्रणमौं बहु भाइ । रक्षा करी जीव छह काय ॥३॥

प्रणमु सुमति सुमति दातार । भवियण भव उतारण पार ।
बंदौ पद्मप्रभु जिणराइ । बंदत असुभ कर्म छै जाइ ॥४॥

हरित वर्ण जिणदेव सुपास । बंदत पुरवे भवियण आस ।
चंद्रप्रभ का प्रणमौं पाइ । ऊजल वर्ण सनिर्म्मल काय ॥५॥

प्रणमौं पहुपदंत जिननाथ । मुक्ति रमणिस्यौ कीन्हौ साथ ।
नमौं देव सीतल धरि ध्यान । मैंपराई की मोक्षिठमान ॥६॥

जिण श्रेयांस बंदौं विख्यात । स्वामी करी करम की घात ।
बासपुजि बंदौं जगिसार । उपजै बुद्धि होइ विस्तार ॥७॥

नमौ विमल जिन त्रिभुवन देव । जास पसाई विमल मति एव ।
प्रणमौ जिण चौवह अनंत । काटि कर्म पाल्यौ सिव पंथ ॥१०॥

वंदौ विधिस्यौ धर्म जिणिंद । करइ सेव नर इंद फुणिंद ।
सांति नमौ जिण मन वच काय । नाम लेत सहु पातिग जाई ॥११॥

कुंथनाथ जे वंदै कोइ । तिहिं के दुख दलिद्र न होइ ।
अरहनाथ वंदु. सुध भाइ । मन वच पूजि र सिव पद जाइ ॥१२॥

मल्लि नमौ ते तहि तप कीयो । कवरि कालि तहि संजम लीयो ।
मुनिसुव्रत वंदौ धरि धीर । सोभा सांवल वर्ण सरीर ॥१३॥

इकुइसमौ वंदौ नमिनाथ । मुक्ति रमणिस्यौ कीन्हौ साथ ।
नेमिनाथ वंदौ गिरिनारि । तजि काया पहुतौ सिवद्वार ॥१४॥

पारसनाथ करो वंदना । सह्या परिसा कमठ तणा ॥
वीरनाथ वंदो जगिसार । राख्यो धर्म्म तणं व्यौहार ॥१५॥

जिण चौबीस कह्या जिणदेव । हुवा अब छै होइसी एव ॥
तिसहु नमौ वचन मन काय । नाम लेत सहु पातिग जाइ ॥१४॥

विरहमाण तिर्थंकर वीस । मन वच काया नमौं जे सीस ।
हुवा जेता मुब केवली । ते सहु प्रणमौ आनंद रली ॥१५॥

बहु विधि प्रणमौ सारद माय । भूलौ आखर आणै ठाइ ॥
करौ इ प्रसाद वुधि जे लहौ । भवसवंत्त की सनमध कहौ ॥१६॥

मन वच काय नमौ गणधीर । चौदह सै त्रेपन मतिधीर ॥
दीप अढाई चारित धरै । ते सहु नमौ विधि विस्तरै ॥१७॥

देव सास्त्र गुरु वंदौ भाइ । बुधि होइ तन्ह तणै पसाइ ।
हौ मूरिख नवि जाणौ भेद । लहौ न अर्थ होइ बहु खेद ॥१८॥

देव सास्त्र गुरु कौ दे मान । तिहिं ते उपजै वुधि निधान ॥
देव सास्त्र गुरु हुं उ लहौ । व्रत पंचमि को फल कहौ ॥१९॥

वस्तबंध

प्रथम बंदा देव अरहंत । नाम लेत सहु पाप नासैं ।
दूजा प्रणामौ सारदा अंगि । पूर्व को अर्थ भावै गणधर ।।

मुनिवर वंदिया मन मैं बहु आनंद ।
व्रत पंचमी प्रणमौ कमलश्री को नन्द ।।२०।।

विषय प्रवेश

चौपई—जंबुदीप अति करै विकास । दीप असंख्य फिरया चहुंपास ।
चंद्र सूर्य द्वै द्वै सारी जाति । आवागमन करै दिनराति ।।१।।

मेर सुदर्शन जोजन लाख । तिहि गजदंत बण्या चहुंपासि ।
जिणवर भवण सासुता जहां । जिनका जन्म कल्याणक तहां ।।२।।

मेरु भाग सुभ दक्षिण बसैं । भरथ क्षेत्र तहां उत्तम बसैं ।।
चौथो काल अठै सुभ होइ । पुरिष सिलाका उपजै लोइ ।।३।।

पोदनपुर नगर वर्णन

तिहि मैं सुभ कुरु जंगल देस । गढ पोदनपुर बसै असेस ।।
तहा जिणवर कल्याणक होइ । पापी दुखी न दीसैं कोइ ।।४।।

मारण नाम न सुनजे जहां । खेलत सारि मारि जे तहां ।
हाथ पाई नवि छेदै कान्ह । सुभद्र खाय ते छेदै पान ।।५।।

बंधन नाइ फूल बंधेर । बंधन कोई किसहा मं देइ ।।
कामणि नैण काजल होइ । हियडै मनुक्ष न कालो होइ ।।६।।

सर्प पराधो छिद्र जु गहै । कोई किसका छिद्र न कहै ।
गुंगो कोइ न दीसैं सुनि । पर अपवाद रहै धरि मौनि ।।७।।

चोरी चोर न दीसै जहां । घडी नीर नै चोरी महां ।
डंड नासको किसही न लेइ । मन वच काइ मुनि डंड देइ ।।८।।

उत्तम कुरु जंगल को देस । भली वस्त सहु भरिउ असेस ।
वस्त मनोहर लहि जे धणी । पुजै तहां रली मन तणी ॥६॥

तहु मैं हस्तनागपुर थांन । सोभा जैसो सुर्ग विमान ।
बाग बावड़ी तहां सोभा घणी । वृक्ष जाति बहु जाई न गिणी ॥१०॥

मुनिवर नाय धरै तहां ध्यान । जाणैं सोनौं तिणौ समान ।
परिगहि संग तजै बाईस । करइ ध्यान अति महा जगीस ॥११॥

रिद्धिवंत मुनिवर अतिधणा । वृक्ष फलै सहु छहरिति तणा ॥
करैं घोर तप मन बच काय । उपजै केवल मुक्ति हो जाई ॥१२॥

खेती धान अठरा होई । दुभद्द काल न जाणौ कोई ॥
सोभै भली ताल पोखरी । दीसै निम्मल पाणी भरी ॥१३॥

माहि कमलणी करै विकास । जाणिक रवि कियो प्रगास ।
पंथि जण तस भूख पलाई । सीतल नीर वृक्ष फल खाई ॥१४॥

नग्र माहि जिण थानक घणा । माहै बिब भला जिण तणा ।
अठ विधि पुजा श्रावक करैं । गुर का बचन हीयडै धरै ॥१५॥

दान च्यार तिहु पात्रा देइ । पात्र कुपात्र परीक्षा लेइ ।
बिब प्रतिष्ठा जात्रा सार । खरचै द्रव्य आपणी अपार ॥१६॥

ऊंचा मंदर पौल पगार । सात भूमि उपरि विसतार ।
घरि घरि रली बधावा होइ । कानि पडि नवि सुणि जे कोइ ॥१७॥

राजा नाम राज करैं भूपाल । जैसो स्वर्ग इंद्र भोवाल ।
पालै प्रजा चालै न्याई । पुन्यवंत घणा पुर राइ ॥१८॥

चोर चबाड न राखे ठाम । गाइ सिंघ पीवैं इक ठाम ।
नेम धरम्म गरउ आचार । पुण्य पाप की करैं विचार ॥१९॥

राणी पुहपावती सुजाणि । गुण लावणि रूप की खानि ।
दुखी दलिद्र नै देवै दान । देव सास्त्र गुर राखै मांन ॥२०॥

बसै एक तहां धनिपति साहु । जैन धर्म्म उपरि बहु भाउ ।
पूजा दान करै मनलाई । आठै चौदसि अन्न न खाई ॥२१॥

पोसौ सामाइक शुभ करै । मत मिथ्यात नाम परिहरै ॥
सुभ प्राचार सीलस्यों रहै । पुण्य उदै सुभ भोगस्यो गहै ॥२२॥

दूजो सेठ धनेसुर वास । बहु लछमी तणे निवास ।
सेठिनी नाम तास धनश्री । गुण लावण्य रूप बहु भरी ॥२३॥

सेठ सेठिनी भोगै भोग । पुत्री भई कर्म संजोग ।
कमलश्री सुभ ताको नाम । बाणी सबै सामोद्रक ठाम ॥२४॥

रूप कला बेवेक चातुरी । सोभै स्वर्ग तणी प्रपछरी ।
जोवनवंत देखी तसु तात । पुत्री बहु बिचारै बात ॥२५॥

पुत्री थान देइ बहु जोइ । कुल सुभ वो (उ) बराबरि होइ ॥
घर घर जोडि देखि ब्योपारि । पुत्री पिता बिवाहै ताहि ॥२६॥

कमलश्री विवाह वर्णन

सेठि बात मन मैं चितवई । पुत्री धनपति जोगंव दई ।
मंडप बेदी रच्या बिसाल । तोरण बंध्या मोती माल ॥२७॥

दहुं पक्ष बहु मंगलचार । कामणि गावै गीत सुचार ।
वर कन्या कीन्हो सिंगार । चोवा चंदन बस्त्र अपार ॥२८॥

नाचै तिया करै बहु कोड । वर कन्या कै बांध्यो मोड ॥
बेदी मंडप विप्र आइयो । वर कन्या हथलेवो दीयो ॥२९॥

दुवै पक्ष नर दंदुः वाजि । भयो बिवाह अग्नि दे साखि ।
पुत्री वरनै दीन्हो मान । कंचन बस्त्र मान सनमान ॥३०॥

जानी सजन संतोषिया । वस्त्र कनक स्याहनै बहु दीया ॥
हाथ जोडि धनपतिस्यौं कही । कमलश्री सुभ दासी दई ॥३१॥

छोडिउ मान धनेसुर कह्यो । पुत्री दई [1] तिहि हारियो ।
यसो लोक तणो ब्योहार । मोह जाल पडियो संसार ॥३२॥

---

१. जाइ ।

बागा नाद निसाण धाउ । कमलश्री धरि ल्यायो साहु ।
तिया पुरिष बहु भुंजै भोग । पहुली सुभ साता संजोग ॥२३॥

वस्तुबन्ध

कमलश्री सुख बहु करै, पूर्व पुण्य तस उदै आइयो ।
लखमीवंत गुणनिलो, सेठ धनपति कंत पाईयो ॥
जिहि का अखिर सिर ब्रह्मा, भयो विवाह संजोग ।
अवर कथा आगैं भई सै सहु कह्यो पयोग ॥२४॥

कमलश्री का गार्हस्थ जीवन

सुखस्यो सेट्ठ सेट्ठिनि बहु लाउ । दान पुण्य मनि अधिक उछाह ।
मुनि एकाचार्य आईयो । कमल श्री सो पडिगाहियो ॥१॥

पाई पखालि गंधोदिक लेई । ऊंचौ आसण बैसण देई ।
आठ द्रव्य तसु थाली भरी । मुनिवर चरण पुजा करी ॥२॥

मन वच काया करि वंदना । फासु अन्न दीयो तंखिणा ।
जैसी रिति तैसे आहार । जिहि आहारे मुनि तप विसतार ॥३॥

लेइ आहार दे अक्षै दान । सेट्ठनी सुख पायो असमान ।
दीयो सिंघासण मुनिवर जोग । हाथ जोडि पूछै तसु जोग ॥४॥

स्वामी बात एक सुणि कहो । बालिका तणो तस कब लहो ।
मन की सांसी भांनों बाप । जाइ हीया को सहु संताप ॥५॥

मुनिवर बात लही मन तणी । मुनि बोल्यो कमलश्री भणी ।
पुत्री मन रख्या करि धीर । थारै पुत्र होसी वरवीर ॥६॥

पुत्र तणा सुख सारा भोगसी । अंति काल संजम लेईसी ।
सुण्या वचन मन हरिख्यो भयो । तंखिण मुनिवर वन मैं गयो ॥७॥

कमलश्री मनि आनंद भयो । मुनिवर वचन गांठि बाधियो ॥
पाछम दिस जे उगे भाण । मुनिवर भूंठ न करे वखाणि ॥८॥

सेठु एक दिन सेवै तिया, उपनौ गर्भ धनेस्वर घिया।
उपनउ सुभ डोहलौ सुचंग, पुजा दान महोछा रंग ॥९॥

भविष्यदत्त का जन्म

गर्भ मास नव पूरे भयो, कमलश्री बालक आइयो।
पुत्र महोछा धनपति साहु, द्रवि द्रवै बहुत उछाहु ॥१०॥

महाभिषेक जिनेश्वर थान, दुखी दलिद्री जोगे दान।
सुणी बात आयो भूपाल, खरच्यौ द्रव्य देखी भूवाल ॥११॥

सजन लोग बधाई करी, गावै गीत तिया रसि भरी।
धनपति कै घरि जायो नंद, हस्तनागपुर बहु आनंद ॥१२॥

भावभगति पुजा मुनिराय, हाथ जोडि बूझै सुभाइ।
स्वामी बालक काहो नाम, पूजै महा मनोरथ काम ॥१३॥

बोल्यो मुनिवर कह्यौ विचारि, भविसदंत इहु नाम कुमार।
पुन्यवंत इहु होसी बाल, दुर्जन दुष्ट तणो सिरिसाल ॥१४॥

वंद्या मुनिवर घरि आइया, मात पिता नै बहु सुख भया।
अन्न पान रस पोसै बाल, दुंज चंद्र जिम बधै बिसाल ॥१५॥

बालक बरस मात को भयो, पंडित आगै पढणो दीयो।
कीया महोछा जिणवरि थानि, सजन जन बहु दीन्हा दान ॥१६॥

गुरु को विनौ अधिक बहु करै, मति सबुधि अधिक विसतरै।
घणा सास्त्र का जाण्या भेद, आश्रव बंध कर्म को छेद ॥१७॥

कमलश्री का परित्याग

एक दिवस कर्म को भाइ, उपनो क्रोध सेठु अकुलाइ।
कमलश्रीस्यों विनयै भाव, मेरा घर थे वेगिउ जाउ ॥१८॥

बार बार तुम सेती कहूं, तुमनै दीठा सुख न लहूं।
घणौं कहा करिजे अलाप, पूरबलौ को आयो पाप ॥१९॥

तुम नै देखौ जिम सर्पिणी , है निरलज्ज निकसि तरुणी ।
मेरी घर थे वेगी जाहु , उपजै हीये बहुत विसवाहु ।।२०।।

कठिण बचन सुणि स्वामी तणा , कमलश्री बोली तंक्षणा ।
कौण कुकर्म मैं कीयौ घणौ , जहि तम बहुत क्रोध उपनौ ।।२१।।

स्वामी मन मै देखौ जोइ , बिण अपराध न काढै कोइ ।
नाहक पसु न घालै घाव , तुम छो माणस कौ परिजाउ ।।२२।।

स्वामी जा को सुखि हो सुखी , थारै दुखि हुं गाढ़ी दुखी ।
माता पिता तुम बांधि बाहु , चित्त विचार करो हो साहु ।।२३।।

धनपति सेठ कहै सुणि नार , तुम सम तिया नहि संसार ।
कोइ ग्रह मुक करो विकार , तहि थे थारो करै निसार ।।२४।।

कमलश्री ले सास उसास , कंत क्रोध छाडिउ परवास ।
नैणा नीर करै असमान , चाली मातपिता कै थानि ।।२५।।

दोहड़ा— पाप पुन्य बंधन करै, तिसा उदी पै आइ ।
जे तरु माली सींचही , तिसका सो फल खाइ ।।२६।।

जीवडौ बंधं सुभ असुभ, करै हरिष विसमाद ।
कुसी आलौ कीट ज्यौं, पडै मोह प्रमाद ।।२७।।

कर्म्मह बंध्यो जीवडौ, माड़ौ घणौ पसार ।
मन दोडावै आपणौ, पावै नही लगार ।।२८।।

आपण कर्म बुरा करै, अर परनै दे (वे) दोस ।
वावै तिसौ जिसो लुणै, हीया न कीजे सोस ।।२९।।

कमलश्री का माता-पिता के घर जाना

चोपई— कमल माता घरि गई , पौलि द्वारि ठाढी रही ।
देखि बिलखी मात तस तात हीयडा मध्य विचारो बात ।।३०।।

जीमण ब्याह नही कोइ काज , विण कोकी किम आइ आजि ।
कीयो कुकर्म ठाणि मति बुरी , तीहि थे सेठ तजी सुंदरी ।।३१।।

घर की सुंदरि प्राण आधार, तहि को पुत्र महा सुकमाल।
माता पिता विचारै जोई, विण अपराध न काढै कोई ॥३२॥

करै कुकरम सुता सुत कोइ, माता पिता नै बहु दुख होइ।
रूनी माता कै गलि लागि, हूं पिय काढी कर्म अभागि ॥३३॥

मै अपराध न कीयो कोइ, विण अपराध दियो दुख मोइ।
कोई कर्म उदै आइयो, ताहि थे क्रोध कंत नै भयो ॥३४॥

कहै माता कमलश्री सुणो, सुध चित्त राखो आपणो।
सासू कंत दुख दे घणो, सरणाइ घर माता तणो ॥३५॥

दुखि दलिद्री नै दिहु दान, भोजन करो रहो थिरथान।
सुंदरि मात पिता घरि वास, करै दुख अति सास उसास ॥३६॥

बहु सुत मंत्री सेठ को नाम, आयो सेठ धनेश्वर ठाम।
पंडित प्रवित्त विवेक सुजाण, कह्यौ ग्राविता सर्व वखाण ॥३७॥

कमलश्री तुम पुत्री जाणि, सजम सील रूप की खांनि।
नाहक सेठि निकालो दीयो, पूर्व असुभ उदै आइयो ॥३८॥

तुम मन माहि संक मति धरो, सुंदरि का मन कीयो बुरो।
हूं धनिपति यो समझाउ जाय, दिन दस पांच तुम्हारं थाय ॥३९॥

बात कहि मंत्री घरि गयो, मात पिता नै बहु सुख भयो।
पुत्री नै बहु दीन्हौं मान, कनक वस्त्र सुभ सेज्या थांन ॥४०॥

भविष्यदत्त का ननिहाल जाना

कंवरि विदा लीन्ही गुर तणी, भवसदंत आयो घर भणी।
दीठी पिता क्रूर बहु चित्त, क्रोध सरीर हु रात्ता नेत्र ॥४१॥

भवसदंत दिठि न पडि मात, पाडोसनिस्यों बुझी बात।
ब्योरी बात सर्व तहि भष्यो, जांणि कहीयो वज्र को हण्यो ॥४२॥

बात विचारि कवर चालियो, नाना कै घरि ठाडो भयो।
माता आगै हुवो खडो, जहां गाइ तहां वाछडो ॥४३॥

भेटी माता रूदन बहु करिउ , भवसदंत हीयो गहि भरिउ ।
मात तणा आंसु पुछेइ , सीतल वचन संबोधन देइ ।।४४।।

माता मेरी जाणौ बात , सुभ अर असुभ करम के साथि ।
कातर भूलि चित्त मति करै , पाप र पुन्य भोगया सरै ।।४५।।

वस्तुबन्ध

कंत क्रोध कीयो घणौ, कमलश्री बहु दुख पायो ।
हसि हसि कर्म जु बंधिया, पूर्व पाप तसु उदै आइयो ।।

दुख सुख मनि आवै घणौ, चित्त करै अभिमान ।
पुत्र सहत सारह सुंदरी, रहै पिता कै थानि ।।

धनदत्त सेठ

बसै नग्र वाण्यो धनदत्त , दया दान अति कोमल चित्त ।
मत मिथ्यात सर्व परिहरै , जैन धर्म को निहचो करै ।।४६।।

तिया मनोहर सील सुजाणि , गुण लावण्य रूप की खांनि ।
सकति सहति बहु विधि दे दान , देव सास्त्र गुरु राखै मान ।।४७।।

वणिक विणाणी भोगै भोग , पुत्री भई कर्म संजोग ।
पुन्यौ चंद्र बण्यौ मुख तास , नैणा सोभै कमल विकास ।।४८।।

सजन लोग देखि तस रूप , सुर कन्या थे अधिक अनूप ।
जिणवर थांन महोछा कीयो , तहि को नांव सरूपा दियो ।।४९।।

दूंज चंद्र जिम बधै कुमारि , देखि रूप तसु चित्त विचारि ।
वर व्यौहार सुपुत्री भई , निस वासरि सहु निद्रा गई ।।५०।।

मंत्री धनपति को आइयो , वणिवर धनदतस्यो बोलयो ।
पुत्री तणी करी जाचना , मान बडाई दीन्हा घणा ।।५१।।

स्वरूपा के साथ धनपति सेठ का विवाह

दुवै बराबरी कुल आचार , करो विवाहु न लावो वार ।
बात सुणी सहु मंत्री तणी , धनपति जोगि दई लक्षणी ।।५२।।

लेना लेर सु मंत्री गयो, धनदति वणिस्यौ विनवो।
ब्याहु तणा होई मंगलचार, कन्या वर नौ बनौ बहुत सिंगार ॥५३॥

मडप वेदी करें विकास, कनक कलस मेल्हा चहुंपासि।
वर कन्या नै भयो सनान, चोवा चदन फोकल पान ॥५४॥

भई नफीरी नाद निसाण, बंदी जन बहु करें बखाण।
धनपति ब्याहु पहुंतो जहां, कमीर सरूप थानक तहां ॥५५॥

चोरी मांभि विप्र श्रादयो, लगन महूरत सुभ साधियो।
कन्या वर का जोड़्या हाथ, मेल्हा पान सुपारी काथ ॥५६॥

भावारि चारि फिरायो सुभ साहु, अग्नि साखि दे भयो विवाहु।
धनदत्त देइ दाईजौ घणौ, हाथ छुडायो पुत्री तणौ ॥५७॥

भयो ब्याहु बहु मंगलचार, दान मान जोणार सुचार।
जानी सहु संतोषिया समान, वस्त्र पटंबर फोफल पान ॥५८॥

साथि सरूपा धनपति लेइ, आयो धरि दान बहु देइ।
सुख पायो बहु आनंद भयो, कमलश्री नें वीसरि गयो ॥५६॥

भोगवि भोग देव समान, भोजन वस्त्र सुपारी पान।
सुख सेती केइ दिन गयो, गर्भ सरूपा अगे रह्यो ॥६०॥

बन्धुदत्त का जन्म

जब पुरा हुवा नवमास, भयो पुत्र अति करें विकास।
बालक जन्म महोछो कीयो, बहुत दान बंदी जन दीयो ॥६१॥

कीयो महोछो जिणवर थान, देव सास्त्र गुर दीन्हो मान।
गीत नाद अति मंगलचार, बंधुदत्त तसु नाम कुमार ॥६२॥

अन्न पान रस पोखैं बाल, गुण चतुराइ बहुत विसाल।
बालक पंडित आगें पढियो, गुरू को गुणाह अति पढिओ ॥६३॥

साथि मित्री बंधुदत्त कुमार, बन कीडा करि बात विचारि।
बोल्यो मित्र सेठ का नंद, मित्र मनोहर मनि आनंद ॥६४॥

रत्नदीप जा जे व्यापारि, द्रव्य बिढजे अधिक अपार।
दान पुन्य कीजे इह लोइ, मुनिष जन्म तस सफलो होइ ॥६५॥

पिता तणी लखमी भोगवै, तहि का दोष कह्यो को कहै।
लखमी पिता मात सम जाणि, सेवत लहै दुख की खानि ॥६६॥

पुंजी आपणी बढवै दाम, तहि कौ सरै सबहि काम।
खरचै हरस परस सुख लेइ, मान बडाइ सहु कोइ देइ ॥६७॥

उद्दिम बिना न लछमी सार, तहि थे उद्दिम करै कुमार।
लछमी जहाँ शुद्ध ब्यौहार, लखमी जहाँ सत्य आधार ॥६८॥

सति की लीलमी बिढई आई, तिहि घर ९र थे झहै न जाई।
लखमी सदा सत्य को दासि, राति दिवस तिष्टै तहि पासी ॥६९॥

बात हमारी हियडै धरो, रत्न दीप जोगंगम करो।
सुण्या वचन सहु मंत्री तणा, मन मैं आचिरज पायो घणो ॥७०॥

भली बात तुम्ह कहा बिचारि, उद्दिम करैं मिलि चारि।
बंधुदत्त मित्रीह करी बात, आए घरी पिता जाहा मात ॥७१॥

बंधुदत्त पिता पै गयो, नमस्कार करि सो बोलियो।
बीनती सुणौ हमारी बात, तुमस्यौं कहा चित की बात ॥७२॥

झूठ बोलि जे बिढवो दाम, ते सहु करै अजुगतो काम।
मन मैं हरिषै मुढ गुवार, तहि को अपजस जानि संसार ॥७३॥

बणिक पुत्र माडै व्यापार, खेती करसण करै गंवार ॥७४॥

बन्धुदत्त द्वारा विदेश यात्रा का प्रस्ताव

मेरा बिणज करण को भाउ, रत्नदीप प्रोहण चढि जाउ।
आणो द्रव्य बिणज करि घणौं, दान पुन्य खरचो आपणो ॥७५॥

पुंजी प्रोहण दीजे तास, बणिवर चालै हमारे साथि।
बडो पुत्र होइ बिढवै दाम, मात पिता ले जिण का नाम ॥७६॥

पिता का परामर्श

संभलि सेठ पुत्र की बात, हरिष्यो चित विकास्यो गात।
हो पुत्र तुम्ह कुल आधार, थारो कहिया को ब्योहार ।।७७।।

सीत बात दुख बाहुरि घणा, थोरा दरिय हुरं नागणी।
नरकति पंथ बराबरि कह्यो, तहि थे थारो जुगतो न हो ।।७८।।

आगै सागर महा विषाद, मगरमछ भैभांति अगाध।
हम तो बात बड़ी पै सुणी, जाइ न थोडी पुन्य कोधणी ।।७६।।

कष्ट कष्ट करि खेवै पार, बस्त न आणै लहै लगार।
लेइ बस्त पाछै बाहुडै, कर्म्म जोग प्रोहण खड भडै ।।८०।।

तीन्यो रति का सुख विलास, घरि बैठा सुख भुंजो तास।
सीख हमारी हियडै धरो, दान पुन्य धरि बैठा करो ।।८१।।

बन्धुदत्त का उत्तर

बंधुदंत हसि बोल्यो बात, बीनती एक सुणो हो तात।
बाप तणी मै लखमी सुणी, लोगा मात बराबरि गिणी ।।८२।।

अब हम ऊपरि करहु पसाउ, रत्नदीप नै भेरो भाउ।
धनपति सुणो पुत्र को स्वाद, मन माहि पायो अहलाद ।।८३।।

तेरा बचन सही परमाण, लेहु किराणा बस्त निधान।
वणिक पुत्र जहाँ पंचसै भयो, बंधुदत्त को साथे दियो ।।८४।।

राजा आगै चाली बात, बंधुदत्त ब्यापारा जात।
राजा बोलै मन मै जोई, वणिवर पुत्र कुलाकम होय ।।८५।।

बन्धुदत्त की राजा से भेंट

धनपति बंधुदत्त ले गयो, राजा आगै ठाढो भयो।
कीयो जुहार भेंट ले धरी, हाथ जोडिउ बनती करी ।।८६।।

राजा जी हम आग्या होइ, रत्नदीप चालै सहु कोइ।
राजा मन मैं कीयो विचार, कीया सेठि बंधुदत्त कुमार ।।८७।।

बीडा नमक दीयो करि भाव , वणिजर मिल्या सारथ वाहु ।
नग्र मांझि पट है बाजियो , बंधुदत्त सागरगम कीयो ।।८८।।

जहि को मन चालण को होइ , लेह बसन चालैं सहु कोई ।
सुणि बात मन हरिखो भयो , माण्या बहुत किराणा लीयो ।।८९।।

भविष्यदत्त द्वारा माता के सामने विदेश यात्रा का प्रस्ताव

भवसदंत सहु ब्यौरा सुण्यौ , देगा जाय मातास्यौ भणौ ।
हमनै दुखो दीजे मात , चालौं बंधुदत्त का साथि ।।९०।।

मोहि दीप देखण को भाउ , साथि चालैं पंच सौ साहु ।
मनुषि जन्म संसारा थाइ , ताकी वस्तु देखिजे माई ।।९१।।

कमलश्री के विचार

पुत्र बचन सुणि कमलश्री , कहै बात सा मन मै डरी ।
हियडै पुत्र बिचारो बात , बंधुदंत तुम ऐको तात ।।९२।।

दुष्ट भाव तुम उपरि करैं , बंधुदत्त संग मति फिरैं ।
तुमनै वैरी करि करि गिणं , यहु तो बात पुत्र नवि वणं ।।९३।।

दोहडा— वैरी बिसहर सारिखो, तिहि नीडै मत जाई ।
वैरी मारै डावडे, बिसहर चंपै खाई ।।९४।।

वैरी बिसहर जब डसै, ग्रषध करै महंत ।
बिसहर मंत्र ऊतरै, वैरी तंत न मंत ।।९५।।

वैरी वट पाडो वागुर्यो, नाहर डाइणि चाड ।
ऐना होई न आपणा, निश्चै करै बिगाड ।।९६।।

चौपई— कमलश्री सांभली बात , भवसदत्त बोल्यो सुणि मात ।
जे कोडस्यौ करैं उठाव, तब लैं वैरी घालै धाउ ।।९७।।

सुध नीति मारग ब्योहरै, तहि को दुरजन कांयौ करै ।
जो छै साथि पचसैं साहु ,सुंठ साँच को करसी न्याउ ।।९८।।

होसी सही बुरा को बुरौ, कहूं बात को डर मन करौ।
भलं भलाइ होसी मात, देखि दीप आवु कुसलात ॥९९॥

भविष्यदत्त द्वारा विदेश-प्रस्थान

नमसकरि माता नै करि चाल्यो, तक्षण बंधुदत्त नै मिल्यो।
भाखी लघु भाईस्यों बात, हम भी चाला तुम्हारै साथि ॥१००॥

बंधुदत्त मनि आनंद भयो, भाइ तणा चरण बंदियो।
अब लग हम हुते अनाथ, तुम चालता हम बहुत सुनाथ ॥१०१॥

तुम सहु लाज गाज का धणी, स्वामी खिजमत करिस्यां घणी।
तुम सहु ताडा का प्रधान, मेरै पुज्य पिता की थानि ॥१०२॥

बन्धुदत्त को माता द्वारा सिखाना

ऐसहु बात सुणी रूपणी, सुत नै सीख देइ पापिणी।
बडो पुत्र इहु धनपति तणौ, लेसी द्रव्य सबै आपणौ ॥१०३॥

भवसदंत को करसी ग्वास, जहियें होइ जीव को नास।
घणी बात को करे पसार, बैरी को कीजे संघार ॥१०४॥

विदेश यात्रा पर प्रस्थान

सुण्या वचन जे माता कह्यो, मन मै दुष्टाई करि रह्यो।
लीयो महुरत तिथि सुभवार, चाल्यो दीप नै बंधुदत्त कुमार ॥१०५॥

दही दो वणकि कावल दीया, सुगन सबै मन बंछित भया।
पहुंचावण चाल्या सहु लोग, दीयो नारेल बधुदत्त जोग ॥१०६॥

वणिवर चाल्या पंचसै साथ, सजन लोग मिल्या भरि बाथ।
मिल्यो पुत्र नै सेठ घरि गयो, अतर तर परवत बहु भयो ॥१०७॥

लंघी नंदी बाहुाला खल, वन पर्वत दीठा असराल।
चले बहुत दिवस वर वीर, कर्म जोग पकडी जल तीर ॥१०८॥

कोइ दिन लीयो बिसराम, मुकस्यौ समद तटि ठाम।
लग्न महुरत ले सुभवार, इष्टदेव की पूजा सार ॥१०९॥

दाम दिया धीवर नै घणा, खडे करै प्रोहण आपणा ।
धीवर मन मै हरिष्यो भयो, वणिक बस्त प्रोहण मैं दियो ।।११०।।

मगरधुज बंद तक्षणा, सुभट बलाउलानी घणा ।
नाम पंच परमेष्टी लीया, समद मध्य प्रोहण चालिया ।।१११।।

कर्म्म जोगि बाजियो कुबाउ, मोगर रालि रह्या तहि ठाम ।
सुभ संजोग बहुत दिन गयो, दुष्ट सुभाइ पवन बाजियो ।।११२।।

लीयो मुदगर वेगि उचाइ, चाल्यो पोत पवन कै भाइ ।
सबही के मन हरिष्यो भयो, आगे मदनदीप देखियो ।।११३।।

मदन द्वीप में आगमन

षड लाकडी तहाँ उत्तम नीर, वृक्ष जाति फल गहर गंभीर ।
देख्यो थानक सोभा भली, सब ही मन की पुजै रली ।।११४।।

वणिकपुत्र सब ही उतरे, मागै पाणी बासण भरे ।
मीठा फल लीया भरि पूरि, षड लाकडी बहु लीया तूर ।।११५।।

भवसदंत्त फल लेवा गयो, बंधुदंत्त पापी देखियो ।
बात विचारी माता तणी, मन मैं कुमति उपजी घणी ।।११६।।

लोग बुलाया वडहूर तणा, बंधी धुजा वेगि तंक्षणा ।
वणिक पुत्र तब बोल्या एव, भवसदत नै आवा देइ ।।११७।।

बोल्यो पापी नेत्र चढाई, भवसदंत्त हमनैं न सुहाइ ।
पापी नै नवि लेस्या साथि, परतक्ष सत्रु मारै साथि ।।११८।।

भविष्यदत्त को वन में छोड़कर आगे बढ़ना

भवसदंत्त वन मै छाडियो, पापी प्रोहण ले चालियो ।
सेठ पाँचसै आंसु भरैं, असा काम नीच नवि करैं ।।११९।।

भवसदंत्त फल ले आइयो, देखइ पोत न दुख पाइयो ।
मन मै ही सोक करै कुमान, कही विधाता भूल्यो थान ।।१२०।।

प्रोहण दूरि जात देखिया, कर ऊचौ करि हेला दिया।
मनि पछितावा करौ पुकार, हौ फल लेबा गयौ गंवार ।।१२१।।

भविष्यदत्त द्वारा पश्चात्ताप करना

कुमस्यौ माता कहै थी बात, इहि पापी को न करसी साथि।
माता वचन अंगूण्या सोई, तिहि का फल लागा मोहि ।।१२२।।

अथवा कर्म हमारा दोस, जीवडा मन मैं न करी रोस।
जैसौ कर्म उपावै कोइ, तैसो लाभ तिहीं नइ होइ ।।१२३।।

वन भैभीत अधिक असराल, सुवर संबर रोझनि माल।
चीता सिंघ दहाडा घणा, बांदर रीछ महिष माकणा ।।१२४।।

हस्ती तुरग किरै अमरारल, आरहुंग अरडागद थाल।
अजिगर सर्प्प हरण संचरै, भवसदंत तिहि वन मैं फिरै ।।१२५।।

मुरछी आई भूमि गिरि पडै, चेत उसास्व बहु तडफडै।
ऊंचा नीचा लेई उसास, सरणाइ कोइ नवि तास ।।१२६।।

भोखत भखित करै दुख घणौ, दीठो थांनक पाणी तणौ।
वृक्ष असोक सीला ठाम, भवसदंत लीयो विसराम ।।१२७।।

छांपि नीर दूनै करि लीये, हस्त पाइ मुख प्रखालियो।
नाम पंच परमेष्टी लीया, अतिघ अभागि तनौ फल मेलिया ।।१२८।।

पाछै फल को कीयौ आहार, जल आचमन लीयौ कुमार।
दिन गत गयो आययो भाण, पथी सबद करै असथान ।।१२९।।

वस्तुबन्ध

भाई वन मैं छाडियो, भयसदंत बहु दुख पाइयो।
महा भरण डरावणौ, पूर्व कर्म तसु उदै आइ।।

पंच परम गुर हीये धरि तिही लीयौ जोग अभिलास।
वृक्ष तले निद्रा भइ भयो भानु परगास ।।१३०।।

चौपई— गई रैनि [illegible] ऊगियो, [illegible] ऊँकार भवसदंत कीयो ।
हाथ पाद मुख प्रखालियो, नाम पंच परमेष्टी लीयो ॥१३१॥

ऊदिम करि चालियो कुमार, पंथ पुराणो दीठो सार ।
मन माहै सो चिता करै, गगनदेव विद्याधर फिरै ॥१३२॥

व्यापार जे आवै लोग, ते चढि जाइ पोत संजोग ।
भवसदंत कीयो दृढ चित, चाल्यो वेगि पुराणो पंथ ॥१३३॥

मदन द्वीप का वर्णन

आगै पर्वत देखि उतंग, उपरि सोभा कोटि सुरंग ।
आगै गुफा देखि इक भली, तिहि मै बाट मनोहर चली ॥१३४॥

चालत चालत आघो गयो, आगै उतिम वन देखियो ।
कुवा बावडी पुहे करताल, एक खेत्र देखि सुकमाल ॥१३५॥

फुलत फलत देखि वनराइ, भयो हरिष अति अंगि न माइ ।
छत्री मंडप देखी चोवगान, बैसक महा मनोहर थान ॥१३६॥

गढ आगै देख्यौ निवांस, खाइ कोट अण्यार चहुंपासि ।
खोलि कपाट भीतर गयो, मानिख नग्र सुनो देखियो ॥१३७॥

देख्या मंदिर पौलि पगार, धन कण भरि तहाँ हाट बाजार ।
वस्त्र पदारथ बहुली जोई, सूनो मनिष्य[1] न दीसै कोइ ॥१३८॥

फिरत फिरत सो आघो गयो, राजा कं मंदिर देखियो ।
महा सिंघासण सोना तणो, छत्र चमर देख्या अति घणो ॥१३९॥

द्रव्य तणी दीठा भंडार, वस्तकपुर आभरण अपार ।
सज्या थान मनोहर सुध, चोवा चंदन बास सुगंध ॥१४०॥

जिन मन्दिर

सोवन कलस सिखर सोभंति, उपरि महाधूजा हलकंत ।
दीठा बहुत अंन का गरा, हस्ती वाजि पाइगा खरा ॥१४१॥

---

१. मनुष्य ।

देखित मासौ आगो खडिउ, चंद्रप्रभु मंदिर दिठि पडिउ ।
महा सिखर बहुरत्न जडिउ. जाणि विधाता आपण घडिउ ॥१४२॥

चौरी मंडप सण्या सुचंग, चदवा तोरण निर्मल रंग ।
सोवन थंभ सभा का थान, सोभा जैसी सुर्ग बीमान ॥१४३॥

देखी बावडी उत्तम नीर, हाथ पाइ मुख धोये नीर ।
पंथ सोधता करै कुमार, पंथ हुती मध्य उघाड्यो द्वार ॥१४४॥

जिन स्तवन एवं पूजा

जय जयकार कीयो जगनाथ, नम्या चरण धरि मस्तकि हाथ ।
दीन्ही तीनि जु परदक्षणा, गुण ग्राम भास्या जिनतणा ॥१४५॥

जै जै स्वामी जग आधार, भव संसार उतारै पार ।
तुम छो सरणाइ साधार, मुझ संसार उतारो पार ॥१४६॥

भूल्या पंथ दिखावण हार, तुम छौ मूकति तणा दातार ।
....॥१४७॥

चरण जिणेसुर पुजा करै, सुर अपछरा निहचै वरै ।
विनती सुणं हमारी नाथ, कुमती कुसाव निरोधो साथ ॥१४८॥

करी वंदना सरसी गयो, धोवति वमत्र सनपन कीयो ।
आगै द्रव्य एकठा कीया, चंद्रप्रभ पूजा चालिया ॥१४९॥

बंधा जाई जिणेस्वर देव, सनपन चरण पखारया एव ।
पाछै पुजा रचि विस्तार, सोवन झारी नीर सुचार ॥१५०॥

महागंग जल माझि कपूर, सर्व ऊषध मिलं दूरि ।
फासु निर्मल महा सुवारि, जिनपद आगै दीन्ही धार ॥१५१॥

कुंकम चंदन घसि बांवनी, मझि कपूर मिलाये घणी ।
बास सुगंधक चोली भरी, जिणवर चरण चरचा करी ॥१५२॥

गरडौराइ भोग सुवास, सोभै दुतिया चंद्र उजास ।
अखिल बास भमर ले गुंज, जिणपद आगै कीयो पुंज ॥१५३॥

चंपौ जुही पाडल जाइ, बौलश्री करणौ मही काइ ।
जास सुगंध भमर ले बास, जिणपद आगें पोप सुबास ।।१५४।।

नालिकेर का कान्हाठुर, मिश्री दाख बिदाम खिजुरी ।
सोवन थाल हाथि करि लीयो, जिणपद आगें नेवज दीयो ।।१५५।।

भीमसेणि कपूर सुबास, भई आरती बहुत उजास ।
रत्न खिचित आरती लीयो. जिण चरण आगें फेरियो ।।१५६।।

अगर महा किसनागर सार, चंदन सुभ बावनौ तुषार ।
रत्न धोपाईणौ भरि खेईयो, जिण चरण आगें फेरियो ।।१५७।।

नालिकेरि पुंगी दाडिमी, मातुलिंग नीबू नारिंगी ।
नेणा देख विगास अपार, जिण चरण आगें विसतार ।।१५८।।

जल चंदन अक्षत सुभमाल, नेवज दीप धूप विसाल ।
उपरि नालिकेर मेल्हिया, जिण चरण आगे फेरिया ।।१५९।।

भवसंदत करि पुजा भली । पूगी सब ही मन की रली ।
दीठौ मंडप उतिम ठांम, सूतौ तहां लियौ विश्राम ।।१६०।।

पंथ श्रम बहु निद्रा भई, सुणहु कथा जे आगें भई ।
पूर्व विदेह सु सोभामली. जसोधर तिष्टं केवली ।।१६१।।

सुरनर फणि सबु आया सेव, नमस्कार करि बैठा एव ।
अच्युत इंद्र तहि जोड्या हाथ प्रसन एक बुझै जिननाथ ।।१६२।।

अच्युतेन्द्र द्वारा प्रश्न

पहली धनमित्र (मित्र) मुझ तणौं, रहै कहा सो थानक भणौ ।
केवली भणं इंद सुणि बात, तहिकौ कहौ सबै विरतांत ।।१६३।।

केवली भगवान द्वारा उत्तर

क्षेत्र भरथ कुरु जंगल देस, हस्तनागपुर बसै असेस ।
धनपति सेठ तणौ तहा बास, भवसदंत नंदन छै तास ।।१६४।।

प्रोहण चढिउ तारण व्यापार , मदन दीप दीठौ अतिसार ।
बैर भाव लघु भाइ कीयो , भिन्न भिन्न बंधु भाई को कीयो ।।१६५।।

पंथ पुराणो देख्यो बाल , देख्यो तीलकपुर महा विसाल ।
चंद्र प्रभ को थानक जहां , सीतल मंडप सूतो तहां ।।१६६।।

कन्या [illegible] , [illegible] तिष्ठिसी ।
कामणि संपति बस्त निधान , ले पहुच सी पिता कै थानि ।।१६७।।

राजा देसी बहु मनमान , भर्तंराज तसु कन्यादान ।
अंति कालि सो संजम लेइसी , तप कर सुभ थानक पहुंचसी ।।१६८।।

पूर्व भव के मित्र द्वारा सहायता

सुणी बात सुरपति सुख भयो , नमस्कार करि सो चालियो ।
भवसदंत सूतो तहां गयो , देखत मन मैं बहु सुख भयो ।।१६९।।

मन मैं इन्द्र विचारै बात , सूतो नहीं जगाउं भ्रात ।
खडही इलो हाथि करि लीयो , अक्षर भीति लेख लेखियो ।।१७०।।

उद्दिम करि जागो हो मित , सावधान होइ कंचित्त ।
वेगौ उतर दिसनै जाहु , मन्दिरि सोभा बहुत उछाहु ।।१७१।।

पंच भूमि उत्तंग अवास । कन्या एक रहै तहां बास ।
सा भवषाणरुव तसु नाम, दाणी सर्व सामोद्रीक ठाम ।।१७२।।

परणौ भोग कौतोहल करो , संका को मन मै मत करो ।
पुर्व पुन्य आयो तुम तणौं , थोडो लिख्यौ जाणि जो घणौं ।।१७३।।

एतौ इंद्र लिखयो लेख सभाष[1], माणिभद्र में दीन्ही साख ।
तिया संपदा सहित कुमार , रच्या बीमाण बहुत बिसतार ।।१७४।।

---

१. क प्रति–एतो इंद्र लिखयो लेख सभाष ।

कुरजंगल हथणपुर नाम , छाडिउ मात पिता को ठाम ।।
माणिभद्र की बध्यो वाह , इंद्र सुरगि गयो बहुत उछाहु ।।१७५।।

निद्रा तजि कुमर जागियो, तंक्षण भीत दिसौं चित गयौ ।
मन मैं अचिरज पायो घणौ , बोहलौ लेख तुरत ही तणौ ।।१७६।।

भवसदंत नौ भयो गुमान , आयो कोण पुरुष इहि थान ।
बाचै लेख बहुत निरताइ , तिम तिम मन को सांसौ जाइ ।।१७७।।

अभिप्राय लेख को लियो , तंक्षण सुंदरि मन्दिर गयो ।
भूमि पंचमी चढइ कुमार, आगैं जड्यो देखियो द्वार ।।१७८।।

भविष्यानुरूपा से भेंट

भौसदंत्त बोलियो सुजाण , खोलि कपाट रूपभोसाण ।
मन माहिं खरा करो बिचार , हौं भयो तेरो भरतार ।।१७९।।

सुणी बात मानियो गुमान , आयो पुरिष कोण इहि थान ।
मन मैं चिंता उपनी घणी , सब सरीर चाली कांपिणी ।।१८०।।

वन देवी कहै तसु जोग , पुत्री छोडि हीया को सोग ।
सुभ साता आइ तुम भली , तो पै जुगति कंत की मिली ।।१८१।।

कवरि बचन सुणि देवी तणा , जुगल कपाट खोलि तंक्षिण ।
भवसदंत्त भितरि चालियो , साच बचन तहियाँ ऊचारियो ।।१८२।।

सिंघासण दीन्हो सुभठाम , थांभा अंतरि ठाडी जाय ।
देखि रूप मन भयो बिकास , सुर्य देव सुभ आयो पास ।।१८३।।

अथवा देव जोतिगी कोइ , ऐसा रूप मनिख नवि तोइ ।।
कोइहु वन देवता सुअंग , दीसै सोभा निर्मल अंग ।।१८४।।

सकलप विकलप मन मैं होइ , को इहु कामदेव छै कोई ।।
भवसदंत्त देखि तसु रूप , सुर कन्या पै अधिक अनूप ।।१८५।।

कोइ पाहु सुणं अपछरा कोइ, नाग कुमारि परतखि होइ।
जल देवी तिष्टै इहि थान, भवसदंत मनि भये गुमान ॥१८६॥

ऐसो नैण न मटकै कोइ, तहि को अंग पसेव न होइ।
नलस्यो भूमि धरे छा धणी, तहि पे पाहु सही मुनिस्यणी ॥१८७॥

भवसदंत बोलियो विचारि, बेगी देहि आसण कुमारि।
मन मैं संका करो म कोइ, विधना लिख्यौ न मेटै कोइ ॥१८८॥

सुंदरि भणै सुणो हो नाथ, हम तुम दरसण नौ तन[1] बात।
ऐसो कुल कन्या को साज, पहली हो किम छोडौ लाज ॥१८६॥

लै कचोट आचमन दियो, भवसदत मनि हरखो भयो।
कपरा उपरौ देइ सनमान, सुलख्यो तिष्टै उत्तिम थान ॥१६०॥

सुंदरि मनि चिंता उपनी, कीजे भक्ति पाहुणा तणी।
भोजन विजन महा रसाल, सनान सुगंधी वस्त्र सुकमाल ॥१६१॥

बोवलि पट्ट[2] फूलो की सार, जिणवर पूजा करै कुमार।
पाछै आयो सुंदरि थान, पाव पखालि बहु दीनौं मांन ॥१६२॥

गाबी दे इकलीफा[3] तणी, सोवन चौकी सोभा घणी।
सोवन थाल कचोला दियो, निर्मल पाणी प्रखालियो ॥१६३॥

घेवर पचधारी लापसी, जहि नै जीमत अति मन खुसी।
उज्जल बहुत मिठाइ भसी, जहि नै जीमत अति मनरली ॥१६४॥

खाटा तोरह विजन भांति, मेठ्या कुकुस राइता जाति।
मुग मंगोरा[4] खानो दालि भात पकव्यो सुगंधी सालि ॥१६५॥

---

१. तम क प्रति।
२. पटकुल — क प्रति।
३. चौका क प्रति।
४. मंडोरा क प्रति।

सुरहि घ्रित महा[1] निरदोष, जिमत होइ बहुत संतोष ।
सिखरणि दही घोल बहु खीर, भवसवंत्त जिमो बरवीर ॥१९६॥

दीयो आचमन बीडा पान, चोवा चंदन वास निधान ।
कीजि पालिको यानक सार, समाधान करि दीयो अहार ॥१९७॥

पाछैं आपण भोजन कीयो, उत्तिम नीर आचमन लीयो ।
फोफल पान सुगंध चढाइ, भवसवंत्त नखि बैठी जाई ॥१९८॥

वस्तुबन्ध

तिलक पट्टण देखि सुविसाल, चंद्रप्रभ जिन पूजा कीन्ही ।[2]
पूर्व मित्रेसुर आइयो, लिखो लेख सुभ सीख दीन्ही ॥[3]
सुभ साता आइ हुवै, कन्या मिली मुजाणि ।
बहु विवेक गुण सील रिद्ध, [illegible] ॥१९९॥

चौपई — कवर भणै तुम सुंदरि सुणी, भाखौ[4] मुझ संसौ मन तणी ॥
उजड बसे नग्र कौण संजोग, बस्त बहुत नवि दीसै लोग ॥२००॥

भविष्यानुरूपा का परिचय

बोलै सुंदरि सुणो कुमार, कहौ पाछिलो सहु व्यौहार ॥
मदन दीप जाणै सहु कोइ, इहु तिलकपुर पट्टण होइ ॥२०१॥

राउ असोक नग्री को नाथ, दुर्जन नर को करै निपात ।
वणिवर बसै नाम भगवंत, जैनिधर्म्म दिढ राखै चित्त ॥२०२॥

ताकै नागसेणा कामणी, भगति देव गुरु श्रावक तणी ।
हौं तस पुत्री महा सरूप, नाम दियो भौसाणह[5] रूप ॥२०३॥

---

१. क प्रति सीहा ।
२. ख प्रति कीनी ।
३. ग प्रति कीनी ।
४. क एवं ग प्रति भाखौ ।
५. ख प्रति भौसानसरूप ।

असनवेग इक[1] वितर कुस्ट. दया रहित अति महा निकष्ट ।
भय लोग सागर मैं दीयो, पापी तणौ न कसरयो हीयो ।।२०४।।

थारा पुन्य तणो परभाउ, हौं राखी वितर करि भाउ ।
सहु सनबध पाछिलौ जाणि. व्यंतर सहित रह्यौ इहि थान ।।२०५।।

स्वामी हमस्यौ करो वखाण, कौण देस पट्टण तुम थान ।
कौण नाम तुम पिता रु माय, कहो बात हम संसै जाइ ।।२०६।।

भविष्यदत्त का परिचय

भवसदंत्त बोल्यो सुनि नारि, कहौं बात सहु मनि अवधारि ।
भरथ खेत्र कुरजंगल देस, हथणापुर भूपाल नरेस ।।२०७।।

धनपति सेठ बसै तंहि ठाम, तासु हीया कमलश्री नाम ।
भवसदंत्त हौ तहि को बाल, सुख मैं जात न जाणै काल ।।२०८।।

दूजी मात सरूपणि पुत्त, पंडित नाम दियो बंधुदंत्त ।
प्रोहण पूरि दीपनै चल्यो, हो पथि साथि तासु कै मिल्यौ ।।२०९।।

सो पापी मति हीणो भयो, मदन दीप मुझ छोडिव गयो ।
कर्म जोगि पट्टण पाविय़ो, इहि विधि तुम थानकि आइयो ।।२१०।।

सुंदरि सुणी कवर की बात हरिखो चित्त बिगास्यौ गात ।
जाण्यो सबै नांउ ब्यौहार, दोउ बरावर कुल आचार ।।२११।।

भविष्यानुरूपा का प्रस्ताव

बोली कामिणी सुणो कुमार, करहु हमारै अंगीकार ।
भोग बिना जेइ दिन जाइ ते दिन कइ न लेखै लाइ ।।२१२।।

मनुक्ष जनम फल कीजे सार, दीसै सहु संसार असार ।
भोगि भेद नवि जाणै कोइ, तेनर पसू बरावरि होइ ।।२१३।।

---

१. क प्रति इव ।

सुणी बात बोलियौ कुमार, सुणि कामिनि कुल को व्योहार।
दान अदत्ता लीजे कोइ, श्रावक जनम अविर्था होइ ॥२१४॥

भविष्यदत्त का उत्तर

हम जिणवर व्रत लियो धरा, दान अदत्त संग न करा।
गुरु मुझ अखिंग पालड़ी बड़, मन बच काया मानिव लइ ॥२१५॥

जो नर दान अदत्ता न लेइ, तहि की कीर्ति इन्द्र करेइ।
दान अदत्ता कीयो तिह्या संग, सत्य घोष मरि भयो भुजंग ॥२१६॥

जौं बितर मुझ देसी मोहि, भोग बिलास सबै विधि होइ।
बचन हमारा जाणौ सार, श्रावक तणो कह्यो आचार ॥२१७॥

असनवेग का आगमन

तौ लग असनवेगि आइयो, बहुत कोध आडंबर कियो।
कौण पुरुष आयो मुझ थानि, तहीं पापी को घालौ घाण ॥२१८॥

देव[1] दान सब मुझ ते डरे, मेरा नग्र मैं को न संचरै।
आवै बहुत मनिषि की गंधि, सागर तहि नै रालौं बंधि ॥२१९॥

भवसदंत उठीयो कलिकारि, मार वै बीढ कहि बात बिचारि।
घणी कहा कीजे भंडाल,[2] आयो सही तुहारो काल ॥२२०॥

भवसदंत नै बहु बल भयो, ठोकि कंध सो सनमुख भयो।
असनिवेगि देखियो कुमार, कोध सबै म्हालौ तहि बार ॥२२१॥

दीयो असुर अवधि अब लोइ, मेरो मित्र पूर्वलो होइ।
बितर बोलै सुणि हौं मित्र, कहौं बात किम करो चित्र ॥२२२॥

---

१. क ख प्रति — देव दाणा-मुझको डरे।

२. ख प्रति झौंझाल।

हौं सन्यासीं तस घर मित्त, सेव हमारी करी बहुत।
गुण तुम तणा चित्त मुझ रह्या, तुम दीठा हमि बहुत सुख लह्या ।।२२३।।

मन वंछित वर मांगो धीर, ते सहु देस्यौ गहर गहीर।
बोलो सुभट बहुत दे मान, ज्यौं हमनै दीन्हौ वरदान ।।२२४।।

कन्या रत्न देहु हम जोग, हम तुम मिल्या कर्म संजोग।
बितर भणै न करो विवाद, मौं तुमनै कीनो परसाद ।।२२५।।

बन्धुदत्त और भविष्यानुरूपा का विवाह

व्याहु तणी सामगरी करै, नग्र तणी बहु सोभा धरै।
करीयि कुवंण बहु विसथार, चौरी मंडप रच्या सोभार ।।२२६।।

गावै अपछरा करि बहु कोड, वर कन्या कै बांध्यो मौड।
साक्ष[१] विप्र बैसांदर भयो, भवसदंत तीया कर गहियो ।।२२७।।

चौथो फेरो करायौ कुमार, हाथ छुडावण को आचार।
बितरि भारी पाणी लीयो, भवसदंत कै करि मेल्हीयो ।।२२८।।

कन्या नग्र दीयो सहु साज, दीनौ मदन दीप को राज।
वस्त पदारथ भरिल भंडार, मोती माणिक सोनौं सार ।।२२९।।

विनौ भगीत गुण भाख्या घणा, भवसदंत सेवग तुम तणा।
नमसकार करि दीनौ मान, बितर गयो आपणै थान ।।२३०।।

भवसदंत सुख सेवो घणी, पूर्व पुन्य संच्यौ आपणो।
तीया सहित बन क्रीडा करै, देव सासत्र[२] गुरु निश्चै धरै ।।२३१।।

इन्द्रपुरी जिम भुंजै भोग, पीड़ा दुख न व्यापै रोग।
भवसदंत इहि विधि सुकमाल, सुख मैं जात न जाणै काल ।।२३२।।

---

१. क ख कीध।

२. ख पति सास्त्र।

वस्तुबन्ध

कमलश्री उरि उपनौ, हस्तनागपुर जन्म पाइयो ।
माता वचन बीसरियो, समु साथि व्यापारि आइयो ।।
मदन दीप मैं छाडियो, भाइ गयो पुलाइ[1] ।
कामनि बहु संपति लही, साता उदै सुभाइ ।।२३३।।

कमलश्री की दशा

चौपई — कमलश्री घरि बहु दुख करै, पुत्र वियोग चित्त मनि धरै ।
असुर पात राले बिलखाइ, घडी इक मन रहै न ठाइ ।।२३४।।

पुत्र दुख माता दिन र रात, दिवस राति सौभग हो जात ।
सहु समझावै पुर का आइ, उपरा उपरी कहै सुभाइ ।।२३५।।

नग्र कामिनी बैसे आइ, उपरा उपरी कहै सुभाइ ।
माता पुत्र विछोहो कीयो, तहि कौ पाप उदै आइयो ।।२३६।।

एक कामिनी कहै हंसति, पूर्व न जाप्यो जिण अरहंत ।
कमलश्री बहु पावै दुख, दीठा नही पुत्र का मुख ।।२३७।।

बोलै एक नारि करि बेइ, वावै जिसा तिसा फल लेइ ।
मन वच काया दान न दीयो, तहि थि पुत्र विछोरा भयो ।।२३८।।

कमलश्री की बोली मात, हे पुत्री मेरी सुण बात ।
चलीयो[1] अजिका के ठाम, छडि व्यारि लोयो विश्राम ।।२३९।।

कमलश्री का आर्यिका के पास जाना

कमलश्री मनि हरषी भइ, मात सहित अजिका पै गइ ।
भाव भगति बहु बंधा पाइ, बैठी अजिका आगै आइ ।।२४०।।

---

१. क ग प्रति - पुलाइ ।

१. चालिजो ।

कुसल समाधि बुझी व्योहार, जैसो श्रावग जति आचार ।
कमलश्री दे मस्तकि हाथ, अर्जिका सेती बुझै बात ।।२४१।।

माता मोहि कर्म संजोग, पाजे सुख पुत्र हि जोग ।
राति दिवस भोखत ही जाइ, चित्त एक क्षण रहे न ठाइ ।।२४२।।

बोली अर्जिका सुणौ कुमारि, दुख सुख दुवै मिश्र संसार ।
कबही होइ सुभ संजोग, कब ही तिहि कौ होइ वियोग ।।२४३।।

सगर चक्रधर अति बलिवंड, सहु धरती भुंजै छहखंड ।
साठि सहस सुत तहिकै हुवा, एक बार सगला ही मुवा ।।२४४।।

कबही नर सुख लीला करै, कबही भीख मांगतौ फिरै ।
कबही बीबीड़ो खाइ कपूर, कबही न लहै खलि की चूर ।।२४५।।

पुन्य पाप तरु जैसा बोवै, तहिका तैसा फल भोगवै ।
झुठा जीव पसारा करै, करम फिराया तैसे फिरै ।।२४६।।

पुत्री मन मैं म करी सोग, मिलसी पुत्र कर्म संजोग ।
मन मैं दुख न कीजे कोइ, भावी[1] लिख्यो न मेटै कोइ ।।२४७।।

कमलश्री अर्जिकास्यौं भणै बीनती एक हमारी सुणौ ।
व्रत धर्म का दिउ[2] उपदेस, मिलै पुत्र सहू जाइ कलेस ।।२४८।।

श्रुत पंचमी का व्रत

सुव्रत अर्जिका कहै विचारि, व्रत उपदेस सुणौ कुमारि ।
श्रुत पंचमी तणो व्रतसार, तहिको कीजे अंगीकार ।।२४९।।

तब कमलश्री बोली एव, व्रत पंचमी को कहिए भेव ।
कौण मास दिन कहि विधि होइ, तहि को उत्तर दीजे मोहि ।।२५०।।

---

१. क, ग—भयी ।
२. क ग प्रति—जैनधर्म दिउ उपदेश ।

भणै अर्जिका सुंदरि सुणौ, कहौ निवार(थ) सच्यौ व्रत तणौ।
कातिग फागुन शुभ आषाढ, सुदि पांचै उपवास सु पाठ ॥२५१॥

चौथि ऊजली करै सनान, धोवति पहरि आइ जिण थान।
जिण चौबीस न्हायण करेइ, आठ द्रव्य शुभ पूजा लेइ ॥२५२॥

देव सास्त्र गुरु पूजै पाइ, भगति बंदना करि घरि आइ।
पाछै पात्रां देइ दान, मिष्ट मनोहर भोजन पान ॥२५३॥

एक भगति शुभ करै आहार, पाछै सबही करै निवार।
राति भूमि शुभ सज्या करै, नाम जिणेसुर मन मैं धरै ॥२५४॥

देव सास्त्र गुरु आज्ञा लेइ, भुत पांचै उपवास करेइ।
होइ पंचमी को परभात, पुरुष सलाका की सुणि बात ॥२५५॥

पोसौ सामाइक दिन गमै, अर्थ पुराण मध्य मन रमैं।
तिहि दिन बैरी मित्र समानि, सोनौं तिणौं बराबरि जानि ॥२५६॥

करि जाग्रण गमै शुभ राति[1] करै सनान छठै परभाति।
जिणवर न्हावण पूजा विधि करै, पाछै आइ घरि गम करै ॥२५७॥

देइ पात्र जोगि आहार, समाधान वात व्यौहार।
पाछै एक भगति पारणौ, निर्मल मन राखै आपणौं ॥२५८॥

सेत पंचमी को दिन सार, पैसठी[1] मास करै विस्तार।
पूरै व्रत उद्यापन करै, महाभिषेक पूजा विस्तरै ॥२५९॥

फल फूल नेवज चंदना, अगर कपूर मनोहर घणा।
झालर कलस भेरि कंसाल, चदवा तोरण ध्वजा विसाल ॥२६०॥

जिणवर भवणि महोछा करै, श्रुत सास्त्र पूजा विस्तरै।
देइ जतीनै सास्त्र लिखाइ, पाटू बंधन निर्मल भाइ ॥२६१॥

---

१. क ग—राति।

१. क पोसहि ख प्रति पोसवि।

गुर चरणा करि पूजा सार, बहु विधि संघ जोग आहार ।
जिथा जोगि वस्त्र सुभ दान, चोवा चंदन फोफल पान ।।२६२।।

उद्यापन की सकति न होइ, दूणो व्रत करै सहु कोइ ।
जैसी सकति तसो विस्तार, उषध[1] सास्त्र अभै आहार ।।२६३।।

भाव सुध अहि विधि व्रत करै, सो नर मुकति कामनी सुख लहै ।
पीड़ा दुख न व्यापै रोग, मिलै पुत्र सहु जाइ विजोग ।।२६४।।

सुणी बात अजिका तणी, उपनी अंगि सीलाइ घणी ।
नमस्कार करि बारम्बार, कीयो व्रत को अंगीकार ।।२६५।।

पूजा दान सहित व्रत सार करि उपवास कीनी च्यारि ।।
दुखी दलिद्री देहु दान, व्रत पंचमी को बहु मान ।।२६६।।

आर्यिका को साथ लेकर मुनि के पास जाना

इहि विधि काल गमै सुंदरि, पुत्र तणी बहु चिंता भणी ।।
एक दिन ले अजिका साथि, गइ जिणालै जाहा जगनाथ ।।२६७।।

जिणवर बिंब बंद्या बहु भाइ, अजिका सहित मुनिवर पै जाइ ।
करी बंदना मस्तकि हाथि, विनती एक सुणो मुनिनाथ ।।२६८।।

कमलश्री सुत दीपां गयो, तहिको बहुडि न सोधो लहयो ।
पुत्र विजोग बहुत अकुलाइ, रात्रि दिवस मन रहै न ठाइ ।।२६९।।

स्वामी तुम्है अवधि का जाण, वचन तुम्हारा महा प्रमाण ।
भवसदत्त छै कोणी थानि, हानि[2] वृद्धि तसु करो बखाण ।।२७०।।

मुनि का वचन

मुनिवर भणै अवधि कै भाइ, सुणी बात मन राखो ठाइ ।।
मदन दीप पहुतो कुसलात, पट तिलक महा विख्यात ।।२७१।।

---

१. उखद ख प्रति ।
२. क ज प्रति भी हीनि बुद्धि ।

सुकर्म जोगि तहां बालक गयो, सुंदरि एक तहां मेलो भयो ।।
नगर सहित बहु संपति लही, सत्य बचन तुम जाणौं सही ।।२७२।।

सुखस्यों बारा बरस तहां रहै, वस्त पदारथ बहु विधि लहै ।
रुति[1] बसंत मास वैसाख, पांचैं दिवस उजालो पाख ।।२७३।।

राति पाछिली निश्चौ जाणि, संपति कामिणि बहुत सुजाणि ।
कुसल खेम तुम मिलिसी आइ, सोक तुम्हारा मन को जाइ ।।२७४।।

मुनिवर बचन सुण्या मन लाइ, भयो हरष अति अंग न माइ ।
मुनिवर अजिका बंद्या बहु भाइ, कमलश्री पहुंती निज ठाइ ।।२७५।।

वस्तुबन्ध

प्रीतम पुत्र विजोग अति, कमलश्री बहु दुख पाइयो ।
पूर्व कर्म कुमाइयो, पाछै सुंदरि उदै आइयो ।।
बचन सुण्या मुनिश्वर तणां, उपनो हरष अपार ।
भवसदत्त जहि दीप छै, तहि को सुणो विचार ।।२७६।।

चौपई— कमलश्री दिन गिणती जाइ, बरस मास बहु रै मनलाई ।
या तौ कथा हथणापुरि रही, कहो कथा जो तिलकपुर भई ।।२७७।।

भविष्यानुरूपा का प्रश्न

एक दिन भीलाणइ संत, बात पाछिली भासी कंत ।
पहली बात जके तुम कही, ते सहु स्वामी वीसरि गई ।।२७८।।

कौण देस नग्र तुम तात, आया इहां कौण के साथि ।।
सहु बिरतांत कहै आपणो, जिम संसौ भाजै मन तणो ।।२७९।।

भविष्यदत्त द्वारा मन में पश्चात्ताप करना

भवसदंत्त सुणि कामणि बात, पायो दुख पसीनो गात ।
हौं पापी तसु कीयो बिस्वास, माता की नवि पूरइ आस ।।२८०।।

---

१. क ग प्रति रुति ।

सींचै माली तरु बहु भाइ, तिस का पाछै सो फलु खाइ।
बहु उपगार कीयो मुझ मात, सो[1] तिहि की बिसरि गयो बात ॥२८१॥

बारह वर्ष भोग मैं गया, मात पिता सहु बिसरि गया।
धन संपति सोइ जगि सार, कीजै सजन तातैं उपगार ॥२८२॥

हौं पापी मति हीणौं भयो, मात पिता न बि सोधौं कीयो।
कोइ किसकौ सगो न होइ, स्वारथ आप करें सहु कोइ ॥२८३॥

पार्व द्रव्य तही को सार, जो पर जोग्य करे उपगार।
जिणवर थानि पतिष्टा करेइ, दान चयारि तिहुं पात्रां देइ ॥२८४॥

उदिम करिबि ईहां थे चलौं, सम्पति ले माता नैं मिलौं।
भवसदत्त मनि सोची बात, कामिणीस्यौं भाखै बिरतांत ॥२८५॥

भविष्यदत्त द्वारा अपना परिचय देना

सहु सनबंध सुणौं कामिणी, विधिस्यौं बात कहो आपणी।
भरथ क्षेत्र हथणापुर थान, धनपति सेठ द्रव्य को निधान ॥२८६॥

कमलश्री तिहि की कामिनी, भगति देव गुर सास्त्रां तणी।
भवसदंत्त है तहि को लाल, सुख मैं जात न जाणौं काल ॥२८७॥

दुजी तीया सेठि कै जाणि, रूपणि नाम रूप की खानि।
बंधुदत्त तहि को जाईयो, रत्नद्वीप बिणिज ही चालियो ॥२८८॥

हम पणि सासु साथि गम कीयो, मदन दीप साथि ही आइयो।
बंधुदत्त करि कूड कुभाव, छाड्यौं मदन दीप बन ठाउ ॥२८९॥

पापी आपण गयो पलाहि, छांडि[1] गयो मुझ दुख बन माहि।
कर्म जोगि जुनौं पंथ लह्यो, पुन्य उदै तुम मेलो भयो ॥२९०॥

इहु बरतांत हमारो जाणि, कर्म जोगि पायो इहि थान।
कामनि उद्दिम कीजे कोइ, जहि थे हथणापुरि गम होइ ॥२९१॥

---

१. ख प्रति—छाडिउ हो उद बासना माहि।

उद्दिम सगली बातां सार, उदिम थे पावै सिवद्वार।
उद्दिम करै कर्म फल होइ, बावै जिसा तसु फल जोइ ॥२६२॥

उद्दिम करता हमैं न कोइ, उद्दिम करता सुगति होइ।
उद्दिम करि जे चारित्र धरै, तोडै कर्म सिद्ध संचरै ॥२६३॥

सगली बाता उद्दिम भलौ, संपति लेइ जल तीरां चलौ।
पंथी प्रोहण आवत जात, हथणापुर जाजे तहि साथि ॥२६४॥

कामिनी सुणी कंत की बात, मान्यौ बचन विकास्यौ गात।
चालौ पंथ जहां सागर तीर, दाख बेलि बन गहर गंभीर ॥२६५॥

मंडप दाख सु मह्रा उतंग, बंधी धुजा सुभ अधिक सुचंग।
नग्र मध्य जे वस्त निधान, आण्यौ सहु मंडप कै थान ॥२६६॥

मोती माणिक बहुत कपूर, चंदन किस्नागर की चूर।
जाति जाति का मेवा घणा, ढीगली आणि किया तहि तणा ॥२६७॥

भवसदंत्तरू उभौसाण, सुखस्यौं सं तिष्ठौ[1] मंडप थान ॥
सुं जै भोग सही मन तणा, सुर्ग देव जिम देवांगना ॥२६८॥

बन्धुदत्त के जहाज का आगमन

रहिता तहां केइ दिन गया, बंधुदत्त प्रोहण आइया।
दमडी एक न पूंजी रहयौ, पाप जोग सगलो खोइयो ॥२६९॥

फटा वस्त्र अति बुरा हाल, दुर्बल अस्ति उतरी खाल।
बंधुदत्त दूरि थे जोइ, जलधि तीर धुजी लहकाइ ॥३००॥

वाण्या वास्यौं करै तलाश, देख्यो जाइ कौण तहि थान।
नाव थैसि वाण्या चालिया, भवसदंत्त कै धानकि गया ॥३०१॥

मन माहै आलोचै कोइ, ईहु को देव देवांगना होइ।
नम्या चरण धरती धरि सीस, गौवरि महेस विसवावीस ॥३०२॥

---

१. क ग प्रति — निवसै।

सकलप विकलप बाण्या करै, उद बस बन मैं किम संचरै ।
तब लग बेगि पोत आइयो, बंधुदत्त उतरि देखियो ॥३०३॥

सो अति मन मैं करै विचार, इह देवी इह नाग कुमार ।
बन मांहि बन क्रीडा करै, दुष्ट जीव की संक न धरै ॥३०४॥

कै नाराइण लिखमी होइ, अैसो रूप न दीसै कोइ ।
इहि परतखि गौरज्या महेस, चंद्र सहित जिम सोभै सेस ॥३०५॥

बाण्या सहित बिनौ बहु कीया, भवसदत्त का पग बंदिया ।
कमलश्री सुत जाणी बात, इहु तौ बंधुदत्त को साथ ॥३०६॥

भविष्यदत्त बंधुदत्त का मिलन

लेै[1] आलिंगन बारंबार, मिल्या भाइ हरष अपार ।
कुसलखेम बूभी सहु सार, जैसो सजन को व्योहार ॥३०७॥

हौ स्वामी गति हीणौ भयो, तु एकाकी बन मैं छांडियो ॥
अैसी नवि कोइ करै न बात, खिमा करौ हम उपरि भ्रात ॥३०८॥

पाछै हौं पछितायो घणौ, जाण्यौ ध्रिग जनम आपणौ ।
तुम विजोग उपनौ बहु सोग, विष सम छोडियै सब ही भोग ॥३०९॥

राति दिवसि मुझ खोजत गयो विकलौ कौड़ी एक न लह्यो ।
अैसा मन मैं उपनी बात, जै हौं घरि जास्यौ कुसलात ॥३१०।

मात पिता बूझैं करी मान, भवसदत्त छाडिउ कहि थान ।
मुझ नै उतर न आसी कोइ, अदन सहोस्योकालो होइ ॥३११

मेरो दुस्ट बस्त्र को हीयो, मैं एकाकी बन मैं छाडियो ।
पुन्य घड़ी अब भाइ भ्रात, आवत दुवै मिल्या कुसलात ॥३१२॥

भ्रात वचन मुझ लागै भणौ, जिम भाजै संसौ मन तणौ ।
कौण नग्र हौ छै बिसाल, कन्या रतन लही सुकमाल ॥३१३॥

---

१. क ग प्रति लीया नारेल ।

वस्त अनोपम ल्याया सार, तिहि कौ स्वामी करौ विचार ।
दुर्जन सुणै होयो अति दूणै, सजन सुनै सुकीरति भणै ।।२१४।।

भविष्यदत्त का उत्तर

भवसदंत सुणि भाई बात, हसि बोल्यो सुणि हो तु भ्रात ।
शुभ अर असुभ उपायो होइ, तिहि का फल नर भुजै सोइ ।।२१५।।

कर्म बिना नवि कोय सार, कर्म बिना नवि लहै लगार ।
जैसो कर्म उदै होय आइ, तैसो ताहा बांधि ले जाय ।।२१६।।

हम पूर्व सुकृत संग्रह्यौ, भली वस्त कौ मेलो भयो ।
सुख दुख दाता को नवि जान, दीसै सहु कर्म विनाण ।।२१७।।

सुख दुख दाता कोई नहीं, भाई को नवि देवै सही ।
चहुंगति मध्य जीव संचरै, पाप पुन्य ते साथि हि फिरै ।।२१८।।

लाधो वस्त न करीजे हरष, गई वस्त को न करो दुख ।
यहु बात मध्यस्थ जु रहै, तिहि कौ सुजस इन्द्र वर्णवै ।।२१९।।

कामणि जोगो दुवो दीयो, बंधुदत्त नै भोजन कीयो ।
बाण्या सहित करी ज्योणार, पान सुपारी वस्त्र अपार ।।२२०।।

सब दालिद्र तसु राल्यौ चूरि, ओढण वसन दिया भरपूरि ।
भवसदंत मनि नही गुमान, बंधुदत्तनै दीनो मान ।।२२१।।

वस्तुबंध

भलो दीठो तिलकपुर थान, भवसदंत बहु भोग कीन्हा ।
चन्द्रप्रभ जिन पूजा कीनी, लिया द्रव्य सहु साथि लीनी ।।
सागर तटि तहि थिति करै, भाइ मिलियो आइ ।
अवर कथा आगै भई, सबै सुणौ मन लाइ ।।२२२।।

चौपई— भवसदंत बोल्यो सुणि भ्रात, भली भई आया कुसलात ।
बचन कहौ तुम आगै भलो, तीया सहित हमनै ले चलो ।।२२३।।

द्वादस वर्ष भोग में गया, मात पितान की सुधि न लहया।
अब हमनें इहु दीजे दान. ले चालहु हथणापुर थान ।।३२४।।

बंधुदत्त सुणि भाई बात, हरषो चित विकास्यौ गात।
स्वामी हौं सेवग तुम तणौं, भगति बंदना करिस्यौं घणो ।।३२५।।

भविष्यदत्त एवं भविष्यानुरूपा का जहाज में चढ़ना

भवसदंत की द्रव्य लीयो, सहु संमदाइ पोत में दीयो।
सागर तीर प्रोहण खडो, भवसदंत तिया साथिहि चढो ।।३२६।।

भवसदत्तस्यौं भासै तिया, बस्त दोइ वीसरि आइया।
नागसेज्जा कामम्रू'दडी, रही दाख मंडप तलि पड़ी ।।३२७।।

भविष्यदत्त का पुनः द्वीप में जाना

वेगि जाहु ले आवो कंत, जहि विण क्षण एक रहै न चिंत।
मान्यो बचन तिया जे कह्यो, भवसदंत तहां उत्तरि गयो ।।३२८।।

बन्धुदत्त द्वारा पुनः विश्वासघात

बंधुदत्त बहु कुड कुमाइ, तंक्षण प्रोहण दीयो चलाइ।
पापी सोची माहीं बात, दूजा कीयो विश्वासघात ।।३२९।।

सज्या नागमूदडी लीयो, भवसदंत तहि थानकि गयो।
थिठि न पड़ै तहां प्रोहण थांन, भयो कुमारि मन मांहि गुमान ।।३३०।।

हो विधिना अति अचिरज भयो, प्रोहण थानक वीसरि गयो।
सागर तीर फिरिउ तम्हि थान, दीसै नही पात सहिनाण ।।३३१।।

उचौ चढि देखै निरताइ, प्रोहण चालै सागर मांहि।
उचौ कर करि सबद कराइ, प्रोहण चाल्या तीरजि माइ ।।३३२।।

भविष्यदत्त का मूच्छित होना

चित्त एक क्षण रहै न धीर, मूरछा आइ पड़ी उरवीर।
सरण नबि दीसै कोइ, पडियो भूमि मरो जिम होइ ।।३३३।।

सीतल बाइ सरीर लागीयो, गइ मूर्छा उठि जागियो ।
दाख बोलि को मंडप जांहा, ध्याल्यो भवसदंत्त गयो तांहा ।।३३४।।

देखि कवर तहां सूनो थान, मन मैं दुख करै असमान ।
मोह जड़ित बोलै बाउलो, म्हाज कामनी वेगी मिलो ।।३३५।।

तहि थे चालो कमलश्री बाल, पसु जाति दीठा विकराल ।
हरण रोभ सूवर सांवरा, भैंसा रीछ महिष अति बुरा ।।३३६।।

ध्याहस्यो तणी विनो करि घणो, कहै संदेसो कामिन तणो ।
चाल्यो वेगि नग्र मैं गयो, तहां सूनो थानक देखियो ।। ३३७।।

करता भोग गावता गीत, ते थानक दीठा भैभीत ।
कामिणि धन ले विधना दीयो, पाछै सुपनो सो करि गयो ।।३३८।।

सुमरै सुख कामिणी तणा, तिम तिम दुख उपजै अति घणा ।
फिरि फिर सर्व नग्र देखियो, चंद्रप्रभ जिण मन्दिर गयो ।।३३९।।

सोग सर्व छाडिउ तहिवार, जिणवर चरणा कीयो जुहार ।
गुणग्राम भास्या बहु भाइ, जिहि थे पाप कर्म क्षौ जाइ ।।३४०।।

दोहड़ा हियडा संवर घीयड़ी, दुख न करी अतीव ।
कर्म नचावै जिम नचै, तिम तिम नाचै जीव ।।३४१।।

सुख दुख जामण मरण अति, जहि धालकि जो होइ ।
घडी महूरत एक क्षण, राख सकै नही कोइ ।।३४२।।

चौपई भवसदंत्त जिणवर के थान, भासै कथा रूप भोसाण ।
कंत विजोग बहुत दुख करै, असुर धार नेत्रा थे भरै ।।३४३।।

बंधुदत्तस्यौ बोलै गालि, रे पापी फिरि मुख दिखालि ।
भाई नै बहु संकट धरै, असा कर्म नीच नवि करै ।।३४४।।

भविष्यदत्त द्वारा चिन्तन

करै विसासघात ज कोई, नरक तणा दुख मुंजै सोइ ।
पापी नै नवि आई दया, हरत परत तुम्ह तज्यौ गया ।।३४५।।

कै हौं विधना कीना दुखी, पापी राकसि कांई न भखी।
कामिणि कंत बिछोहो कीयो, सो पाप मुझ उदै भाइयो ॥३४६॥

कै भवगाल्यो जिणवर देव, कै मिथ्याती गुरु की सेव।
कै कुदान दीना बहु दाति, कै मैं भोजन कीनो राति ॥३४७॥

पूर्वे कंत परायो लीयो, तिहि विधना मेरो छीनियो।
माता पुत्र विछोहो कोइ, विघना सजा लगाई मोहि ॥३४८॥

सहु आभरण दीन्हा रालि, तजो तंबोल पान सहु फालि।
कहि कंत को सोधो कोइ, बस्त्र कनक सहु मुकतो होइ ॥३४९॥

बन्धुदत्त की निर्लज्जता

बंधुदत्त कुण छोडी लाज, जाणों नही काज अकाज।
पापी कै मन रहै न ठाइ, भावज कै नखि बैठो आइ ॥३५०॥

जिम कूकर परकावै पूंछ, भावज हाथ लगावै मुंछ।
है कामिणि करि दया पसाव, राखो बोल हमारो भाउ ॥३५१॥

भविष्यानुरूपा का विरोध

सुणि बोली कुलवंती नारि, रे पापी कहि बात विचारि।
बडा भ्रात की कामिणी होइ, माता जसी गिणै सहु कोइ ॥३५२॥

कर्म इसा न करै कुल बाल, भावज घरै तूम चिंडालु।
रे मूरख मन राखी ठाइ, पाप उपाइ नरक गति जाइ ॥३५३॥

पापी मद को अन्धौभयो, मानै नही भाउज को कह्यो।
जिम पापी मूंडो मन करै, तिम तिम पोत अधो संचरै ॥३५४॥

सतवंती को सील सुभाइ, बुडै पोत वणिक बिललाइ।
उछलै पवन झकोलै नीर, बूडै बाण्या बस्त गहीर ॥३५५॥

रिसि करि बाण्या बोलै बात, तुम पापी सहु मोल्यो साथ।
पाकडि हाथ दूरि ले कीयो, बचन कहि बहु निर्भंदियो ॥३५६॥

भौसाण-रूपस्यौ बिनती करैं, तुम कोप साथा सब मरैं ।
तुम सतवंती निर्मल भाव, हम उपरि करि छमा पसाव ।।३५७।।

जे पछिम दिस ऊगै भान, को नबिभानै सील निधान ।
माता संक चित्ति मत करौ, होसी सही बुरा कौ बुरौ ।।३५८।।

बण्यक पुत्र सह रख्या करैं, बंधुदत्त नवि नेत्र संचरैं ।
भवसदत्त त्रिया क्षमा कराइ, तिम तिम प्रोहण चाल्या जाइ ।।३५९।।

सती करैं मन माहैं चिंत, मुझ बिजोग मरिसी सुत कंत ।
हौं पणि मरिस्यौं तासु बिजोग, असौ भयो कर्म संजोग ।।३६०।।

भविष्यानुरुपा को स्वप्न

रैंणि समैं सूती सत भाइ, सुपनो कह्यौ देवता आइ ।
हे सुंदरि तुम न करौ चिंत, मास एक मिलिसी तुझ कंत ।।३६१।।

सुपनौ सुभ कामिणी देखियो, सुभ मन धीर आपणो कीयो ।
मिलिसी कंत मास जे आइ, प्राण हमारा रहसी ठाइ ।।३६२।।

जहाज का समुद्र तट पर आगमन

चलत चलत केइ दिन गयो, प्रोहण सुमद तीर लागियो ।
बणिक उतरैं प्रोहण भार, बस्त किराणा चीर भंडार । ३६३।।

बालदि भरी बस्त बहु सार, बंधुदत्तस्यौं वणिक कुमार ।
रली रंग सब ही मनि भया, हथणापुरि तंखण पहुंचिया ।।३६४।।

बन्धुदत्त एवं धनपति सेठ का मिलन

पहुता नभि बधाई हार, बंधुदत्त आगम व्योहार ।
सुणी बात धनपति सुख भयो, ले बाजा बहु सामहु गयो ।।३६५।।

भेटि पुत्र बहु भयो उछाह, बाज्या बहु नीसाण घाव ।
वणिक पुत्र बहु भयो उछाह, पुत्र नग्र में ल्यायो साहु ।।३६६।।

सजन लोग बहु संतोषिया, दुर्जन का मन काला भया।
दिया तंबोल सेठ बहु भाइ, कामणि गीत वधावा गाइ ॥३६७॥

चाल्या था जे वाण्या साथि, कमलश्री तसु बूझै बात।
बंधुदत्त को बहु डरै करै, समाचार नवि को उचरै ॥३६८॥

कमलश्री का पुनः आर्यिका के पास जाना

कमलश्री मनि भयो गुमान, गय वेगि अजिका कै थानि।
नेत्र असरपात बहु करै, पुत्र विजोग दुख अति करै ॥३६९॥

नमसकार करि बूझै बात, पुत्र हमारो न आयो मात।
दाभै देह अधिक अकुलाइ, समाचार कोन कहै माय ॥३७०॥

अजिका बोली सुणि सुंदरि, बेटा को तु ना डर करी।
मुनिवर अवधि दिवस जो कही, पुत्र तुम्हारो आसी सही ॥३७१॥

पछिम दिस जे उगै भाण, मुनिवर भूंठ न करै बखांण।
कर्म जोगी परबत पणि फिरै, मुनिवर मुख भूंठ न नीसरै ॥३७२॥

अजिका बचन लह्यो संतोष, जैसो मुनिवर पायो मोख।
सुणी बात जे अजिका कही, कमलश्री निज थानकि गई ॥३७३॥

बंधुदत्त मिलिबा आइयो, कमलश्री का पद वंदियो।
कुसल खेम सहु बूझी सार, जैसो पुत्र मात व्यौहार ॥३७४॥

कमलश्री बूझै दे मान, भवसदत्त छाडिउ कहि थान।
समाचार सुत साचा भणो, जिम संसो भाजै मन तणो ॥३७५॥

बंधुदत्त बोल्यो सुणि माइ, कुसल क्षेम तिष्टै तहि ठाइ।
धन संपति तहि बहुली सही, वेगो तुमसे मिलसी सही ॥३७६॥

हमनै जैसो देखो इहां, तैसो सुत नै जांणो तहां।
कमलश्री सुणि बहु सुख भयो, बंधुदत्त निज मन्दिर गयो ॥३७७॥

अन्तिम पाठ

मूलसंघ सारद सुभ गछि, छोडि चारि कषाइ निरभंछि ।
अनंतकीर्त्ति मुनि गुणह निधान, तास तणो सिषि कीयो बखाण ।।१५।।

वरह्म राइमल थोडि बुधि, अखर पद की न लहै सुधि ।
जैसी मति दीनो प्रकास, व्रत पंचमी को प्रगास ।।१६।।

व्रत पंचमी जे को करै, केवल उसमतहि नै फुरै ।
जे याह कथा सुणैं दे कान, काल लहवि पावै निर्वाण ।।१७।।

सोलाहसै तेतीसा सार, कातिग सुदि चौदसि सनिवार ।
स्वाति नक्षत्र सिद्धि सुभ जोग, पीडा दुख न व्यापै रोग ।।१८।।

देस ढूंढाहड सोभा घणी, पूजै तहां अली मन तणी ।
निर्मल तलै नदी बहु फिरि, सुबस बसै बहुत सांगानेरि ।।१९।।

चहुं दिसि भलो बण्यो बाजार, भरे पटोला मोती हार ।
भवण उत्तंग जिणेसुर तणा, सोभै चंदवो तोरण घणा ।।२०।।

राजा राज करै भगवंतदास, राजकंवर सेवै बहु तास ।
परजा लोग सुखी सुख वास, दुखी दलिद्री पूरै आस ।।२१।।

श्रावक लोक बसै धनवंत, पूजा करै जपै अरहंत ।
उपरा उपरी बैर न कास, जिम इंद्र सुर्ग सुखवास ।।२२।।

आखर मात ज भूलौ होइ, पंडित जन सहु क्षमिज्यो मोहि ।
अति अयाण मति थोडी भई, कथा पंचमी व्रत की कही ।।२३ ।।

बार बार नवि भणो पसार, जग में जीव दया व्रत सार ।
जो नर जीव दया कौ पाल, रोग सोग नवि व्यापै काल ।।२४।।

इति श्री भवसदंत चउपइ[1] संपूर्ण ।

---

1. क प्रति कथा ।

परमहंस चौपई

रचना काल सं० १६३६

ज्येष्ठ कृष्ण १३ शनिवार

रचना स्थान तक्षकगढ (टोडारायसिंह)

प्रारम्भ

दोहा— परमहंस सती गुण निलो, जो बंदे बहु भाइ
तीह को परगाहु बरणऊ, सुनहु भविक मन लाई ॥२६॥

जाँहु समरन टूटे सब कष्ट, करम तणा बहु भार।
पहुं गत मध्य फीरे नहीं, ऊतरे भव जल पार ॥२७॥

चौपई— परमहंस राजा सुभ काज, धरे चतुसट्य लखमी राज।
नीसचय तीन लोक परमाण, जीम सोवरण पती गुन जाण ॥२८॥

येहालो सियाला जांसो, दोलुहु नांम रहुछे तांसो।
चोर अक्रुर पती हूं ढन जाई, घर घर भीतर रही समाई ॥२९॥

परमहंस के स्त्री चेतना, नीरमल गुन प्रति सोभै घना।
तीह की महीमां जाई न कही, परमहंस न प्रति चालही ॥३०॥

पुत्र च्यार सोभै अति घना, सुख सत्ता बोध चेतना।
परमहंस सुख भुंजे एव, सकलप विकलप रहतसुं देव ॥३१॥

फिरत फिरत मया तिहां गई, परमहंस सु भेंटा भई।
मया भण विनो कर घनो, स्वामी सुजस सुन्यो तुम तणो ॥३२॥

कीरत पसरी तीनुं लोक, गुन अनंत तुम हरष न सोक।
सुध सुभाव तुम्हारो रूप, निराकार सुख तीसट भूप ॥३३॥

सुन स्वामी मेरी बीनती, बहु कामणी तिन में हूं सती।
हरि हर ब्रह्मा ढूंढे मोह, तप जप सील छोड दे सोह ॥३४॥

स्वामि हुं सती चतुर सुजान, पुरष कुपुरष कहो परमान।
लोभी हुं कर बूझै बात, करे बीसास पछे तसु घात ॥३५॥

मैं माया बहु जग धंधियो, ठाई सहत कोई न बीगयो।
मैं हीयडा में देख बिमास, आई स्वामी तुम्हारे पास ॥३६॥

हाथ जोड बीनती करूं अड़ी, हम तो फूडग लई आपडी ।
कै तो परमहंस ने वरूं, नहीं तर अकत कवारी मरूं ।।३७।।

खोटी वसत जु दीजे राल, जीह थें पाछें आव गाल ।
खरी वसत को कीजे अंगीकार, तिहं ते सुजस लहै संसार ।।३८।।

परमहंस माया सुन बैन, उपनो हरष विकासे नैन ।
ईह सम भोग भोगवं घणो, सफल जमारो हो हम तणो ।।३९।।

परमहंस तब कियो विचार, माया कुं कर अंगीकार ।
पटरांणी राखी कर भाव, परमहंस कं मन अती चाव ।।४०।।

दसुं प्राण सुत माया तणा, त्यांका भेद भाव छं घणा ।
कर कलोल आपने रंग, जिम अटवी कर फिरै सुचग ।।४१ ।।

स्पर्सना रसन घ्रान चक्षु कांन, त्यांह का विषै अधिकहु बांन ।
दिसा तणी नवी मानै आंन, फिरै सु इच्छा थांन कुथांन ।।४२।।

मन पापी जु पाप चितयो, पिता बांधि तब बंदि महि दयो ।
परमहंस सबही राम भयो, सकल लिषाई मूरख हुव गयो ।।४३।।

राजा मन जु राज भोगवं, इंद्री सहीत जोर-अती हुवं ।
राजकुंवर परणी दव नारी, परवृत्यरु निरवत्य कुमारी ।।४४ ।।

आई कुमरि जहैं बंदीखान, परमहंस दुख देखे जान ।
सकल दरसन चारीत धरनै, तिह का दुख बरणवं कुन ।।४५।।

मन की तीया प्रवृत्य गहीर, मोह पुत्र जायो बरवीर
तीन लोक मैं तीह की गाज, सत्तर कोडा कोडी साज ।।४६ ।।

सो मोह सगलो संसार, धन कुटंब मांड्यो पसार ।
गति चार मैं फिरावँ सोई, घाले जाल न निकसे कोई ।।४७।।

दुजी कामनी सो मन तणी । निरवृत्य नारी सुलखणी ।
तीह कै पुत्र भयो अती धीर, नांव विवेक सुगुनहु गहीर ।।४८ ।।

भाव नीत मारग व्यौहार, खोटो खरो परीख्या करै ।
देव सास्त्र गुरु जानै मरम, श्रावक यती तणो सहु धरम ।।४९।।

सब जीवन कुं दे उपदेस, जिह थे नासै रोग कलेस ।
कहु विवेक सु बात विचार, सुणह इछा सुख संसार ।।५०।।

वस्तुबंध—परमहंस वंदु प्रथम, जिह सुमरण सहु पाप नासै ।
दंसन णाण गुननीलो, दिष्ट केवल अरथ भासै ।।
द्विग् विषा... तिहैं कीयो, कर माया सुसंग ।।
तिह के मन सुत उपनो, चंचल अधिक सुचंग ।।५१।।

दोहा— मन कै दक सुत उपना, मोह विवेक सुजांण ।
मोह प्रजा कुं पीडवै, विवेक भलो गुण जान ।।५२।।

चौपई— मन राजा अब बेटो वहै, माया जोग देखन सहै ।
व्याहे पुत्र चेतना तनां, छांड गया नीसचैथ पाटणां ।।५३।।

आणै सब कुटंब कुसंग, माया तणो उछाह सुचंग ।
मन बेटो दीठो बलवंत, मन मोह माया विहसंत ।।५४।।

सोक दुखै माया चेतना, भोसा मनका सोक्या तनां ।
उपरा उपरी करै विरध .... – ।।५५।।

बेटा पास गई चेतना, परमहंस छोडी तखिणा ।
कोई किसका छिदग कहै, पुत्र सहित सुखी सो रहै ।।५६।।

माया मनसु कहै हसंत सुनो बात मेरी गुनवंत ।
थारो पुत्र विवेक कुमार, करसी घर में यकोकार ।।५७।।

सीख हमारी करज्यो एह, वेगों बंदी घांन इह देह ।
दुसट भाव ईह दीसै घणो, मान्यो सही बचन तुम तनो ।।५८।।

सुनी बात तब माता तणी, तब बहुत संका उपनी ।
मन प्रपंच मांडियो अनेक, तखीन बांध्यो साधु विवेक ।।५९।।

तब निवृत्य सु बहु दुखभरी, परमहंस सु बीनती करी ।
सुसरा मेरो पुत्र छुडाई, दोष बिना बंध्यो मनराई ।।६०।।

परमहंस जंपै सुन बहु, एह परपंच माया का सहु ।
निरात्तै पटन छै चेतनां, तिहु कै पास जाहु तंबीनां ।।६१।।

थ्योरी बात हमारी कही, थारो पुत्र छुडावै सही ।
तंव नीवृत्य गई तबीनां, निसचै पटन जहां चेतनां ।।६२।।

सासु लना बंदीया पाई, बात कही दुख की नीरलाई ।
राजा मन बंध्यो मुक्‍ नंद, कवर विवेक अधिक गुनवंत ।।६३।।

[illegible]महंस सुन मैं [illegible], [illegible] बात होइ सो भली ।
हमनै माल करो उपगार, छूटै जिम विवेक कुमार ।।६४।।

सुनी बात जु निवृत्य तनी, प्रती चेतना दया उपनी ।
निवृत्य सेती कहु सुभाई, पुत्र छुटाई करो उपाई ।।६५।।

प्रवृति को अती हरष्यो हीयो, मेरो राज निकंटक भयो ।
मन राजा सु कहु हसंत, मेरी बात सुनो गुणवंत ।।६६।।

मोह पुत्र थारो वर वीर, माता पिता को सेवक धीर ।
स्वामी देइ मोहनै राज, सीरो सब तुम्हारो काज ।।६७।।

मन राजा प्रवृत्य वस भयो, राल्यो नहीं श्रीया को कयो ।
राज विभूति तनो सहु साज, मोह बुला दीयो तिही राज ।।६८।।

पाप नगरी का वर्णन

मोह राव ठकुराई करै, दुरजन कोई धीर न धरै ।।
तिहु को अधिक तेज प्रताप, जाउ नगरी बसावै पाप ।।६९।।

पुरी अग्यान कोट चहु पास, विसना षाई सोभै तास ।
च्यारू गति दरवाजा बण्यां, दीसै तिहां विषवन घणां ।।७०।।

जेता बहुल असुध वर णाम, उंचा मंदीर दीसै ठाम ।
कुप्राचार तणो चहुं वास, कोई कीसही को न वीसास ।।७१।।

मिथ्या दरसन मंत्री तास, सेवक आठ करम को वास ।
क्रोध मान डंभ परपंच, लोभ सहूत तिहां नीवसै पंच ॥७२॥

पंद्रह प्रमाद मंत्र तसु तणां, तिह सु मोह करै रंग घनां ।
रात दीवस ते सेवा करै, मोह तनी बहु रख्या करै ॥७३॥

सातौं विसन सुभ्र गती राज, जानै नही काज अकाज ।
निगुणां सघि सभा असमान, सौभै दुरगति सिंघासन थांन ॥७४॥

चवर ढलै गित विश्ररत नीसाल, छिद्र पुरोहीत पठतु कुस्याल ।
कुड कपट नग्र कोटवाल, पाखंडी पोल्या रखवाल ॥७५॥

तिहको कुकवी रसोईदार, चोबीसु परिग्रह भंडार ।
कंदल कलह अग्र कोठार, नंदी वैहद् बोल अपार ॥७६॥

असत छागल्यो पाबरीण, चोर खवास तास वरवीर ।
महाकुसील पयादा तास, पाप नग्र में तिह् को वास ॥७७॥

परगह सबल कषाई पचीस, पचपन मोह तनो सगतीस ।
ऐसो पाप नग्र को वास, भली वस्त को तीहां विनास ॥७८॥

निसचै नग्र पुत्र चेतना, तीह् की बात सुनो भवीजना ।
निवृत्य पुत्र की बीनती करी, तब चेतना बात मन धरी ॥७९॥

जहां सुमन राजा छं वली, तिहउं कुमति आप मोकली ।
दीन्हीं सीख बहुत नीरतार, दीजे वेग विवेक छुडाई ॥८०॥

तुमछो कुमति ठगोरी असी, मन राजा दीसै पघलसी ।
सोही कीज्यो चित विचार, छुटै बेग विवेक कुमार ॥८१॥

लीन्ही सीख कुलस्त तब गई, मन द्वारए जाइ ठाढी भई ।
पोल्या लषहु दीनो मान, प्रवृत मन राजा को थांन ॥८२॥

हाव भाव तीहां कीया घना, बहुतक चिरत कामनी तना ।
देखत मन अती भयो विकास, बीनो करी बहु चूक तास ॥८३॥

तुम छो कुंन तुम्हारो नाम, दीसो चतुर केन थित ठांम ।
जिह कारन आई हम भणी, ते सहु बात कहो आपणी ॥८४॥

बोली कुमति जोडीया हाथ, वीनती सुनो हमारी नाथ ॥
सूरग तणीहुं देवांगनां, तेरा सुजस सुन्या हम घणां ॥८५॥

मेरा मन बहु उपनो भाव, भली बात देखन को चाव ।
छोड देव आई तुम थांन, तुम देखत सुख पायो जान ॥८६॥

मन राजा तसु सांभली बात, उपनो हरष विकास्यो गात ।
भगन संग लुणी गल जाई, मन राजा बोलो हस भाई ॥८७॥

दीठी जीया घनी अवलोई, तुम सम रूपन दीठो कोई ।
सुंदरी हम पे करो पसाव राखो बोल हमारो भाव ॥८८॥

करो हमारो अंगीकार, पटरानी सुख भुजो सार ।
वसत विभुती हमारें घनी, तिहकी सुंरनु खसमणी ॥८९॥

बोली कुमति सुनो मन जांन, कह्यो हमारो अंगीकार ।
पटतो हम तुम घर वा सोई, होई विधना लिख्यो न मेटै कोई ॥९०॥

बंध्यो पुत्र विवेक कुमार, ते छोडो ल्यावो मती बार ।
जिह धरी बंदी खानो होई, भलो मनाव तिहां न कोई ॥९१॥

मन बोल्यो मत करो विषाद, यह तुमनैं दीन्हों परसाद ।
साकुल काट हीयो मुकलाई, तंदिन गयो माल पै जाई ॥९२॥

कामी पुरष ज कोई होई, कामनी कह्यो न मेटै कोई ।
तिह को छांदो छावैं घनो, इदह श्रुभ काह कामी नर तनो ॥९३॥

आयो निहचै पटन ठाव, मात चेतना बंधा पाव ।
कह्यो पाछलो सहु व्योहार, सुखसुं रहै विवेककुमार ॥९४॥

वस्तु बंध- देख पुत्र निवृत्य सुकमाल, बहुत हरष उछाह कीन्हो ।
कीयो उपगारन चेतनां, तासुं बहुत सनमान दीनो ॥

सबही तस पुरमौं उपनो सुख अपार ।
निहचै पट्टन में रहै निवृत्य विवेककुमार ॥

चौपई— निवृति सुं जंपै चेतना, सांभल बहु वचना हम तनां ।
पापी मोह दुसह सुभाव, पर पीड़ा चितवन सुहाव ॥६६॥

जाई जे छोड मोह को देस, जाई तुम्हारो सब कलेस ।
रहो जाई तुम नीकैं जान, जिठ चारीतह सुभ जान ॥६७॥

सांभली बात चेतना तनी, विवेक निवृति चाल्या तंखिना ।
चलत पंथ जब आधा गया, हंसा देस असुभ दे विया ॥६८॥

पाप नगरी दीसै तह रुद्र व्योहार, उपरा उपरी मारै मार ।
हांसि निंद्या तिहां अती ही होई, मारै कोई सराहै लोई ॥६६॥

दया रहत परजा परमांन, बाट घटाउ न लहै ठांम ।
कर बिसास मारै तसु जोग, हिंसा देस वसै जो लोग ॥१००॥

बोलै जको झूठ असमांन, तिहसुं त्यागो तुम सुनि जांन ।
अधिक झूठ एह बोलै वाच, जिह थे टांकर मारै मांच ॥१०१॥

मुखानंद मन मांही घरै, सांच तिहां नवि लगतो फीरै ।
खोटो परख खरी जो लेई, तिहकी कीरत अधिक करेई ॥१०२॥

चोरी कर बहु पाडै बाट, धुंनी मुसै करै धन माट ।
तिहकं बिनो करै अविचार, तुम सम पुरुष नहीं संसार ॥१०३॥

सति अनादि बहुत विगतरै, जे कोई नर चोरी करै ।
सेवै विषै जु इंद्री तनां, तीह की करै भगत वंदनां ॥१०४॥

सेव विवै जे मूढ गंवार, तिह उपर आनंद अपार ।
रुद्र ध्यान रात्यों दिन जाई, कर प्रपच अति मारै भाई ॥१०५॥

सुखन कोई बाकी लेई, तिहनें मारै फांसी देई ।
परजा वसै कसाई रंक, मारत पाप करै नीसंक ॥१०६॥

बाल ग्राम जीव बहु मरै, पापी मनमें संक न करै ।
रुद्र ध्यांन तीहां बहुत सुजान, मारै तहां कीच रली थांन ।।१०७।।

अजि सिचांणां सिंघ तिहां फिरै, जीवत प्रांनी नहीं उपरै ।
अंसो दीसै हंसा देस, मात पुत्र न भयो कलेस ।।१०८।।

× × × × × × × ×

दोहा— ब्रह्म राईमल्ल वंदिया, कह्यो सास्त्र गुरु सार ।
वीर कथा आगे भई, तिह को सुनो विचार ।।२८४।।

चौपई— करै राजं विवेक सुजांन, सुभ समकित मंत्री परधान ।
नीको भलो देई उपदेस, तिहथे नासै रोग कलेस ।।२८५।।

सम्यकित मंत्री अति वलवंत, जे बूझते होई निहचंत ।
नीकी सीख सु देई विचार, तिहथें भोजल उतरै पार ।।२८६।।

पट्टन तनो ग्यांन कोटवाल, रष्या करै बाल गोपाल ।
चार चबाउन को न संचरं, पट्टन परजा लीला करै ।।२८७।।

दुख सोक नवि जाणो कोई, जैसी मुकति पुरी सम होई ।
ग्यान तनों वल अति विसतरै, दुर्जन दुष्टन लगतो फिरै ।।२८८।।

दोहा— विवेकवि भांति सब कही, पुन नगर व्योहार ।।
पाप नगर व्योहार छै, तिन को सुनो विचार ।।२८९।।

मोह राय मन चितियो, मंत्री वेग बुलाई ।
राज हमारो दिढ भयो, कंटक गयो पुलाई ।।२९०।।

कहै मोह मंत्री सुनो, मेरे मन ही कलेस ।
रात दीवति खटको हीये, भागो निवृत्य वाल ।।२९१।।

विवेक वैरी हम तनो, तिहको हम ने दुख ।
छांडि गयो सो सोचकरी, कदे न पावै सुख ।।२९२।।

बडो करि ईही छांडियो, मनमैं वैर न थाई ।
दाव घाव सो वहु करै, पाछै तिह नै धाई ।।२९३।।

सर्प जे मरि पु भज गयो, सोध्यो नाही तास ।
नंदी कडाढ रूषडो, जब तब होई विणास ॥२९४॥

सोध्यो कीज्यो सत्रु को, मंत्री करो विचार ।
दाव घाव सोई करो, मरही विवेक कुमार ॥२९५॥

मन राजा भोलो अरे, छांडै मेरो गहु ।
मन में दया करी घणी, जान आपनो पुत्र ॥२९६॥

वैरी विसधर सारखो, तिह थे रहै सुचेत ।
मूढ जके ढीला बहै, तास मरन को देत ॥२९७॥

मन राजा का पुत्र थे, मोह विवेक सुजांन ।
पूर्व प्रीत भई ईसो, मूसा सर्प समान ॥२९८॥

वेगा चाकर मोकलो, सीधो लावै जाई ।
देस गांव पट्टन फिरो, बात कहो निरताई ॥२९८॥

चौपई — कूड कपट डंडी पाखंड, बिदा दीया च्यारो परचंड ।
देखही धरती बहुत असेस, पट्टन ग्राम गढ देस ॥३००॥

सब बाते बुझै निरताई, रहै विवेक कहो किहीं ठाई ।
बात भेद कोई नवी कहै, च्यारू मनमें बहु दुख सहै ॥३०१॥

पंथी एक मिल्यो तिह ठाम, तिह कै बहुत सरल परिणाम ।
तिह न मांन बहुत कर दीयो, चलतां बाट सरल बुझियो ॥३०२॥

तुम परदेसां फिरता रहो, राजा देस बात बहु लहो ।
कवर विवेक रहै किही थांन, तिह को हम सु कहो बखान ॥३०३॥

बोल्यो सरल सुनो हो मित्त, कवर विवेक तना विरतंत ।
पट्टन पुन्य महा सुविसाल, राज करै विवेक भोपाल ॥३०४॥

दान पुन्य चालै असमान, चोड चबाड नही तिहां थांन ।
सहु परजा जिन शासन भक्ति, जुवा आदि विसन सहु भक्ति ॥३०५॥

सुणी बात सहु पंथी तणी, अपनी अंगिसी लाई घणी।
मान देई बूझी पनहार, कौन नगर भासैं नर नार ॥३०६॥

कौन धर्म चालै इस थांन, तिहु को हम सु करौ बखान।
तब बोली पटन की नार, बात सुनो हो पंथी चार ॥३०७॥

दोष अठारा रहत सुदेव, गुरू निर्गुन्थ सु जानो एव।
बाणी सहीत्त जु जिनवर कही, ग्रैसो धर्म नग्र में सही ॥३०८॥

पाखंडी मिथ्याति होई, आन न देई नगर में सोई।
बात सुनी तब फेरया भेष, लगा देन धर्म को पेष ॥३०९॥

ध्यानी मोनी अति ही भया, तंपिन नगर मध्य चालिया।
बोलैं भजन सुमधुरी भांत, कपट रूप राखीयो मन शांत ॥३१०॥

दोहा— पिछी कमंडल हाथ लै, भेष दिगम्बर धार।
इयां पंथ बहु सोधता, पहुता नगर मंझार ॥३११॥

चौपई— भोजन काज नगर में फिरैं, तास भेद ले लों संचरैं।
कोटवाल ग्यानी मन धनी, चेष्टा बुरी देखी तिहु तनी ॥३१२॥

ग्यांन सुभट चारू बूझिया, भेष दिगम्बर कादि थे लीया।
ग्राया तुहे चोर व्योहार, दीसैं नहीं शुद्ध ग्राचार ॥३१३॥

बचन सुनत्त तब ही खलभल्या, तपिन नग्र मांझ थे चल्या।
मागा दुष्ट हूम पाखड, हुल्या कूड कपट परचंड ॥३१४॥

राव बिवेक सभा सुभ घणी, कोटवाल ग्रायां तिहां भणी।
स्वामि एहु तो जती न होई, कही रावका सेशु जोई ॥३१५॥

सांभली बचन बिवेककुमार, कूड कपट बोल्या तिहं बार।
सांची बात कही निरताई, भूठ कहूं तो लिकपति जाई ॥३१६॥

कूड कपट बोल्या तंपिणां, सूनैं बचन बिवेक हूम तनां।
पाप नगर दुष तनो निधान, राजा मोह बसैं तिहूं थान ॥३१७॥

तुम सोधं राजा मोकल्या, विदा लेई तिहां थे चल्या ।
सोध्या देस नगर गढ ग्रांम, बहुत कष्ट पायो तुम श्राम ॥३१८॥

सेवक जिह को खाई गरास, सोधो कर रहै तिह पास ।
राखा विदा जिहां नै करै, तिहां गया सेवक ने सरै ॥३१९॥

सुणि विवेक सोच मन राव, मोह दुष्ट को जानै भाव ।
कूड कपट तंपिन बंधिया, बंदीषानैं तिहांनं दीया ॥३२०॥

बहुत ग्यालन दीन्हों मांन, अधिक बढाई बहु दे दान ।
सभा लोग सहु कीति करै, ग्यांन छत्ती चोर न संचरै ॥३२१॥

डंभी पुन्य नगर में रयो, पाखंडी पाप नगर आईयो ।
मोह राव नैं कीयो, जुहार, पुन्य नगर श्राइयों ब्योहार ॥३२२॥

सुणी राजा बीनती हम तणी, विकट नगर अति सोभ घणी ।
नहीं लगाव तहां हम तणो, पुन्य नगर फिरि दीठो घणो ॥३२३॥

कोटवाल ग्यांन तिहां रहै, बात पराये मनकी लहै ।
कूड कपट बांधं तंपिणां. तिहठै दुख देसे घणां ॥३२४॥

हम तो भाज आईया ईहां, उभै सुभट तिहठै ही रहां ।
मोह भनै पाखंड कुमार, तुज सदा को भाजन हार ॥३२५॥

डंभी कने छै बहुत उपाई, समाचार सहु कहमी आई ।
तो लग केतईक दिन गया, पापी नगर डंभ आइया ॥३२६॥

मोह राव न कीयो जुहार, कही पाछिलो सहु ब्योहार ।
स्वामि हम तिहां मोकल्या, तिह विवेक कं सोधं चल्या ॥३२७॥

देस घनां बूझ्या फिरताई, पंथी यक मिल्यो तब आई ।
समाचार ओरो सहु कह्यो, पुन्यनगर विवेक जु तिहां रह्यो ॥३२८॥

जाई भेटयो देव जिनंद, देषि विवेक भयो आनन्द ।
दीन्हा बीडा वस्त्र निषान, पुन्य नगर दीनो शुभ थान ॥३२९ ।

बात सही हम पंथी कही, विवेक पुन्य नगर में सही ।
सुनत सुख उपनो अपार, पहुंतो तिहां विवेककुमार ।।३३०।।

कोई दिन बन मांही रह्यो, पुन्यनगर मे छल कर लह्यो ।
लीन्हो ग्यान कोटवाल बुलाई, बुझि बात सर्व निरताई ।।३३१।।

पणविड लोग जांणा तिहां बार, ले गयो तिहां विवेककुमार ।
कूड कपट तिहांरो पिया, हम तो नगर मांझ ही रह्या ।।३३२।।

भागो पाखंड आयो ईहा, हम तो भेद लीयो सहु तिहां ।
दीठा तिहां कोतुहल घणां, दाव घाव विवेक तणां ।।३३३।।

वस्तुबंध

पुन्यपटन बसै सुविसाल, ठाइ ठाइ बहु पुन्य कीजे ।
देव पुज गुरू की विनो, सामाइक पोसो करीजे ।

मन इन्दी तिहां निरोध कीजे, राखै बहु विधि प्रांण ।
बाहिज भितर तप करै, सुध साध व्योहार सुणीजे ।।३३४।।

दोहा— श्रावक मुनि बहुविसतरै महामंत्र नवकार ।
ब्यंब पतिष्ठा जिन भवन, खरचै द्रव्य अपार ।।३३५।।

श्रावक जात का बहु कह्या, जेता वृत्त विधांन ।
अतिचार विनां करै, मन राखै सुध ध्यांन ।।३३६।।

जिनवाणी प्रगटै करै, कथा जे महापुरांन ।
सप्त तत्व नवपद कह्या, सुनो भव्य दे कांन ।।३३७।।

दिन प्रति पुन्य कर घणों, होई पाप को नास ।
परजा सर्व सुखी रहै, पुन्य नगर को बास ।।३३८।।

मिथ्या द्रष्टी पांच जे, तिहां न सुणीजे नाम ।
चलै दुहाई जिनतणी, देस नगर गढ ग्राम ।।३३९।।

थोडा विणज घणो नफो, श्रावक बहु संतोष ।
मन में सोई चितवै, जिहैं वे पाजे मोख ।।३४०।।

पुन्य नगर सोभा घणी, राजा तिहां विवेक ।
संक में मांने काहु की, वस्त भंडार अनेक ॥३४१॥

भनै दंभ सुनि मोहजी, देस तुम्हारै बात ।
द्रब्य परायो लूटजै, कर बिसास सुघात ॥३४२॥

बेटी बेच र द्रव्य ले, सब छत्तीसौं पौन ।
लोभ सरव परजा करै, चित न राखै जान ॥३४३॥

कूड कपट चालै घणों, घर न करै संताप ।
असुध किराणां विणजजे, जिह थे उपजै पाप ॥३४४॥

संसो सोग विजोग बहु, परजा करै पुकार ।
आरत रुद्र सदा रहै, न लहै सुख लगार ॥३४५॥

पाप नगर में जे वसै, ते ता सर्प समान
दंभ बात सगली कही, मोह सुनो दे कान ॥३४६॥

चौपई — राजा मोह सुन्यो विरतंत, राय विवेक तणी सहुबात ।
कहु विवेक सुनो सहु कोई, मोह हमारो वैरी होई ॥३४७॥

हम तो मोह कौंम दुख दीयों, तिह को वर्णन जाई न कह्यो ।
तुहे पांच मिलि कीयो विचार, जिह थे होई भलो व्योहार ॥३४८॥

पांच भणै विवेकजी, सुनो जं कारज सारो अपनो ।
जिनवर पास वेग तुम जाहु, संजम स्त्री सु कीज्यो ब्याहु ॥३४९॥

मुनिवर पद लह महा सुचंग, जिहथे वडा महल उत्तग ।
पाछैं मोह सु माडो राड, लूटदेस सहु करो उजाड ॥३५०॥

मन राजा पिता वस कीरयो, सुभ ध्यांन हीयडा में धरो ।
मदन मोह ईम मारो राई, काची व्याधि टुटी सब जाई ॥३५१॥

सभा विवेक चली इह बात, हम तुम सु भाखु विरतांत ।
भलो होई तिम करो नरेस, तुम सुख लहो वसै सहु देस ॥३५२॥

कहै डंभ सुन मोह विचार, सुनै विवेक तनो परवार ।
राय विवेक भयो वैराग, मुक्त तनो सुख जाण्यौ मार्ग ॥३५३॥

रानी सुमति तास गुनवंत, अग्ध सिंघासन सोभै संत ।
बडौ कंवर सोभै वैराग, दूजो संजम मोटै भाग ॥३५४॥

सोभै तीजो कंवर विचार, बाल मित्र आनंद अपार ।
मंत्री करणां पुत्री तास, दूजि मुदिता बहुत विकास ॥३५५॥

बडो सुभट समिकत परधान, सब ही सभा चतुराई जांन ।
तिह का सेवग अति बलवंड, उपसम विनयं सरल प्रचंड ॥३५६॥

द्वादस तप संतोष समान, सैन्यां सोभै अति असमांन ।
छत्र बण्यौ गुरू को उपदेस, सति सिंघासन तासु नरेस ॥३५७॥

सिद्धि वृधि सुंदर अतिनार, सोभै चंवर ढुलावण हार ।
सील सनाह आगम व्योहार, कीया कपाट, अन्न कोठार ॥३५८॥

सप्त तत्व शुभ राज विभूति, पालै चतुर चिहु दिसि दूती ।
राज करै विवेक भोपाल, सुख मै जात न जानै काल ॥३५९॥

कहो विवेक विभूति विचार, डंभ कहै मोह सुं निहार ।
सांभलि मोह डंभ की बात, विसमै भयो पसीनो गात ॥३६०॥

राजा मोह कोपर कहै, मुझ आगे विवेक किम रहै ।
जिहं मैं बन सिंघ सु ईछा फिरै, तिह बनगज कैसें संचरै ॥३६१॥

जैठे सूर करै प्रगास, तारा तनो नही तिहा वास ।
मोह तनो वैरी जो होई, जीवत फिरतौ न सुणौ कोई ॥३६२॥

मोह महा जिह कोहसाल, तिहैं को आयो वेगो काल ।
मुझ सम लीब नंही कोई जांन, तीन लोक फिरि मोह आंन ॥३६३॥

बहु सेन्यां ले उपर चल्यो, जीवत विवेक सत्रु पाकडो ।
मकरधुज सुनि ठाढो भयो, देख्यो पिता हमारो कीयो ॥३६४॥

आनु बांधि विवेक गुलाब, बहुत दीवस न खालूं मांम ।
सांभलि पुत्र मोह की बात, तिव ही बहुत उल्हास्यौ गात ।।३६५।।

मोह भनें सुनि मदन कुमार, तेरो ठांम नहीं व्यौहार ।
नींद भूष तिस आई न सही, बय बालक तुम जुग तो नहीं ।।३६६।।

मदन कुमार पितासुं कहै, मेरा बल को भेदन लहै ।
बालक सर्प डसै सुफुरंत, तिह को खायो ततषिन मरंत ।।३६७।।

बालक रवि तिहां उदौ कराई, अंधकार सहु जाई पुलाई ।
अष्टापद को होई जबाल, ते जानज्यो सिंघ को काल ।।३६८।।

सांभलि बचन मोह सुख भयो, पुत्र हाथ कर बीडो दयो ।
मदन बचन तेरा परमांन, सेन्या ले चालो असमांन ।।३६९।।

कटक एक ठोकरि तषिनां, अजस दमांमां बाजें घनां ।
मोह पिता का बंधा पाई, मदन विवेक जीतवा जाई ।।३७०।।

× × × × × × × ×

अंतिम पाठ

मूलसंघ जुग तारन हार, सरब गछ सरवो आचार ।
सकलकीति मुनिवर गुनवंत, तास मांही गुन लहो न अंत ।।६४१।।

तिह को अमृत नाव अति चंग रतनकीरत मुनि गुणां अभंग ।
अनन्तकीर्ति तास सिष्य जांन, बोलें मुख थे अमृत बांन ।।६४२।।

तास सिष्य जिन चरणालीन, ब्रह्म राइमल बुधि को हीन ।
भाव भेद तिहां थोडो लह्यौ, परमहंस की चौपई कह्यौ ।।६४३।।

अधिको बोछो भाग्यो भाव, तिह को पंडित करो पसाव ।
सदी हुई सन्यासा मर्ण, भव भव धर्म जिनेसुर सर्ण ।।६४४।।

सोलासै छत्तीस बषांन, जेष्ट सांवली तेरसजांन ।
सोभै वार सनीसर वार, ग्रह नक्षत्र योग सुभसार ।।६४५।।

[illegible] भलो [illegible] विसाल ।
सोभै बाडीनाग सुचंग, कूप बावडी निर्मल भंग ॥६३६॥

चहुं दिसी वन्या अधिक बाधार भस्या पटंबर मोहती हार ।
जिन चैत्याला बहुत उतंग, चंदवा तोरन धुजा सुचंग ॥६४७॥

श्रावक लोक वसै धनवंत, पूजा करैं जपै अरिहंत ।
उपरा उपरी बैरनै कास, जिम ब्रह्म मंदिर सुरग निवास ॥६४८॥

राज करै राजा जगन्नाथ दान देत नवी खेचैं हाथ ।
पंदरासै पैंतीस सार पारसनाह मंदिर विसतार ॥६४९॥

खंडेलवाल छावडा गोत, चाहडै संगही बहु पुण्यवंत ।
दान पुण्य साला अतिसार खरचे द्रव्य बहुत अपार ॥६५०॥

श्रावक पुन्य उपावै घनो लाभ लीयो बहु मीतनो ।
जो लग सुर चन्द्रमा अंस, नादौ विरधो चाहड बंस ॥६५१॥

जो लग धरती सुभ आकास तो लग तीष्टौ टोडो वास ।
राजा परजा तिष्टौ चंग, जिन सासन को धर्म अभंग ॥६५२॥

इति श्री परमहंस चौपई ब्रह्म राइमल कृत संपूर्ण ।

सुभं भवतु कल्यांनमस्तु, पोथी ब्रह्मजी सीवसागर जी पठानार्थं लिखन्त पंडित दयाचन्द सारोला मध्य संवत् १८४४ वर्षे कातिक स्यांम तिथी ९ सनीसरवारे मध्यांन वेलायां ।

श्रीपाल रास

रचना काल—सं० १६३०

आषाढ़ शुक्ला १३ शनिवार

रचना स्थान—रणथम्भीर दुर्ग (राज.)

श्रीपाल रास। रचना काल—संवत् १६३० अषाढ़ शुक्ला १३। पद्य संख्या २९८। लेखन काल संवत् १८वीं शताब्दि। प्राप्ति स्थान—महावीर भवन; जयपुर।

मंगलाचरण

हो स्वामी प्रणमौ आदि जिणंद, वंदौ अजित होइ अति चंग।
संभौ बंदौ जुगतिस्यौ, हो अभिनंदन का प्रणउ पाइ।
सुमति नमौ स्वामी सुमति दे, हो पदमप्रभ प्रणमौ बहु भाइ।
रास भणौं सिरीपाल को ॥१॥

हो काया मन बच नमौ सुपास, चन्द्रप्रभ सब पुरवौ आस।
पुहपदंत प्रणमौ सदा, हो नमौ जुगतिस्यौ सीतल देव।
श्रीयास प्रणमौ सदा, हो वासुपूजि बंदौ वर वीर ॥२॥

हो विमलनाथ प्रणमौ करि भाव, नमौ अनंतसुनि मुवन राव।
धरमनाथ जिन बंदिस्यौ, हो सांति नमत मनि होई विकास ॥
कुंथ जिनेस्वर वंदिस्यौ, हो अरह नमत सहू तूटै पाप ॥
रास भणौ ॥३॥

हो मल्लि नमौ जगि त्रिभुवनसार, मुब्रत नमत होइ भव पार।
नमि प्रणमौ इकिससौं, हो नेमिनाथ बंदौ गिरनारि।
पासणाहु जिण वदिस्यौ, हो नमौ वीर उतरीउ भव पार ॥४॥

हो सारदमाता नमौ मन लाइ, करि प्रकास मति त्रिभुवन माइ।
कोटीभड़ गुण बिस्तरौ, हो सिद्धचक्र व्रत कीनौ सार।
कोढ कलेस सबै गये, हो अंनि पहुतौ भव पार ॥५॥

सिद्धउण नव कोडि मुणिंद, प्रणमौं स्वामी करि आणंद।
तिरिइण वंत जे कह्या, हो मनि जिम तारन नाव समान।
काटि कर्म सिव पुरि गया, हो वचन जिनेसर करि परमान ॥६॥

हो देव शास्त्र गुरु बंधा भाइ, बुधि होइ तुम तनी पसाइ ।
कुमति कले सन उपजो, हो मैना सुंदरी शुभ श्रीपाल ।
सिद्ध चक्र व्रत सेविगो, हो कोडि गुणी करि पूज विसाय ।।७।।

हो जंबू दीप अतिकरैं विकास, दीप असंख्या फिरिया चहुं पास ।
लूण समदस्यो वेढीयो, हो जोजन लाख तणों विस्तार ।
मेरु मधि अति सोभिता, हो भोग भूमि गिरि नदी अपार ।।८।।

राजा पहुपाल एवं उनका परिवार

हो दक्षण दिशा मेरु की जाणि, भरथ क्षेत्र अति नीकैं ठाणि ।
देश ग्राम पट्टण घणा, हो तिह मैं मालव देश विशाल ।
उजेणी नग्री भली, राज करैं राजा पुहपाल ।।रास।।९।।

हो पट्ट तीया तस सुंदर माल, सामोद्रिक गुण वणी विशाल ।
रूप अपछरा सारिखी. हो पुत्री दोइ तासु घरि जांणि ।
सुरसुंदरि जेठ्ठी सही, हो मैणासुंदरि शील सुजाणि ।।रास।।१०।।

हो एकै दिनि राजा पुहपाल, सुर सुंदरी घाली चटसाल ।
सौम विप्र आगैं भणै हो देव शास्त्र गुरु लहै न भेद ।
पढि पुराण मिथ्यात का, हो जह थे पट् काया को छेद ।।रास।।११।।

हो तर्क शास्त्र पढिया बहु भाय. पढत पढन व्याकरण जाय ।
सगरित सहित बहु भण्या हो तहि थे होइ जीव को घात ।
मत मिथ्यात पदेश दे, हो जाणै नहीं जैनि की बात ।।रास।।१२।।

हो लहुडी मैणासुंदरि जाणि, देव शास्त्र गुरु राखैं मान ।
समधर मुनि आगैं भणं, हो कर्म्म आठ तणो अठताल ।
भाव भेद जाण्या सबै, हो आस्रव कर्म जीवनो काल ।।रास।।१३।।

सुरसुंदरी से इच्छित वर के बारे में पूछना

हो एकै दिनि राजा पुहपाल, सुर सुंदरी साज्यो बनवाल ।
देख विचारैं चित मैं, हो पुत्रीस्यों जपै करि भाव ।
मन वांछित हमस्यो कहो, हो सो तुमनै हु ब्याहै राउ ।।रास।।१४।।

सुरसुन्दरी का उत्तर

हो सुंदरि बोली सुणि तात, तुम्हस्यौं कहुं चित्त की बात ।
नागछत्र पुर राजई, हो तिहस्यौं मेरो करिजे व्याह ।
घणी बात कहणी नहीं, हो तहि उपरि मेरो बहु भाउ ।।रास।१५।

विवाह हो सुणि राजा सो राउ बुलाइ, सुरसुंदरि तसु दीन्ही व्याहि ।
अश्व हस्ती बहु डाइजै, हो वस्त्र पटंबर बहु आभर्ण ।
दासी दास दीया घणा हो, मणि माणिक जड़्या सोवर्ण ।।रास।१६।।

मैनासुन्दरी से इच्छित वर के लिये पूछना

हो एकै दिनि मैणासुंदरि, आठ द्रव्य ले थाली भरी ।
जिणवर पूजण सा चली, हो पूज्या जिण गुरु मन लाइ ।
जिणवाणी गुरु मुख सुणी, हो हरष तासु कै अंगिन माइ ।।रास।१७।।

हो फूलमाल गंधोदक लेई, आण्यौ वरा पितानैं देइ ।
लेहु पिता सुत आसिका, हो राजा गंधोदक सुभ वंदि ।
लइ आसिका भगतिस्यौं, हो मन वच काय बहुत आनंदि ।।रास।१८।।

मैनासुंदरी का उत्तर

हो लघु पुत्रीस्यौं जंपै राउ, हो व्याहौ वर जाको होइ भाइ ।
सुता बात कहि मन हरणी, हो मैणासुंदरी जंपै तात ।
वचन अजुगता तुम्ह कह्या, हो कर्म लिख्यौ सो मिलिसी कंत ।।रास।१९।।

हो सुभ अरु असुभ कर्म कै बंधि, घरि ले जाइ जीव नैं कंधि ।
राखण हारो को नहीं, हो पिता मात बंधै जसु मोह ।
फुल कन्या तहिनैं भरै, करै स्नेह जिम देहरू छांह ।।रास।।२०।।

हो जीव कर्म कै भयो सुभाइ, कर्म अन्दयो चहुं गति जाइ ।
जीव तणो बल को नहीं, हो जीव विचारै आपो आइ ।
सकलप विकलप सहु तजौ, हो निर्जरि कर्म मुकति पथ होइ ।।२१।।

हो मनवंछित वर वेस्या लेइ, ते सुख महा नरक पद देइ।
कुल कन्या इछे नहीं, हो सुभ अरु असुभ कर्म के भाइ।
वावै जिसो तिसो लुणै, हो अंति कालि तैसा फल खाइ ।।रास।।२२।।

पिता का क्रोधित होना तथा अपनी इच्छानुसार विवाह करने का निश्चय करना

हो होइ कोप करि सुंदरि तात, पुत्री हो राली मेरी बात।
देखो कर्म किसो फलो, हो गलत कोढ़ होइ जाको अंग।
मैणा सुंदरि व्याहिस्यो, हो कर्म सुता को देखो रंग ।।रास।।२३।।

हो राजा मन में मतो उपाइ, ऐकं विधि वन क्रीड़ा जाइ।
सिरीपाल तहि देखियो, हो रक्षक अंग सातसे साथ।
कोढ़ अठारा पुरिया, हो तुरंग चाल का पीछी हाथि ।।रास।।२४।।

हो अहुरी व्यौंची कोढ कुजासि, खसरो कंडू ते बहु भांति।
सोहल पपरी वोदरी, हो वडी वाउ जहि वैसे माक।
कोढ मसूरि उजाणि जे, हो बैंहै गलै बकै जिम काक ।।२५।।

हो कोढ उदंबर सेत सरीर, दाद कोढ अति दुःख गहीर।
सुसन्यो बाल रहै नहीं, हो चांदी कोढ़ उपजं लाल।
गलत कोढ़ अंगुलि चुवै, हो निकलै हाड उपडै खाल ।।२६।।

हो इहि विधि कोढ रह्या भरपूरि, कोढी एक बजावै तूर।
एक संख धुनि उच्चरै, हो बावै इक सोगी असमान।
एक वजावै को वरी, हो एक देइ धरगू की तान ।।रास।।२७।।

हो कोढी एक छत्र सिरिताणि, कोढी गाइ न विरद बखाणि।
इक न कीव कोढी घणा, हो लाठी करि ले कोढी रंक।
मार मार धुनि उच्चरं, हो करै न नीच कहू को संक ।।२८।।

हो इह विधि कोढी बहु विकराल, वेसर चढिउ राउ सिरिपाल।
आवत राजा देखयो, हो मन माहै अति करै विचार।
पुत्री इहनै व्याहिस्यो हो, देखो कर्म तणो व्योहार ।।२९।।

हो तब मंत्रीस्यौं बोल्यो राउ, इहतें देहु रहणनें ठाउ ।
वर सुंदरि म्राइयौ, हो वन माहै छै म्रानी सराइ ।
मंत्री कहिए सुभटस्यौं, हो डेरो तासु में म्राइ ।।३०।।

हो राउ बचन सुणि मंत्री गयो, सिरीपालस्यौ तिहि बीनयो ।
विनो भगति भासीघणे घणी, हो देह उतारो मंत्री जाइ ।
राजास्यौं बीनती करै, हो असौ बुभतौ होइल राइ ।।३१।।

हो कहूं कह्यो रावल में जाइ, हो भयो सोक म्रति नाज न खाइ ।
राजा की मति सहु गइ, हो कोढी नैं किम सुंदरि दैई ।
म्रपजस जग में विस्तरै, हो असा कर्म न नीच करेइ ।।३२।।

हो भणै मंत्री सुणि राउ विचार, काग गलै किम सोभै हार ।
बात म्रजुगती तुम करी, हो कहां मैणासुंदरि सुकमाल ।।
कहां कोढीवर तुम्ह जोडयो, हो रामुचंद्र पतर भोपाल ।।३३।।

हो सुण्या वचन जंपै पहुपाल राज विभूति भली सिरीपाल ।
राजा कै घोडा घणा, हो इहकै वेसर गदहा म्राथि ।
राजा कै सेवक घणा, हो कोढी कै भला सात सै साथि ।।३४।।

श्रीपाल के साथ विवाह

हो लगन महूरत वेगि लिखाइ, वेदी मंडप सोभा लाइ ।
वस्त्र पटंबर तारिणया, हो वर कन्या नैं तेल चढ़ोढि ।
सोल सिंगार जु साजिया, हो बैठा वेदी म्रंचल जोडि ।।३५।।

हो बांभरण भणै वेद भणकार, कामिरणी गावै गीत सुचार ।
भाट भणै विडदावली, हो वर कन्या देखै नृप रूप ।
मनि पछितावा बहु करै, हो मैं पापी म्रति करी विरूप ।।३६।।

हो असा कर्म नीच नवि करै, हो देख रूप छिप म्रांसू भरै ।
दोसै कर्म विटंबना हो, कर्म राम रावरण करि छार ।
हरि हर ब्रह्म विटंबिया, हो कर्म किया करैरे सिंगार ।।३७।।

धर्म ओगि मेरी [illegible], [illegible] कर्म [illegible] ।
पंडि गहि भूरख करै, हो छतो बस्त को करै विजोग ।
दूरि बस्त पैदा करै, हो ए सहुकर्म तणा संयोग ।।३८।।

हो कोढी उपणो कौथि सुदेस, कहां उजेणी भयो प्रवेस ।
कर्म जोग हमनै मिल्यो, हो कोढी सुंदरि भयो विवाह ।
समुद्रि सिमल जुडी मिलै, हो तिम इहु भयो कर्म को भाउ ।।रास।।३६।।

हो दीयो डाइजो अधिक सुभाव, घोडा हस्ती कनक अपार ।
दासी दास दीया घणा, हो छत्र पालिकी बहुत जडाउ ।
नगरी बाहरि घर दीया, हो सीरीपाल सुंदरि उछाहु ।।रास।४०।।

हो अंगरक्ष जेता था साथ, दान मान दे जोड्या हाथ ।
बानी सहु संतोषीया, हो भइ नफेरी नाद निसाण ।
विदा करी सीरीपाल कौ, हो ले आयो सुंदरि निज थान ।।रास।४१।।

हो सुंदरि सात कर्म परिहरै, सिरीपाल की सेवा करै ।
मन अडोल राखे सदा, हो देव गुरु की भक्ति करेइ ।
मत मिथ्यात तज्यो सबै, हो धर्म कुधर्म परीक्षा लेइ ।।रास।४२।।

मैंनासुन्दरी द्वारा जिन पूजा करना

हो एक दिन पिय नै ले साथ, गई जिणाले जगनाथ ।
देव शास्त्र गुरु वंदिया, हो जिणवर चरणा पूज करेइ
आठ द्रव्य लीया भला, हो मन वच काया भाउ करेइ ।।रास।४३।।

मुनिराज से कोढ दूर होने का उपाय पूछना

हो पाछे गुरु का पूज्या पाउ, सिरीपाल ले बैठो आइ ।
हाथ जोडि गुरुस्यौ, भणौं, हो स्वामी कर्म कौन कै जोग ।
कोढ उदंबर उपनो हो, करि उपगार जाइ सहु रोग ।।रास।४४।।

मुनिराज का उत्तर

हो मुनिवर भणै सुंदरी सुणौ, जीव कर्म भुजै आपणो ।
पावै जिसो तीसो सुणौ, हो जिनवर धर्म एक आधार ।
चहुंगति प्राणी बुडतौ हो, नाव समान उतारण पार ।।रास।४५।।

हो धर्म सरावक जती को सुणो, श्रावक धर्म सुर्ग सुख घणो ।
जती धर्म शिवपुरि लहै, हो आठ मूल गुणल्यो समत ।
बारह व्रत अति निर्मला, हो ते पालै करि सुधो चित ।।४६।।

दोष अठारा रहितसु देव, गुरु निरगंथ सुजाणीए ।
वाणी जिणमुख नीसरी हो एता को दिढ निश्चौं करै ।
सकलप विकलप सहु तजै, हो मत मिथ्यात सबै परिहर ।।४७।।

हो सुणी बात हरख्या भया, हो समकित सुव्रत सहु लया ।
धर्म जिणेसुर को सही, हो मैणा सुंदरि जंपै लाल ।
व्रत भलौं उपदेस द्यो, हो जहि थे होइ रोग की घात ।।४८।।

हो मुनिवर बोलें सुणो कुमारि, सिद्धचक्र तरस्यो संसारि ।
सिद्धचक्र व्रत तुम्ह करो, हो आठ दिवस पूजो मनलाइ ।
आठ द्रव्य ले निर्मला, हो कोढ कलेस व्याधि सहु जाइ ।।४६।।

हो सुण्या वचन व्रत ले बहु भाइ, हो भयो हरष अति अगि न माई ।
मुनी वंदि घरि आइया, हो करे सनान लए भरि नीर ।
कूंकूं चंदन बावना, हो पहरे भला पट्टंबर चीर ।।एास ५०।।

सिद्धचक्र की पूजा करना

हो सिद्धचक्र थाली लिखि जंत्र, बीजा अक्षर निर्मल मंत्र ।
पंचामृत रस आणीया, हो जिण चौवीस न्हावण करेइ ।
आठ द्रव्य जिण पूजिया, हो भाउ भगति पुहपांजलि देइ ।।५१।।

हो सित आठैं फागुन दिन सार, सिद्धचक्र को रच्यो विथार ।
बावन कोठा मांडलौ, हो जिणवर बिंब मेलि चहुं पास ।
आठ भेद पूजा करी, हो केसरि मलय कपूर सुवास ।।५२।।

हो आठौं दिवसि पुज अति रंग, चंदन पहुप लगाए अंग ।
अगंरक्ष सिरीपालस्यौ हो जिण गंधोदक सींचि सरीर ।
असि आऊसा मंत्र जपि, हो ब्रह्मचर्य पालै वरवीर ।।५३।।

हो नवमी दीनि दस गुणो विचार, जिण पूजा करि अधिक सुचार ।
अनोक्रमि पहलै करी, हो दशमी दिनि सौ गुणो पसार ।
चंदन गंधोदक लया, हो देह सुभट लावै अतिसार ॥५४॥

हो ग्यारसि दिनि सहस गुणी जाणि, जिणवर पूज पुण्य की खानि ।
अंदन अंग लगाइयो, हो दस सहस बारसि विस्तार ।
तेरसि लाख गुणी कही, हो पूजा करै रोग सहु छार ॥५५॥

हो पूजा लाख दस गुणी जाणि, चौदसि दिनि पहलै परमाणि ।
कोडि गुणी पुन्यो कही, आठ दिवस वाजित्रा दान ।
नृपि करै बहु कामिनी हो, गावै जिणगुण सरलै साद ॥५६॥

कुष्ठ रोग का दूर होना

हो आठ दिवस करि पूजा रली, गयो कोढ जिम अहि कंचुली ।
कामदेव काया भइ, हो अंगरक्ष राजा सिरीपाल ।
सिद्धचक्र पूजा करी, हो राग सोग नवि व्यापै काल ॥५७॥

हो देवशास्त्र गुरू करि वदना, सिरीपाल सुंदरि तंक्षणा ।
साथि अंगरक्षक सातसै, हो करि पूजा आया निज थान ।
दुर्बल दुखीति पोषया, हो पात्र तिनि बहु विधि दे दान ॥५८॥

हो सुंदरि वर राजा सिरीपाल, सुख मैं जातन जाणो काल ।
इंद्र जेम सुख भोगवै, हो देव शास्त्र गुरू को भक्त ।
मत मिथ्यात न सरदहै, हो दुराचार विरत सहु तित्त ॥५९॥

हो सिद्धचक्र पूजा करि सार, द्वारापेषण दान अहार ।
पछै आप भोजन करै, हो पर कामिनी देखै निज मात ।
सत्य वचन बोलै सदा, हो तरस जीव को करै न धात ॥६०॥

हो द्रव्य परायो लेइ न जाण, परिग्रह तणो करै परमाण ।
करै अणुव्रत भावना हो, गुणव्रत तीन्यो पालै सार ।
सामाइक पोसौ करै, हो अतिथिभाग संलेखन धार ॥६१॥

हो इहि विधि काल गमैं दिन राति, चौरासी लख जीवह जाति ।
मन बच काइ क्षमा करै. हो जम्म बोलैं बंदी जन घणा ।
धर्म कथा मैं दिन गमै, हो धीर चित्त राखैं आपणो ।।६२।।

माता से मिलन

हो पुत्र गए से कुंदामाइ, आई सीरीपाल कै ठाइ ।
कोडीभड माता मिल्यो, हो मैणासुंदरि बंदै सासु ।
वस्त्र कनक दीन्हा घणा, हो मनि हरषी अति भयो विकास ।।६३।।

हो भोजन भगति करी बहु भाई, बूझी बात सबै निरताइ ।
नग्र देस कुल पाछिलो, हो सासू कही बहुल्यो बात ।
सह सनबंध जु पाछिलो, हो सुण्यो सुंदरी हरस्यो गात ।।६४।।

पुहपाल द्वारा श्रीपाल को देखना

हो एकै दिनि राजा बन गयो, सुंदरि सहित सुभट देखीयो ।
मन मैं चिन्ता उपनी, हो कोण पुरषि इहु पुत्री थान ।
बात अजुगती अति भई, हो राजा कै मनि भयो गुमान ।।६५।।

हो राजा मुख विलखो देखियो, अभिप्राय मंत्री लेखियो ।
हाथ जोडि विनती करै. हो स्वामी सुंदरि शील सुजाणि ।
पुरष जवाइ तुम्ह तणो, हो गयो कोढ पुण्य कै प्रमाणि ।।६६।।

हो सुणी बात मनि भयो विकास, गयो बेग पुत्री कै पास ।
उठि कोडिभड भेटियो, हो सुंदरि आइ तात बंदियो ।
राजा पुत्रीस्यौं भणै, हो सुभ को उदो कर्म तुम दियो ।।६७।।

हो भणै राउ सिरीपाल सुणहि, आधो राज उजेणी लेहि ।
हम उपरि किरपा करो, हो कोडीभड जपै सुणि माम ।
राज भोगऊ आपणो हो, हमनै नहीं राजस्यौ काम ।।६८।।

हो राजा दीना वस्त्र जडाउ, विनो भगति करि निर्मल भाउ ।
पुत्री पुरिष सतोषीया हो, भयो हरष अति अंगि न माइ ।
कर्म सुता को परखीयो, हो तंखण गयो आपणै ठाइ ।।६९।।

हो तीया सहित राजा सिरीपाल, सुख मैं जातन जाणै काल ।
पर्व चारि पोसौ करे, हो जस बोलै बंदी जन घणौ ।
पिता नाउ कोइन ले, नाम लेहु सब ससुरा तणौ ॥७०॥

हो सुण दुख पावौ श्रीपाल, पिता नाम को भयौ अकाज ।
माम ससुर कै जाणिज्यो, हो धन कलश्रस्यौ नाही काम ।
पिता न्यास कौ ना सहै, हो नग्र उजेणी छोडी ठाम ॥७१॥

हो देखो विलख वदन सुन्दरी, भणै कंतस्यौ चिंता भरी ।
स्वामि बात कही मन तणी, चिंता कवण विलख मुख एहु ।
सहु सरीर दुर्बल भयो, हो कहौ बात जिम जाइ संदेहु ॥७२॥

हो भणै सुहड सुणि सुंदरि बात, जहि चिंता वे दुर्बल गात ।
नग्र उजेणी थे चलौं, हो रत्नद्वीप सुभ देखौं जाइ ।
द्रव्य आणिस्यौ अति घणौं, हो दान पुण्य खरचौ मन लाइ ॥७३॥

हो मैणासुंदरि जंपै कंत, तुम्ह विणु इक क्षण रहै न चित्त ।
साथि लेइ हमनै चलौ, हो तब कोडीभड हसि उच्चरै ॥
फल लागा जं राम नैं, हो साथि सियानै सियो फिरै ॥७४॥

हो मैणासुन्दरि जपै कंत, स्वामी अवधि करो परमाण ।
ते दिन हमस्यौ बीनउ, हो भणै सुभट सुंदरी सुजाणि ।
वरष बारहै आइयौ, हो बचन हमारा निश्चै जाणि ॥७५॥

हो सुंदरि सीख देइ सुणि कंत, नाम राखि जे मनि अरहंत ।
सत्य वचन अरहंत का, हो गुरु बंदिज्यौ महा निरगंथ ।
सिद्धचक्र व्रत सेविज्यौं, हो संजम शील पालिज्यौं पंथ ॥७६॥

हो दुराचारि दासी कूटणी, मसवासी मिथ्या दृष्टिणी ।
वेस्या परकामिणि तजी, हो पुरुष परायौ जो आचरै ।
सावधान रहिज्यौ सदा, हो भूलि विसास तासु मत करै ॥७७॥

हो घणौ कहा करिजे आलाप, उपजै बुद्धि सकीज्यौ आप ।
माता नैं मत वीसरौ हो हमस्यौ स्नेह तजै मत कंत ।
धर्म जिणेसर समरिज्यौ, हो दिन पूजा कीजौ अरहंत ।।७८।।

हो कोडीभड बोल्यौ सुंदरी, माता की बहु सेवा करी ।
अंगरक्ष जे साल सैं, हो भोजन वस्त्र देइ बहु भाइ ।
विनौ भक्ति कीजैं घणौ, हो पूजा दान करी मन लाइ ।।७९।।

हो माता चरण वंदि वरवीर, चल्यौ दीप नैं साहस धीर ।
मन माहै संका नहीं, हो लंघि देस वन गिरि नदि खाल ।
सागर तट ठाढौ भयौ, हो भृगकछ पटण सुविसाल ।।८०।।

हो धवल सेठि तहं आयउ काहू, प्रोहण पूरि संचरौ ताहु ।
रत्नदीप नैं गम कीयौ, हो पोत न चलैं कर्म कैं भाइ ।
निमित ज्ञान मुनि बूझीयो, लक्षण सहित नर ठेल्या जाइ ।।८१।।

हो सेट्ठि भणैं नर ल्याऊ जोइ, लक्षण अंगि बतीस जु होइ ।
वणिक पुत्र लेवा गया, हो कोटीभड दीठौ वरवीर ।
होए हरष उपनौ घणौ, हो बोल्या वणिक सुणौ हो धीर ।।८२।।

हो धवल सेठि तहां वेगा चलौ, सीझैं काम होइ सहू भलौ ।
रत्नदीप प्रोहण चलैं हो, सिरीपाल मन चिंतै बात ।
रत्नदीप हम जाइसौ, हो आयौ वणिक पुत्र कै साथ ।।८३।।

हो देखि सेठि मन हरखो भयो, वस्त्र दान कंचन बहु दीयो ।
कोडीभडस्यौं वीनवैं, हो पोत समूह ठेलि वरवीर ।
सेवा मांगो आपणी, हो तुम्ह प्रसादि उत्तरौ जल तीर ।।८४।।

हो भासैं सुभट सेट्ठि सांभलौ, सुभट सहस दस मको जीवलौ ।
एतौ हमनैं देइज्यो, हो वणिक भणैं मांगो निरताइ ।
बात भाजुगती तुम कही, हो भूपै दइकै दीन्हौ जाइ ।।८५।।

हो भणै सुभट सेठि जी सुणौ, कारिज सारौ तुम्ह तणौ।
सेवा कीज्यौ हम तणी, हो गाइ गलै जे घटा होइ।
मोल करै सब दूध कौ, हो एह बात जाणै सहु कोई ॥८६॥

हो नाम पंच परमेष्ठी लीया, कोडीभड प्रोहण ठेलिया।
लागि गगन तारा चल्या, हो मोह टोपरी सिरह धराइ।
धीमर जतन करै घणौ, हो न तु भैरंड पक्ष ले जाइ ॥८७॥

जब प्रोहण आ घेरो चल्या, लाख चोर पापी बिच मिल्या।
लागा आइ परोहण, हो धवल सेठि तब सन्मुख गयो।
सुभट लडाइ बहु करैं, हो भागा कातर को नवि रह्यो ॥८८॥

हो धवल सेठि रण जाइ न सह्यो, चोरां सेठि बंधि करि लयो।
सुभट लडाइ हारीया, हो कोडीभडस्यौ करी पुकार।
सेठि बंधि प्रोहण लया, हो वीर अबै वयो करि उपगार ॥८९॥

हो लेइ धनष चल्यो सरीपाल, बाण वृष्टि बरसै असराल।
कोडीभड रणि आगलौ, हो भागा कहां खुटिस्यौ मीच।
हो आइ सही तुम्हारी मीच, रास भणौ सिरीपाल कौ ॥९०॥

हो चोरां बण रालि सहु काढि, सिरीपालस्यौ मांडी राडि।
कोडीभड रण जीतियो, हो उपरो उपरी चोर बंधाइ।
सेठि परोहण आणिया, हो जीत्या सत्र निसाण बजाइ ॥९१॥

हो छोडा चोर बिनो बहु कीयो, दया भाउ करि भोजन दीयो।
मन वच काय क्षमा करी, हो हाथ जोडि बोल्या सहु चोर
तुम समान उतम नहीं हो हम पापी लोभी घण घोर ॥९२॥

हो सात परोहण लिहु बरवीर, मधि बस्त अति गहर गहीर।
तुम थे सेवा चूक छां, हो बहुडि सेठिस्यौ करि व्यापार।
आप दिसावर की लह, हो उपरा उपरी स्नेह सुधार ॥९३॥

हो सीरीपाल बंधो बहु भाउ, पहुंता चोर आपणों ठाइ ।
रली रंग बिह हरि भया, हो सेठि सुभट नै दीनो मान ।
इहु उपगार न बीसरो, हो हमनै दीयो जीउ को दान ॥९४॥

हो वस्त्र कनक दीना करि भाउ, बोल्यो घवल बिनो करि साहु ।
धर्मपुत्र थो हम तणा, हो रोना सत्र करी सत खाइ ॥९५॥

दोहड़ा—कोटपाल बणिवर कह्यो, नाइ सुइ सुनाइ ।
एता मित्र जुतो करो, जै होइ सर्व संघार ॥९६॥

हो बंधी ध्वुजा बहुत विस्तारि, चल्या परोहण समदम झारि ।
कर्म जोग्य तट गहतियो, हो दीठो रत्नदीप सुभ ठाइ ।
सहसकूट तहां सोभितो, हो ताकी महमा कही न जाइ ॥९७॥

हो प्रोहण थे उत्तरीउ सिरीपाल, गयो जहां जिण भवण विसाल ।
गुरु पै लीनी आखडी, हो देखौं जहां जिणेसुर थान ।
देव पूजि भोजन करो, हो मनुष्य जन्म को फल परमाण ॥९८॥

हो सहसकूट सोभा बहु भांति बध्यो पीठ चन्द्रमणि कान्ति ।
कनक थंभ चहुं दिसी बण्या, हो पचवर्ण मणि वेदी जडित ।
सिला सिंघासणि सोभितो, हो जाणि विधाता आपण घडित ॥९९॥

हो पदमराग मणि आवलसार, पाचि पना विचि विचि बिस्तार ।
कनक कलस सिखरां ठयो, हो उछलै धुजा अधिक आकाश ।
दीठो सोभा अति घणी, हो सिरीपाल मनि भयो विकास ॥१००॥

हो वज कपाट जड्या सुभ दीठ, मधि भूमि जिण बिंब बइठु ।
तखण करस्यौ हुं लीयो, हो आगलि तूठि उघडित द्वार ।
जिण प्रतिमा देखी भली हो पुहुतो मधि कीयो जै कार ॥१०१॥

हो परदक्षणा दइ तिंहु बार, गुण ग्राम पढि अधिक विचार ।
भाव भगति जिण बंदीया, हो करि स्नान पहनें सुभ चीर ।
जिण चरण पूजा करी, हो झारी हाथ लइ भरि नीर ॥१०२॥

हो जल चंदन अक्षत सुभ माल, नेवज दीप धूप भरी थाल ।
नालिकेर फल बहु लीया, हो पहुपांजलि रचि जोड्या हाथ ।
जिणवर गुण भाख्या घणा, हो जैजै स्वामी त्रिभुवन नाथ ।।१०३।।

हो जिणवर चरण पूजि बहुभाइ बंदि जिणेसुर बिठ हरि जाइ ।
विद्याधर इक आइयो, हो सिरीपालस्यौ जंपै ताम ।
हम उपरि किरपा करौ, हो मन वांछित सहु पूगै काम ।।१०४।।

हो सिरीपाल बुझै करि मान, कौण नाम तुम्ह कौण सुथान ।
कौण काजु हमस्यौं कहो, हो विद्याधर बोलै करि भाउ ।
विदितप्रभ मुझ नाम छै, हो रत्नदीप सुभ मेरी ठांउ ।।१०५।।

हो रैणमजुषा पुत्री जाणि, गुण लावण्य पुण्य की खानि ।
देखि रूप मुनि बूझीयो, हो पुत्री को वर कहो विचार ।
अवधि जाणि मुनि बोलियो, हो सहसकूट उघाडै द्वार ।।१०६।।

हो सो तुम सुता परणिसी आई, साच वचन सहु जाणी राइ ।
हम सेवक ईहां छोडियो, हो देखा तुम अति पुण्य निवास ।
जाइ बेगि हमस्यौं कह्यो, हो आए सुभट तुमारै पास ।।१०७।।

हो अब हम उपरि करहु पसाउ, रैणमजूसा करो विवाहु ।
मुनि का वचन भया सही, हो रचि सुभ मण्डप चौरी चार ।
वस्त्र पटंबर छाइया हो, कनक कलस मेल्हा चहुं द्वार ।।१०८।।

हो अंब पत्र की बंधी माल, हरित बंस रोपिया विसाल ।
कन्या वर सिंगारिया, हो चोवा चंदन तेल चढोडि ।
विप्र वेद धुनि उच्चरै, हो तीया पुरिष बैठा कर जोडि ।।१०९।।

हो रैणमंजूषा अरु सिरीपाल, बार सात फिरियो भोपाल ।
अग्नि विप्र साखी भयो, हो भया महोछा मंगलाचार ।
दे विद्याधर डाइजौ, हो हस्ती घोडा कनक अपार ।।११०।।

हो बाजा बरगू भेरि निसाण, सहनाइ झालरि असमान।
वर सुंदरि ले चालियो हो, चारण बोलैं बिरद बखाण।
रली रंग ते अति घणा, हो लंक्षण गयो परोहण थान ॥१११॥

हो धवल सेट्ठि देखो सिरीपाल, साथि तीया सुभ जोबन बाल।
मन में हरष भयो घणौं, हो वाणिक पुत्र सब भयो आनंद।
वर कामिनी सोभा वणी हो जाणिकि सोभैं रहणिचन्द ॥११२॥

हो बिडहर मंडप भयो जैकार, सिरीपाल दीनो ज्योणार।
लधा जुगति सन्तोषीया, हो कनक वस्त्र दीना बहु दान।
हाथ जोडि बिनती करी हो धवल सेट्ठि नैं दीनो मान ॥११३॥

हो एकं दिनि सिरीपाल हंसत, रैणमजूसा बूझैं कंत।
कौण देस थे आइया हो माता पिता कौण तुम ठाम।
कौण जाति स्वामी कहौ, हो निश्चैं कोण तुम्हारो नाम ॥११४॥

हो सुणि कोडीभड करैं बखाण, अंगदेस चंपापुरि थान।
तासु सिघरथ राजइ, हो कुंदापहु तसु तीया सुजाणि।
तासु पुत्र सिरीपाल हों, हो वचन हमारा जाणि प्रमाणि ॥११५॥

हो भउ सिघरथ राजा तात, राज लीयो तसु नहुडै भ्रात।
बालपणं हम काडिया, हो निकस्यो कोढ कर्म कैं भाइ।
देस ग्राम छाड्या घणा, हो नग्र उजेणी पहुता आइ ॥११६॥

हो प्रजापाल राजा तिहु थानि, मैणासुन्दरि सुता सुजाणि।
राजा सा हमकौं दइ, हो भयो विवाह कर्म्म संजोग।
सिद्धचक्र पूजा करी, हो तासु पुण्य भागो सहु रोग ॥११७॥

हो हमस्यो कहै बाल गोपाल, राज जवाइ इहु सिरीपाल।
नाम पिता को को न लेहो, मेरा मन मैं उपज्यो सोग।
कामणि सेवक छाडिया, हो भृगुकछ पटणि सेट्ठि संजोग ॥११८॥

हो आए इहां सेठि के साथ, सहसकूट दीठो जिणनाथ ।
पिता तुम्हारो आइयो, हो हम तुम्ह भयो विवाह संयोग ।
कही बात सहु पाछिली, हो सुभ अरु अशुभ कर्म को जोग ।।११९।।

हो रैणामंजूसा सुणी बहु बात, हरस्या चित्त विकास्यो गात ।
कंत तणी सेवा करै, हो नृति गीत गावै अति रंग ।
मन मोहै भरतार को, हो छाडै नहीं एक क्षण संग ।।१२०।।

हो मोहण पुरि वस्त बहु लेइ, धवलसेठि घर नै चलाई ।
साथि परोहण पंचसै, हो देखै रैणमजूसा रंग ।
धवल सेठ्ठि मन चितवै, हो इहि कामिनीस्यौं कीजै संग ।।१२१।।

हो रैणमंजूसा सेवै कंत, धवल सेट्ठि अति पीसै दंत ।
नींद भूख तिरषा गई, हो मंत्री जोग्य कही सहु बात ।
सुंदरिस्यो मेलो करो, हो कहीं मरो करो अपघात ।।१२२।।

हो सुणी बात मंत्री दे सीख, पंच लोक मैं थारी लीक ।
अैसो मनि मत चितवै, हो कीचक गयो द्रोपदी संग ।
एह कथा जगि जाणि जे, हो भीमराय तसु कीओ भंग ।।१२३।।

नर्क तणा दुख भोगवै, हो जो नर शील न पालै सार ।
हरत परत दून्यो गर्म, हो मरै अखूटी मूढ गवार ।।१२४।।
हो रावण गयो सिया परसंग, लखमणि तासु कीओ सिर भंग ।

हो धरम पुत्र थारी सिरीपाल, परतषि माथा उपरि काल ।
तासु घरणि किम सेविस्यो, हो पुत्र घरणि पुत्री सम जाणि ।
परकामिणि माला गर्म, हो भवियण ते पहुचं निरवाणि ।।१२५।।

हो दिन प्रति कलह करावत जाइ, नारद सीधो सील सुभाव ।
कर्म तोडि शिवपुरि गयो, हो सीता राखो दिढ करि सील ।
अगिन कुंड पाणी भयो, हो भविजण सील म करिज्यो ढील ।।१२६।।

हे सेट्ठि सुणो मंत्री की बात, पायो दुख पसीज्यो गात ।
हाथ जोडि विनती करै, हो लाख टका पहली ल्यो रोक ।
सुंदरि हम मेलो करो, हो जाय हमारा मन को सोक ।।१२७।।

हो मंत्री भयो सोभ कौ भाउ, सुभट मरण को रच्यो उपाउ ।
धीमर सहु समझाइयो, हो छल करि धीमर करैं पुकार ।
चोर परोहण आइया, हो उछलैं मोटा मछ अपार ।।१२८।।

हो सुणि पुकार अति गहर गहीर, देखण लागौ दहु दिसा ।
हो धीं धवल पापी पाप कमाइ, आडि करत प्रोहण तणी ।
हो पडिउ सुभट सागर मैं जाइ, रास भणौ सिरीपाल को ।।१२६।।

हो जे था प्रोहणि वणिक विसाल, सागर पडिउ देखि सिरीपाल ।
मन मैं दुःख पायो घणौ, हो रैणमंजूसा करैं पुकार ।
सिर कूटैं हीयो हणै, हो कहणौ कोढी भड भरतार ।।१३०।।

हो सुंदरी दुःख लागी बहु कर्ण, तज्या तंबोल अन्न आभरण ।
नैणा नीर झुरैं घणौ, हो धवल सेट्ठि तब मंत्र उपाइ ।
वंसण पट्टइठ कुटणी, हो रैणमंजूसास्यो कहि जाइ ।।१३१।।

हो गइ [कुटणी सुंदरि पासि, कहै कपट करि बात विसासि ।
सुता बात मेरी सुणौ, हो मुवा साथि नवि मूवो कोई ।
आमण मरण अनादि को, हो कोइ किसकौ सगौ न कोइ ।।१३२।।

हो मन कौ छांडि सुंदरी सोग, धवल सेट्ठि मेलौ तुम जोग ।
भोग भोगऊ मन तणा, हो मनुष्य जन्म संसारा आइ ।
खाजे पीजे बिलसीजे, हो अवर जनम की कही न जाइ ।।१३३।।

हो सुणि सुंदरी कुटणि बात हो उपनौ दुःख पसीनौ गात ।
कोप करिवि सा बीनवौ हो नख थे वेगि जाहि अब रांड ।
पाप बचन तैं भासिया, हो इगा बोल थे होसी भांड ।।१३४।।

हो नख थे कुटणी दइ उठाइ, आयो सेट्ठि सुंदरी ठाइ ।
हाथ जोडि बीनती करैं, हो हम उपरि करि दया पसाउ ।
काम अगिन तनु बालीयो, हो राख्यैं बोल हमारो भाउ ।।१३५।।

हो सुणि बोली कोडीभड नारि, पुत्र घरणि पुत्री जिसी होइ।
इह तौ खर सूवर आचार, माता भगनि धिया ना गिणै।
हो पापी करै संग व्यौहार, हो रास भणी सिरीपाल को ॥१३६॥

हो जहि कै मात बहण धिय होइ, तिह काए परणत मन होइ।
तु सुहणा खर सारिखौ, हो देव धर्म कुल छोडी लाज।
हुरत परत दूजयो गया, हो सोचे नाहीं काज अकाज ॥१३७॥

हो जहि नर नारी सील सुभाव, तासु होइ सुर्गा लै ठाइ।
सुर नर पद पूजा करै, हो कीरति पसरै तीन्यो लोक।
मुकति तणा सुख भोगवै, हो आवागवण न व्यापै रोग ॥१३८॥

हो जे नर नारि शील करै हीण, ते नर नरक दुःख करि छीण।
ताती पुतली लोह की, हो असुर देव तसु कंठि लगाइ।
क्रूर वचन मुख थे कहै, हो पर कामिनि इह सेऊ आइ ॥१३९॥

हो पापी सेठि न मानै बात. रैणमंजूषा को गहि हाथ।
पाप करत साकै नहीं, हो आया तब जिण सासण देव।
धवल सेठि दिठ बंधीयो, हो कोप करिवि बहु बोल्या एव ॥१४०॥

हो ज्वालामालिणी देवी आइ, दीनी प्रोहण अग्नि लगाइ।
रोहिणि औंधौ टंकियो, हो विष्टा मुख मैं दीनी ठेलि।
लात धमूका अति हणै, हो सांकल तोप गला मैं मेलि ॥१४१॥

हो वातकुमार जब तब आइ, दीनो अधिको पवन चलाइ।
जल कलोल बहु उछलं, हो चक्केसुरि अति कीनो कोप।
प्रोहण फेरै चकजयो, हो अंधकार करियो आरोप ॥१४२॥

हो अंबा तातै छडकै तेलि, मूत नासिका दीनो ठेलि।
छेदन भेदन दुःख सहै, हो मणिभद्र आयो तिह ठाइ।
मार मार मुखि उच्चरै, हो धवल सेठि मुखि लाइ ॥१४३॥

हो देखि सेट्ठि कंपिवि सहु लोग, हो गाली देइ जपैं तसु जोग ।
पापी मजुगति ते करी, समुदि नाखि बोल्यो सहु साथ ।
सुंदरि चरणा ढोक धो, हो बीनति करि बहु जोडी हाथ ।।१४४।।

हो धवल सेट्ठि तब जोड्या हाथ, क्षमा करो हम उपरि मात ।
हम अपराध कीयो घणों, हो प्रोहण में जे वणिक कुमार ।
चरण वंदि विनती करो, हो माता तुम थे होइ उबार ।।१४५।।

हो सुण्या बचन जे बाण्या... कहु ... रैणमजूसा उपणी दया ।
कोप विषाद सबै तज्यो, हो दीयो देवतो सुन्दरि मान ।
पूजा करि चरणा तणी, हो तंक्षण गया आपणें थान ।।१४६।।

हो पडिउ सुभट जो समुद मझारि, कहौ कथा सुभ बात विचारि ।
नमोकार मनि समरीयो, हो उपहरो उछाल्यो बरबीर ।
नमसकार गुण ये कहै, हो सागर भुजहु तिरै अति धीर ।।१४७।।

हो जिण कौ नाम जपै अतिसार, जिण कै नाम तिरैं भवपार ।
सिंघ सर्प पीडै नहीं, हो जिण कै नाम जाइ सहु रोग ।
सूल सफोदर शाकिनी, हो पावै सुर्ग तणा बहु भोग ।।१४८।।

हो जिण कै नाइ अग्नि होइ नीर, जिण कै नाइ होइ विसखीर ।
सत्रु मित्र होइ परणवै, हो गुंजै नाहि भूत पिसाच ।
राज चोर पीडै नहीं, हो जिणि कै नाम सासुतो वाच ।।१४९।।

हो जिण कै नाइ होइ धरि रिद्धि, जिण कै नाम काज सहु सिद्धि ।
सुर नर सहु सेवा करै, हो सागर अति गहीर दे थाह ।
परवत बांबी सारिखो, हो जिण कै नाम होइ सुभ लाइ ।।१५१।।

हो जिण कै नाम पाप के छूटिय, खोड़ा बेडी सकुल तूटि ।
सर्प माल होइ परणवै, हो सजन लोग करै सहु काणि ।
जिण कै नाम गुणां बढै, हो जिण कै नाम कर्म को होइ हाणि ।।१५२।।

हो सिरीपाल जिणवर समदेइ, नीर मुजह बलि पाछौ देइ ।
संक न मानै चित मैं, हो सुभट जाई सागर मैं चल्यो ।
काठ एक पानै पडिउ, हो जाणिकि मित्र पूर्विलो मिल्यौ ।।१५३।।

हो पकडि काठ बैठो वरवीर, जल कलोल उछलै गहीर ।
पंच परम गुरु सुभि कहै, हो मगरमछ बहु फिरै समीप ।
खाइ न सकै हो सुभट नै, हो कर्म जोग इक दीठो दीप ।।१५४।।

हो पुण्य बंध अति साहस धीर, कर्मै जोगि पाइ जलतीर ।
उतरि समुद्र ठाढो भयो, हो राजा सेवक राखा तीर ।
कोडीभड तहि देखीयो, हो जलधि भुजह बलि उतरीउ धीर ।।१५५।।

हो सिरीपाल का वंद्या पाइ, भयो हरष अति अंगि न माइ ।
विनो भगति गाढी करी, त्यांहि स्यो सुभट भणै दे मान ।
साच बचन हमस्यो कहो, हो राजा कौण कौण पुरथान ।।१५६।।

हो बोल्या किंकर सुणि सिरीपाल, दलवणपटण सुविसाल ।
सोभा इंद्रपुरी जिसी, हो राज करै राजा धनपाल ।
गुनमाल तसु कामिनी, हो कंठ सुकंठ पुत्र सुकमाल ।।१५७।।

हो गुणमाला इक पुत्री जाणि, गुण लावण्य रूप की खानि ।
राजा मुनिवर बुझीयो, हो स्वामी गुणमाला भरतार ।
निमितो कहि कौण तणी, हो जिन मन को सहु जाइ विकार ।।१५८।।

हो मुनिवर भणै अवधि को जाण, तिर समुद्र आवै तुम थान ।
नाम तासु सिरीपाल कहै, हो गुणमाला सो परणै आइ ।
कोडी भड पुणि ही भिलो, हो इही कादसो मुकतिहि जाइ ।।१५९।।

हो राजा सुणि मुनि का भाषीया, हम तो समद तीर राखीया ।
कर्म जोग तुम आइया, हो दरसण भयो तुम्हारो आजु ।
समुद्र भुजह बलि पैरीयो, हो मन वांछित सहु पूगे काज ।।१६०।।

हो कहि समबंध राउ पै गयो, नमस्कार करि तहि बीनयो ।
स्वामी सो नर आइयो, हो समुद्र भुजह बल उतरि पार ।
मुनि का वचन भया सही, हो आणहु वेगि मनाउताहि ॥१६१॥

हो भयो हरष धनपाल, गयो सामुही जहाँ सिरीपाल ।
नगरउ छाडिउ जुगतिस्यौं, हे भेरि न फेरी नाद निसाण ।
साहण सेना सामती, हो चारण बोले बिरद बखाण ॥१६२॥

हो भेटिउ कंठ लगाइ नरिंद, हो दुहु राउ मनि भयो आनंद ।
कुसल खिनो बुझै घणो, हो उपरा उपरि दीनो मान ।
कोडीभड कुंजर चढिउ, हो गया वेगि दलपट्टण थान ॥१६३॥

हो लीयो राइ जोतिगी बुलाइ, कन्या केरो लगन लिखाइ ।
मंडप वेदी सुभ रची हो पंच पत्र की बंधी माल ।
कनक कलस चहुं दिसि थप्या, हो छाए निर्मल वस्त्र विसाल ॥१६४॥

हो गावैं गीत तिया करि कोड, बस्त्र पटंबर बंध्ये मोड ।
फूल माल सोभा घणी, हो चोवा चंदन वास पहोडि ।
वेदी विप्र बुलाइयो, हो वर कन्या बैट्ठा कर जोडि ॥१६५॥

हो भांवरि सात फिरिउ चहुं वासि, भयो विवाह अगिन दे साखि ।
राजा दीनो डाइजो, हो कन्या हस्ति कनक के काण ।
देस ग्राम दीना घणा, हो विनती करि दीनो बहुमान ॥१६६॥

हो विनती करि जंपै धनपाल, मेरो बचन मानि सिरीपाल ।
राज हमारो भोगऊ, हो कोडीभड बोलै सुणि माम ।
राजा तुमारो भोगऊ, हो हमनै नहीं राजस्यौ काम ॥१६७॥

हो विनो करि जंपै नरनाथ, सबै भंडार तुम्हारे हाथ ।
दान पुण्य पूजा करो, हो सुसर बचन मान्यो सिरीपाल ।
तिया सहित सुख भोगवै, हो सुख में आस न जाणैं काल ॥१६८॥

हो कर्म्म जोग केइ दिन गया, धवल सेट्ठि मोहण आविया ।
जलधि तीर तह थिति करी, हो लइ भेट बहु राजा जोग ।
वस्त्र कनक हीरा लया, हो सेट्ठि सहित खिड्हूर का लोग ।।१६९।।

हो पहुंता जहां राउ धनपाल, आगैं मेल्हि भेट भरि थाल ।
राजा चरण जुहारिया, हो दोनी राइ घणेरी मान ।
कुसल क्षेम बूझी सबै, हो बैट्ठा सेट्ठि सभा के थान ।।१७०।।

हो तब जंपै राजा धनपाल, भेटि उठाइ लेहु सरीपाल ।
धवल सेट्ठि तंबोल द्यो, हो सुभट तंबोल देइ सुर भाइ ।
वणिक जके मोहण तणा, हो धवल सेट्ठि देखै निरताइ ।।१७१।।

हो सेट्ठि तणी मनि कसमसी हीयो, सिरीपाल सागर मैं दीयो ।
इहु थानक किम आइयो, हो विदा लेइ थानकि चालिया ।
उपरा उपरी बीनवै, हो इहु तो सिरीपाल आविया ।।१७२।।

हो पुरुष एक रावल महिलो, बूझै सहु वितांत पाछिलो ।
सिरीपाल इहु कोण छे, हो राजा सेवक बोल्यो कोइ ।
सागर तिरि इहु आवियो, हो राजा तणौ जवाइ होइ ।।१७३।।

हो बात सुणत मन मैं कंपिया, तक्षण मोहण थानक गया ।
वणिकपुत्र बैठा मतैं, हो अब कोई चितऊ उपाइ ।
मरण होइ सिरीपाल को, हो काची व्याधि तुटि सहु जाइ ।।१७४।।

हो मन मै मतो सेट्ठिऊ ठाणियो, डूम एक तक्षण आणियो ।
राज सभा तुम गम करौ, हो नाचहु गावहु पिंगल छंद ।
भगल सांग कीज्यौ घणा, हो राजा कै मान होइ आनंद ।।१७५।।

हो राजा तुमनैं दान करेइ, सिरीपाल नै दुऊ देइ ।
तब प्रपंच तुम उट्ठिणीज्यौ, हो सिरीपालस्यौ करि ज्यौ संग ।
बहुत सगाई काढिज्यौ, हो लाख दाम देस्यौ तुम जोग ।।१७६।।

सो सेठि वचन सुणि हरख्या भया, राजा सभा डूम सहु गया ।
औसर मांगयौ राउर्प, हो गावै नावै गीत सुचंग ।
स्वांग मनोहर प्रति करै, हो विद्या मयल करै सिर भंग ।।१७७।।

हो राजा देखि बहुत हरिदीयौ, सिरीपाल नै हुकम दीयो ।
डूम जोगै दान द्यौ, हो सिरीपाल दे दान बुलाइ ।
डूमा पाखंड मांडियो, हो रह्या सुभट नै कंठि लगाइ ।।१७८।।

हो एक डूमडी उट्ठी रोई, मेरी सगी भतीजो होइ ।
एक डूमडी बीनवै, हो इहु मेरी पुत्री भरतार ।
बहुत दिवस थे पाइयो, हो कामि तजि किम गयो भवार ।।१७७।।

हो एक डूमडी करै पुकार, पुत्र दोइ आया इक बार ।
पालि पोसि मोटा किया, हो करी लडाइ भोजन जोग ।
समुद माझ लहुडउ पडिउ, हो लाधौ प्राजैं कर्म कै जोग ।।१८०।।

हो डूम एक बोलै विहसंत, इहु मेरी भाणजी कंत ।
बहुत दिवस मिलिबो भयो, हो एक डूमडी भणै रिसाइ ।
सिरीपाल आबहु मिलौ, हो मेरी बहण पुत्र तु प्राहि ।।१८१।।

हो एक डूमडी तोभै गाल, छोडि कहा भाग्यौ सिरीपाल ।
बालपणै मुझ दुख दीयो, हो परणी नारि न छोडै कोइ ।
बात अजुगती तै करी, हो अब न जीव तो छोडौ तोहि ।।१८२।।

हो सुणि राजा डूम की बात, उपनौ दुख पसीनो गात ।
कोटपाल सेथी भणी, हो सिरीपाल नै सूली देहु ।
बात अजुगती यहु करी, हो बंधो बेगि वस्त्र सहु लेहु ।।१८३।।

हो कोटपाल सुणि राजा बात, बंधि सुभट दे मुकी लात ।
सूली जीव चलाइयो, हो गुणमाला तब लाधी सार ।
रुदन करै मस्तक धुणै, हो तजण राख्या सहु सिंगार ।।१८४।।

हो गइ वेगि थी जहां भरतार, हो कंत कंत कहि कं पुकार ।
चरण वंदि वीनती करै हो स्वामी कहो कौण विरतांत ।
जहि कारणि तुम कथीया, हो कौण दोष थे लेगी घात ।।१८५।।

हो कोडीभड बोलै सुणि नारि, जीव कर्म मिथ्यत संसारि ।
पाप पुण्य लागा फिरै, हो जैसो कर्म उदै होइ प्राइ ।
जीव बहुत लालच करै, हो नहि तै तहां कवि ले जाइ ।।१८६।।

हो गुणमाला जंपै सुणि कंत, दीसै सुभट महा बलवंत ।
गोत जाति कहि प्रापणी, हो बोल्या सुभट बूम हम जात ।
प्राइ जाति कैसी कहां, हो राजा कं भांति अपनी भ्रांति ।।१८७।।

हो तब गुणमाला करै बखाण, कहो जाति कं तजो पराण ।
संसौ भाजै मन तणो, कोडीभड जंपै सुणि नारि ।
संसौ थारो भांनिमी. हो लीया एक प्रोहण मभारि ।।१८८।।

हो वचन सुणत तहां गइ गुणमाल, रैणमंजूसा मोहणि बाल ।
नमसकार करि वीनवै, हो सखी मोकली हो सिरीपाल ।
जाति गोत तहि की कहो, हो सागर तिरि आयो सुकुमाल ।।१८९।।

हो रैणमंजूसा जंपै सखी, सिरीपाल कं दुखि हुं दुखी ।
सिरीपाल की कामिनी, हो चलहु वेगि जहां छै राज ।
संसौ भानौ मन तणो, हो मनवंछित सहु पूरै काज ।।१९०।।

हो गई दुवै थी जहां नरनाथ, नमस्कार करि जोड्या हाथ ।
रैणमंजूसा वीनवै, हो सिरीपाल को गोत उतग ।
राउ सिंघरथ पुत्र यो, हो अंग देस चंपापुर नग ।।१९१।।

हो रत्नदीप विद्याधर जाणि, विदितप्रभ तसु नाम वखाणि ।
इंद्र जेम सुख भोगवै, हो रैणमंजूसा तिहु की धीया ।
सिरीपाल हो व्याहि दी, हो कंचन रत्न डाइजो दीया ।।१९२।।

हो करि विवाहुषि ल्याइयो, धवल सेठि घरलै धालियो ।
रूप हमारो देखियो, हो पापी सेठि रच्यो मनि कूड ।
सिरीपाल जलि रालियो, हो कामी सेठि विकल मति मूढ ।।१९३।।

हो सहु विरतांत पाछिला कह्या, सेठि जके प्रपंच ठालिया ।
बात विचारी चित्त में, हो सहु सनमंध पाछिलो सुण्यो ।
मनि पछितावा बहु करै, हो जाणिकि भयो वज्र को हण्यो ।।१९४।।

हो तखण गयो राउ धनपाल, करि उछाह आण्यो सिरीपाल ।
गोवलि गूडी उछली, हो नयरा छाडिउ भुजा विसाल ।
दुवै तिया मन हरषि भई, हो रैणमंजूसा अरु गुणमाल ।।१९५।।

राजा द्वारा श्रीपाल से क्षमा याचना करना

हो राजा क्रोध मान सहु छोडि, सिरीपाल आगै कर जोडि ।
ठाडो रहि विनती करै, हो क्षमा करो हमस्यो वरवीर ।।
हम पापी जाणो नहीं, हो तुम कुलवंत सुभट वरवीर ।।१९६।।

हो सुणि जंपै कोडीभड जाण, राजा विकल विवेक अयाण ।
हीए बात सोची नही, हो कही डूम किम सागर तिरै ।
राजा पुत्री क्यु वरै, हो मुनि का वचन प्रतीति न करै ।।१९७।।

हो रैणमंजूसा हरष न माइ, सिरीपाल का वंदा पाइ ।
राज लोक मैं गम कीयो, हो राख्या कीयो बहुत सम्मान ।
भोजन दीनो भगति स्यो, हो वस्त्र जडाउ पटंबर दान ।।१९८।।

धवल सेठ को बन्दी बनाना

हो राजा किंकर पठ्या घणा, आणो बंधि धवल सेठि तंतखणा ।
बंधि सेठि ले आइया, हो मारत राउ न संका करै ।
भूस दीयो बहु नासिका, हो औधो मुख पग ऊंचा करै ।।१९९।।

हे भणै सुभट सुणि राजा बात, मेरो सेठि धर्म्म को तात ।
हम उपरि किरपा करो, हो छोडहु सेठि दया करि भाउ ।
बाबै जिसो लुणै, हो राखो बात हमारी राउ ।।२००।।

हो वचन सुणत बांग्या छोडियो, सिरीपाल सहु लेखो लीयो ।
[illegible]
सेठ तणो राखो नहीं, हो धर्म नीति मारग व्यवहार ।।२०१।।

हो प्रोहण जेता सहु कुमार, सिरीपाल दीनी ज्युंणार ।
भोजन भगति करी घणी, हो वस्त्र तंबोल दीया बहु भार ।
हाथ जोडि विनती करै हो मेरी क्षमा वचन मन काय ।।२०२।।

धवल सेठ का मरण

हो सुभट विनो जब दीठो घणो, जाणि धिगस्त जन्म आपणो ।
हीयो फाटि बाण्यो मुवो, हो परधन परतीय इंछे कोइ ।
नरक दुःख देखे घणा, हो केवलि कह्यो सुणहु सहु कोइ ।।२०३।।

हो सत्यकोप परधन कैं संग, गयो द्रव्य मरि भयो भुजंग ।
नरग तणा दुख भोगया, हो रावण परतीय मांडोआ ।
नरक तीसरैं उपनो, हो सब कुटुंब को भयो विणास ।।२०४।।

हो कीचक कीयो द्रोपदी संग, भीमराइ कीयो तसु भंग ।
ब्रह्म विरंचि तिलोतमा, हो कोडणि राव जसोघर नारि ।
नीच कुबडो सेवीयो, हो पहुंती नरकि कत नै मारि ।।२०५।।

हो बहुत जके नर नारी भया, परघन परकामिनी थे गया ।
षट दरसन मैं सहु कहै, हो जे नर परघन परतिय तिक्त ।
सर्ग मुक्त सुख भोगवैं, हो सुर नर विद्या धरत सुभक्त ।।२०६।।

हो रैणमंजूसा स्यो गुणमाल, हो महासुख भुंजै सिरीपाल ।
काल जात जाणै नहीं, हो तो लग दूत आइयो ।
कोडीभड तह वंदियो, हो कुंकुंण देस नाम सुभ कह्या ।।२०७।।

हे राजा तहां बसै जसरासि, दुर्जन दुष्टि न दीसै पासि ।
जस माला तसु कामिनी, हो पुत्री आठ महा सुकुंमाल ।
इच्छा पुरै मन तणी, हो तासु जोग परणे सिरीपाल ।।२०८।।

हो चालहु वेगि न लावहु वार, हस्ती बैसि होइ असवार।
राजा निमित्ति बुझीयो, हो दलवटण राजा धनपाल।
सुपुत्रि जो परणिसी, हो ए पुत्री परणौं सिरीपाल ॥२०६॥

श्रीपाल का कुंकण देश को गमन

हो सुण्या वचन मनि हरषो भयो, कुंकण देसि वेगि सो गयो।
राजा सन्मुख आइयो, हो बरगू नाद निसाणां वाउ।
नग्र भला सोभा करी, हे भेंट धरइ ले पहुराउ ॥२००॥

आठों कन्याओं द्वारा समस्या रखना एवं श्रीपाल द्वारा उनकी पूर्ति करना

हो आठौं कन्या ठाढी आइ, समस्या जुदी जुदी नहि कही।
सुभग गौरि बोली बडी, हो कोडीभड सुणि मेरी बुधि।
तीन पदा आगैं कहो, हो साहस जहां तहां ही सिद्धि ॥२११॥

हो सुण्या वचन बोलैं वरवीर, सुणहु कुमारि चित्त करि धीर।
सत सरीर हस्यो रहो, उदै कर्म तैसी ही बुधि।
उदिम तउ न छांडि जे, हो साहस जहां तहा ही सिद्धि ॥२१२॥

हो गौरि सिंगार भणै सुणि सच्च, गयो सर्व पेखतां मच्च।
कोडिभड सुणि बोलिगी, हो सुणहु कुमरि मन राखो ठाइ।
तीनि पदा आगैं कहौं हो मन धारा को संसौ जाइ ॥२१३॥

हो दान पूजनवि पर उपगार, भोग पभोग न भुंज्या सार।
मे मे करतां जनम गौ, हो इहि विधि किमण सचो दव्व।
जूवा राज पखेवणो, हो गया तासु पखेला भव्व ॥२१४॥

हो पोलोमी भाखियो गरिट्ठु, तेण कह्यो मिथ्यात सुमिट्ठु।
सुणि कोडीभड बोलियो, हो पोलो भी कान दे सुण्यो।
तीनि पदा आगैं कहौं, हो जाइ सब्बे संसै मन तणो ॥२१५॥

हो देव शास्त्र गुरु लहयो न भेद, जहि थे होइ कर्म को छेद।
मत मिथ्यात जु सरदहै, हो समकित लह्यो नहीं वतकिट्ठु।
जैन धर्म रस ना पियो, हो तिह नरतो मिथ्यात सुमिट्ठु ॥२१६॥

हो रणा देवी भणं भवीह, ते नर तौ पंचाइण सीह।
सुणि कोडीभड बोलियो, हो सील विहूणा लेहु मलीह।
जे चारितां निर्मला, ते नर तौ पंचाइण सीह ।।२१७।।

हो सोमा देवी कहै विचार, कोण धर्म जग तारण हार।
सुणि कोडीभड बोलियो, हो ग्यारहु प्रतिमा श्रावक सार ।
तेरहु विधि व्रत मुनि तणा, हो कुंण धम्मं जगि तारण हार ।।२१८।।

हो संपद बोलो वचन सुमीठु, सो न लजो निरखा दिठु।
सिरीपाल उत्तर दीयो, हो दीप अढाइ मध्य पइठु ।
बुरी पराइ ना कहै हो सो नर तौजे विरला दिठु ।।२१९।।

हो चंद्र लेख सुभ लषण भणेइ, सो नर तौ तिह काई करेइ।
सुभट फेरि उत्तर दीयो, हो बरष इक्यासी को नर होइ।
चौद बरष कन्या बरै, सो नर तो तहि काइ करै ।।२२०।।

हो बोलो पदमा देवि सुभग, एता कारण कहुं न लग।
सुणि कोडीभड बोलियो, हो कायर लीयो हाथ खडग।
दुहगी जोबन सूक सर, एतो कारणि कहूं न लग ।।२२१।।

आठ कन्याओं का श्रीपाल के साथ विवाह

हो सिरीपाल जब उत्तर दीयो, आठौ का मन हरष्यो भयो।
राजा लगन लिखाइयो, हो वेदी मंडप बहुत उछाह।
विप्र अग्नि साखी दीया, हो कोडीभड को भयो विवाह ।।२२२।।

हो आठ सहस परणी सिरीपाल, तहि को कौण करै वगजाल।
घोडा हस्ती को गिणै, हो सेव करै ठाडा भो बाल ।
इन्द्र जेम सुख भोगवै, हो सुख मैं जातम जाणै काल ।।२२३।।

हो एक दिवस चितै सिरीपाल, सुख मैं बार बरस गो काल।
मैणासुंदरि वीसरिउ, हो दुख करिसी कुंदापहु माइ।
सुंदरि संजम लेइसी, हो तजौ प्रमाद मिलों अब जाइ ।।२२४।।

हो आठ सहस राणी ली साथ, आठ सहस सेवैं नरनाथ ।
असू हस्ती रथ पालिकी, हो भेरि नाद निसाणां घाउ ।
इस विधि राज[illegible] तणा, हो पहुंतो नग्र उजेणी ठाम ॥२२५॥

मैनासुंदरी की चिन्ता

हो सुंदरि बात सासुस्यौ कही, बारा बरस अवधि को गई ।
कोडीभड नवि आइयौ, हो जै इह आइ आजि की राति ।
बिकलप सकलय सहु तजौ, हो निश्चै दीक्ष्या ल्यौ परभाति ॥२२६॥

हो कुंदापहु जंपै सुणि बहु, नग्र आइ बेढिउ छै कहुं ।
कौण कम्मं आवै उदै, हो दिन दस चित धीर करि राखि ।
औरैं सहु कारिज सरैं, हो पुत्री मेरो कह्यो न नाखि ॥२२७॥

हो सेना सहु छाडी तहिं ठाइ, हो गयो सुभट जहं कुंदा माइ ।
माता सेर्यां बीनयो, हो माता वेगो खोलौ द्वारि ।
सिरीपाल हौ आइयो, हो छांडहु सहु मन तणा विकार ॥२२८॥

मैनासुंदरी से मिलन

हो सुण्या वचन जब सासू बहु, मन का वंछित पूगा सहु ।
वेगि कपाटि उघाडिया, हो सिरीपाल घर भितरि आइ ।
चरण मात का ढोकिया, हो भयो हरष अति अंगि न माइ ॥२२९॥

हे मैणासुंदरी बंद्यो कंत, सासु पासि बैठी विहसंत ।
कुसल स्नेह बुझी सबै, हो जंपै सुभट पाछिली बात ।
जैसी विधि संपति लही, ते तौ कह्यो सबै विरतांत ॥२३०॥

हो मैणासुंदरि कुंदा माइ, तंक्षण ल्यायो सेना ठाइ ।
राज लोक मैं ले गयो, हो आठ सहस थी जे बर नारि ।
सासु तणा पद बंदिया, हो वस्त्र जडाउ भेट भो धारि ॥२३१॥

हो पछैं बंदि मैणासुंदरी, वस्त्र अनेक भेट ले धरी ।
भक्ति विनौ कीना घणौ, हो कनक हस्ति रथ लिया के काण ।
माता जोग्य दिखालियां, हो दूर देस की बस्त निधान ॥२३२॥

हो क्षमा तप मन हरषो भयो, सुख साता तहि तुम नें दियो ।
सिरीपाल स्यौं विनवं, हो पुत्र पुण्य थे सुरगति होइ ।
किति इक राज विभूतिया, हो मुक्ति धर्म थे पहुंचे लोइ ।।२३३।।

सम्यक्त्व की महिमा

हो समकित के बल सुर धरणेंद, समकित केवल उपजे इंद्र ।
चक्रवर्ति बल भोगवं, हो समकित केवल उपजै रिधि ।
जीव सदा सुख भोगवै, हो समिकित बलि सरवारथ सिद्धि ।।२३४।।

हो समकित सुध व्रत पालेइ, ताको मुकति तिया परणेइ ।
सुरपति किंकर सारिखा, हो दोष अठारा रहित सु देव ।
सति वचन जिनवर तणा, हो गुर निरगंथ सु जाणी एव ।।२३५।।

हो समिकित सहित पुत्र तुम आथि, इह विभूति आई तुम माथि ।
घणो अचंभो को नहीं, हो सुण्या वचन माता का सार ।
मन मैं सुख पायो घणो, हो नमसकार करि बारंबार ।।२३६।।

उज्जयिनी के राजा द्वारा श्रीपाल की पराधीनता स्वीकार करना

हो पठयो दूत सूसर के पासि, छोडि उजेणी जीव ले न्हासि ।
वेगि आइ चरणा पडौ, हो वलै बेदुणो कंवल बांधि ।
तिण पूलो दोतां गहौ, हो आउ घालि कुहाडी कांधि ।।२३७।।

हो सुभ वचन सुणि चाल्यो दूत, पंहुतो राजा पासि तुरत ।
नमसकार करि बोलियो, हो बंधि कुहाडी कवंल ओढि ।
वेगि चालि सेवा करो, हो कै तू भाजि उजेणी छोडि ।।२३८।।

हो वचन सुण्या राजा पर जल्यो, जाणिकि वैसांदर घ्रित बल्यो ।
अहंकार करि बोलियो, हो स्वामी तेरो कौण गुटेक ।
बडी बात मुख थे कहै, हो मुझको पतक्षी जाइ क्षणक ।।२३९।।

हो दूत राउस्यो विनती करै, इसो के गर्व मत हियैड धरै ।
अहंकार नीको नहीं, हो अहंकार थे रावण गयो ।
लखमण राइ निपातियो, हो लंका राज भभीषण दियो ।।२४०।।

जुरासिंध अति करतो मान, नाराइण तसु छाल्यो प्राण ।
अहंकार कीजै नहीं, हो भरथ गर्व अति करतो घणो ।
चक्रवर्ति पद भोगवे, हो बाहोबलि मान्यो तिहि तणो ।।२४१।।

हो मंत्री कहै राजथो सुद. अहंकार छोभै हो देव ।
बली सहित जोडी किसी, दलबल दीसै अधिक अपार ।
मांनो वचन वसीट्ठ को हो, हो सीस ही नग्र संधार ।।२४२।।

हो सुण्या वचन मंत्री का राइ, दान मान दे दूत बुलाई ।
कोर्ट्यभडस्यो बीनिऊ, हो मान्यो वचन तुम्हारो कह्यो ।
सेवक साथि हि दीयो, हो तक्षण सिरीपाल पै गयो ।।२४३।।

हो भेट सुभट के आगे धरी, नगरीपति की विनती करी ।
वचन तुमारा मानिया, हो सेवक वचन सुणत सुख भयो ।
बहुडि तासु उत्तर दियो, हो कुंजर चढि मिलिबा आविज्यो ।।२४४।।

हो तक्षण जाइ स्वामिस्यो कह्या, सुण्या वचन तब बहु सुख लह्यो ।
अंगपति चढि चालियो, हो मिल्या दुवै मनि भयो आनंद ।
दुवै एक गज बैट्ठिया, हो जिम आकास सुर सुमचन्द ।।२४५।।

हो बाजा बाजि निसाणा घाउ, पहुतै दुवै नग्र मैं राउ ।
घरि घरि बधावणो, हो नृति करै बहु जोबन बाल ।
सज्जन लोग अनंदियो, हो भाली भई आयो सिरीपाल ।।२४६।।

हो अंगरक्ष पहलासै साल, दान मान बुझी कुसलात ।
वस्त्र कनक दीना घणा, हो मदन सुंदरी कुंदा माइ ।
मणि माणिक्य दीना घणा, अगणित वस्त्र सुकहीन जाइ ।।२४७।।

हो जथा जोगि नग्री को लोग, वस्त्र जडाउ दी बहु भोग ।
सहु मन मै हरसा भया, हो करि ज्यौणार सुदेइ तंबोल ।
विनो भगति करि बोलियो, हो पान सुपारी कुंकू रोल ।।२४८।।

हो सुख मैं कितडक बीतै काल, जनम भूमि समरी सिरीपाल ।
सुसर तणी सुधो लायो, हो घोडा हस्ती पडे पलाण ।
रथ बैठि रांणी चली, हो मागणि बोले विरद बखाण ।।२४९।।

श्रीपाल का चम्पापुरी पहुंचना

हो आठ सहस नृप सेवा करै, दुर्जन कोइ और न करै ।
गगन सूर सूझै नहीं, हो बाजै नाद निसाणा घाउ ।
कानि पडिउ सुणि जै नहीं, हो चम्पापुरी पहुंतौ राउ ।।२५०।।

हो काको वीरदमन तहं रहै, दुर्जन को तप देखिन सकै ।
भाट वसीट्ठ जु मोकल्यो, हो जाइ कह्यौ आयो सिरीपाल ।
बाल पणै तुम काढियो, हो आठ सहस सेवै भोवाल ।।२५१।।

हो छोडि नग्र सेवा करि आउ, ग्राम कोइ बैट्ठा ही खाउ ।
राजरीति सहु परहरी, हो कोई नग्र न सेवा करै ।
तो हमने दूसण नहीं, निश्चै जौरा मुखि संचैर ।।२५२।।

हो सुणी बात गो भाट वसीट्ठ, राज सभा अति सुंदर दीठ ।
कर ऊचो करि बोलियो हो पाछै हंसि भया भोवाल ।
बात विउव बखाणियां, हो पाछै कह्यो राउ सिरीपाल ।।२५३।।

हो बात सुणत मनि कसमयो साल, कहिरै भाट कौण सिरीपाल ।
बलिहु मारै को नहीं, हो भणै भाट तुम सुणौ नरेस ।
बालपणो तुम काढियो, हो आयो फिरि बहुलो परदेस ।।२५४।।

हो तो लग चोक जु चोरी करै, जो लगु धणी नाइ संचैर ।
जीवत माखी को गिलै, हो अबै राव को छोडो भाउ ।
चलहु बेगि सेवा करौ, हो खेत धणी काढे हरि हाउ ।।२५५।।

हो वीरदमन बोलै सुणि भाट, तै कांयो हो बीट्ठो जाट ।
मुख संभालि बोलौ नहीं, हो धणी आपणास्यौं कहि जाइ ।
राति बेगि तू भाजि जे, कै रण संग्राम करौ वदि आइ ।।२५६।।

हो भाटि मांनियो रण संग्राम, आयो कोडीभड के ठाम ।
बात पाछिली सहु कही, हो सिधूडा बाजिया निसाण ।
सुर किरण सूझै नहीं, हो खडी खेह लागी असमान ।।२५७।।

हो घोड़ा भूमि खणं खुरताल, हो मानिकि उलटिउ मेघ अकाल।
रथ हस्ती बहु सामती, हो बहु पक्ष की सेना चली।
सुभट संजोग संभालिया, हो धणी दुहु राजा की मिली ।।२५८।।

हे बैसि मतं बोलै परधान, सेना होइ निरब्बली घाय।
इह तो बात बणे नहीं, हो राजा दूवै करिसी जुध ।
जो जीतै सो हम धणी, हो विणसै सगली बात विरुद्ध ।।२५९।।

श्रीपाल एवं वीरदमन के बीच युद्ध

हो बात विचारी टहूस्यो कही, हो दहू भूपती आनंद लई ।
दुवै सुभट जोडी करं, हो बहुविधि जुद्ध मल्ल को भयो ।
सिरिपाल रणि आगली, हो बीर दमन तक्षिण बंधियो ।।२६०।।

हो करि जुहार सेवक बहु आइ, लियो राज चंपापुरि आइ ।
वीर दमन तब छोडियो, हो उत्तम क्षमा करी कर जोडि ।
पूजि पिता इहु राजल्यो, हो बुध बहु चूक हमारी खोडि ।।२६१।।

हो वीर दमन जंपै तजि मान, पुण्यवंत तुम गुणह निधान ।
राज भोग भुंजो धणी, हो हमसी लेस्या संजम भार ।
राज विभूति न सासुती, हो जैसो बीज तणो चमकार ।।२६२।।

हो उत्तम क्षमा सबन स्यों करी, वीर दमन जिन दीक्षा धरी ।
बारह विधि तप बहु करै, हो तेरह विधि पालै चारित्त ।
दस विधि धर्म गुणा सहिउ, हो तिण सोनो सम जाण्यो वित्त ।।२६३।।

हो करै राज राजा श्रीपाल, सुख मै जालन जाणे काम ।
इन्द्र जेम सुख भोगवै, हो चोर चबाड न राखै नाम ।
श्रावक व्रत पालै सदा, हो गाई सिंघ पावै इक ठाम ।।२६४।।

हो सभा थान बैठो सिरीपाल, माली मेल्हि फूल की माल :
नस्या चरण विनती करी, हो स्वामी थारै पुण्य प्रभाइ ।
श्रुत सागर मुनि आइयो, हो बन की सोभा कही न जाइ ।।२६५।।

श्रुतसागर मुनि द्वारा श्रीपाल के पूर्व जन्म का वर्णन

हो सुणी बात मन हरषो भयो, दान मान माली नैं दियो ।
मुनिवर वंदन चालियौं, हो राज लोक चाल्यो सहु साथ ।
बहु आडंबरि बन गयो, हो नम्या चरण दे मस्तिक हाथ ।।२६६।।

हो धर्मवृद्धि मुनि दीनी आइ, जहि थे पाप सर्व क्षो जाइ ।
द्वै विधि धर्म पयासियो, हो श्रावक धर्मसुर्ग सुख देइ ।
जती धर्म शिवपुरि लहै हो बहुडि न आवागमण करेइ ।।२६७।।

हो हाथि जोडि जंपं तजि मान, स्वामी तुहे अवधि के जाण ।
कहो भवांतर पाछिला, हो राज अष्टि कणि पापहि भयो ।
कोड उदेबर नीकस्यौ, हो धवल सेट्ठि सागर मै दीयो ।।२६८।।

हो कौण पाप थे डूम जु कह्यो, पाछै राज पिता को लह्यो ।
सागर तिरिहुं नीकस्यौ, हो मैणासुंदरि उवारि राउ ।
कोढ कलंक सर्व गयो, हो ते सहु बात कहो मुनिराउ ।।२६९।।

हो सुणी बात श्रुतसागर भणी, सावधान होइ राजा सुणी ।
कहो भवांतर पाछिला, हो भरत क्षेत्र विद्याधर सेणि ।
रत्नसंचपुर सोभितो, हो बसे राउ श्रीकांत सुतेणि ।।२७०।।

हो पट तीया ताकै श्रीमती, दान पुण्य व्रत सोभै सती ।
जैनधर्म निश्चौ करै, हो राजा विकल विषै रस लुध ।
धर्म भेद जाणै नहीं, हो सुखस्यौ काल गमै पिय मुध ।।२७१।।

हो राउ एक दिनि बन मैं गयो, गुप्ति समाधि मुनि देखीयो ।
भाव भगति करि वंदियो, हो द्वै बिधि धर्म सुण्यो करि भाउ ।
व्रत लीया श्रावक तणा, हो वंदि मुनि घरि पहुतो राउ ।।२७२।।

हो बहुत दिवस व्रत पालि अभंग, मिथ्या ल्यांको कीयो संग ।
भ्रष्ट भयो व्रत छाडिया, हो राज भ्रष्ट तिहि पापिहि भयो ।
मुनिवर राख्यो ताल मैं, हो तेणि पापि सागर मैं दियो ।।२७३।।

हो कोढी मुनिवर सेथी कह्यो, तासु पाप थे कोढी भयो ।
मुनिवर जल थे काढियो, हो तहि थे समुद्र पैरि नीकल्यौ ।
नीच नीच मुनिस्यौ कह्यो, हो तहि थे डूमा माहे मिल्यो ।।२७४।।

हो सेवक हूता सातसै साथ, कोढी स्यहु भाख्यौ मुनि नाथ ।
भगरक्ष ए सात सै, हो बावै जिसौ तिसा फल खाइ ।
मन मैं आरति मत करौ, हो अंतकाल तैसी गति थाइ ।।२७५।।

हो श्रीमती सुर्णो फल की बात, पायो दुख पसीनौ गात ।
कालौ मुख भरतार कौ, हो पालि व्रत पापी करि भंग ।
जती जोग्य बाधा करी, हो मिथ्या ताकै पड़ियौ संग ।।२७६।।

हो कहुं कही राजास्यौ जाइ, रांणी अन्नपान नवि खाई ।
तुम आचार सबै सुण्या, तत्क्षण राउ तिया पै जाइ ।
निंदा करि बहु आपणी, हो नाहक मुनी विराध्या जाइ ।।२७७।।

हो करि दिलासा राणी तणी, दंड लेण चाल्या मुनि भणी ।
तत्क्षण जिण मंदिरि गया, हो देव शास्त्र गुरु संख्या माइ ।
आठ द्रव्य पूजा करी, हो मुनिवर पासि बईट्ठा आइ ।।२७८।।

हो बोलै राउ जोडिया हाथ, विनती एक सुर्णो जति नाथ ।
हम थे चूक पडी घणी, हो श्रावक व्रत को कीनौ भंग ।
मुनिवर नै बाधा करी, हो भयो पाप मिथ्याती संग ।।२७९।।

हो हौं पापी अति होणौ भयो, पाप पुण्य को भेदन लह्यौ ।
विकल पणै व्रत छांडिया, हो जहि व्रत थे सहु न्हासै पाप ।
तो व्रत सुभ उपदेसि जे, हो मेरा मन को जाइ संताप ।।२८०।।

हो मुनि भणै सुणि राउ विचार, सिद्ध चक्र व्रत त्रिभुवणि सार ।
पूर्व पाप सहू क्षौ करै, हो कातिग फागुण सुभ आषाढ ।
आठ दिवस पूजा करौ, हो भणै जिणेसुर सुख को गाढ ।।२८१।।

हो राणी सहु राजा व्रत लियो, अतीचार रहित व्रत कियो ।
मन मिथ्यात सबै तज्यो, हो मरण काल लीयो सन्यास ।
तजिया प्राण समाधिस्यौ, हो सुरपति स्वर्ग ग्यारहवै वास ।।२८२।।

हो लै सन्यास श्रीमती मुई, कंत इंद्र इंद्राणी भई ।
इंद आउ सहु भोगइ, हो सुभरणा मन हर्षे भयो ।
कुंवारहु सुत अवतरिउ, हो इहु सिरीपाल राउ तू भयो ।।२८३।।

हो श्रीमती राणी फिरी बहु काल, मैणा सुंदरि भई बिसाल ।
इंद्राणी पद भोगयो, हो राजा एहु भवांतर जाणि ।
पाप पुण्य थोरो कह्यो, हो स्नेह बैर पूर्बिलै प्रमाणि ।।२८४।।

हो सुण्यौ भवांतर हरख्यो भयो, नमसकार करि घरनै गयो ।
सुखस्यौ काल गमै सदा, हो देव सास्त्र गुरु पूजा करै ।
समायक पोसो धरै, हो वचन जिणेसुर हियडै धरै ।।२८५।।

श्रीपाल का वैराग्य होना

हो सुखस्यौ कितउक बीतौ काल, वन क्रीडा चाल्यो सिरीपाल ।
राज लोक सहु साथि ले, हो हस्ती कीच गल्यो देखियो ।
मन मैं संका उपनी, हो जन्म हमारो नाहक गयो ।।२८६।।

हो खेल्यो नहीं विषै रस रूढ़, कामिनी कीच गल्यो मतिमूढ ।
मदिरा मोह बिटंबियो, हो मै मै करि भंभाला पडउ ।
लह्या नहीं सुख सासुता, हो फिरिउ मूढ चहु गति मै पडिउ ।।२८७।।

हो दीसै जाण्यौ संपदा रासि, तै सहु कंठिउ मोह की पासि ।
जीवन छूटै बापुडी, हो कोइ अब चिति जे उपाउ ।
बंधण तूटै कम्मं का, हो ले तप भाउ आतम भाउ ।।२८८।।

हो परिगह भार पुत्र नै दियो, तंक्षण जाइ मुनि बंदियो ।
हाथ जोडि विनती करै, हो स्वामी दक्षा करहु पसाउ ।
जीव सासुता सुख लहै, हो दया प्रणाम सदा तुम भाउ ।।२८९।।

हो अट्ठाईस मूल गुणसार, सब परिगह को कीयो निवार ।
भेष दिगम्बर धारियो, हो मैणासुंदरि तजि घर भार ।
व्रत लीया अजिका तणा, हो जाण्यो सबै अथिर संसार ।।२९०।।

हो सिरिपाल मुनि तप करि घोर, तोडै कर्म घातिया घोर ।
निर्मल केवल ऊपनौ, हो ज्ञान न्हौलै सुरपति आइ ।
पूजा करि चरण तणी, हो तंक्षण गयो आपणै ठाइ ।।२९१।।

हो तज्या मुनी चौदा गुणट्ठाण, भयो सिद्ध पहुतो निर्वाण ।
सुख संबै अति सासुता, हो जामण मरण नहीं जुरा बाल ।
रोग विजोगन संचरै, हो जोति सरूप न व्यापै काल ।।२९२।।

हो मैणासुंदरि तप करि मुई, दसमैं सु सुरपति भई ।
लिंग कामिणी छेदियो, हो अवर जके मुनि अजिका भया ।
जहि जैसो तप कियो, हो तहि तहि तैसा सुख पाविया ।।२९३।।

ग्रन्थ प्रशस्ति

हो मूलसंघ मुनि प्रगटौ जाणि, कीरति अनंत सील की खानि ।
तासु तणौ सिष्य जाणिज्यौ, हो ब्रह्म रायमल्ल दिढ़करि चित्त ।
भाउ भेद जानै नहीं, हो तहि दीठ्ठो सिरीपाल चरित्र ।।२९४।।

हो सोलहसै तीसौ सुभ वर्ष, हो मास असाढ भण्यौ करि हर्ष ।
तिथि तेरसि सित सोभनी, हो अनुराधा नक्षत्र सुभ सार ।
कर्ण जोग दीसै भला, हो सोभनवार शनिश्चर वार ।।२९५।।

हो रणथ अमर सोभै कविलास, भरीया नीर ताल चहुं पास ।
बाग बिहरि बाडी घणी, हो धन कण संपति तणौ निधान ।
साहि अकबर राज हो, सोभै घणा जिणेसुर थान ।।२९६ ।।

हो श्रावक लोग बसै धनवंत, पूजा करै जपै अरहंत ।
दान चारि सुभ सकतिस्यौ, हो श्रावक व्रत पालै मन लाइ ।
पोसा सामाइक सदा, हो मत मिथ्यात न लगता जाइ ।।२९७।।

हो ईसै अधिका छिनवै छंद, कविपण भणौं तासु मति मंद ।
पद अक्षर की सुधि नही, हो जैसी मति दीनो ओकास ।
पंडित कोइ मति हसौ, तैसी मति कीनो परगास ॥२९८॥

रास भणो सिरीपाल को ॥

इति श्रीपाल रास समाप्त ।

प्रद्युम्न रास

रचनाकाल संवत १६२८

भादवा सुदी २ बुधवार

रचनास्थान—हरसोरगढ़

प्रद्युम्न रास

मंगलाचरण

हो तीर्थंकर वंदौ जगिनाहो, हो जिह समिरण मनि होई उछाहो ।
हुवा मवछै होइस्यजी, हो त्याह को ज्ञान रह्यो भरि पूरे ।
गुण छियल सोभै भला जी, हो दोष अठारह कीया दूरे ।।
रास भणो परदवणको जी ।।१।।

हो दुजा जी पणउं जिण की वाणी, हो तीन्यौ जी लोक तणी थिति जाणी
मूरिख थे पंडित करै जी, हो मत मिथ्यात कीयौ तहि दूरे ।
द्वादसांग गुण अति भला जी, हो अल्या वचन जहि रत्या दूरे ।।२।।

हो तीजाजी पणउं गुरु निरंगथो, हो भूला जी भाव दिखावण पंथो ।
तिहूंऊण नव कोडि छै जी, हो भजण तारण नाव समानो ।
तिरियवंता जे कह्या जी, हो जिणवर वाणी करै वखाण ।।३।।

हो देव सास्त्र गुरु वंदा भाए, हो भूलोजी आखर अणो ठाव ।
कामदेव गुण विस्तरौ जी, हो हौ मूरख अति अपढ अयाण ।
भाव भेद जाणौ नही जी, हो थोडी जी बुधि किम करो वखाण ।।४।।

प्रारम्भ

हो क्षेत्र भरथ दहु जंबू दीपो, हो नग्र द्वारिका समद समीपो ।
सा निरमापी देवता जी, हो जोजन बाराह कै विस्तारे ।
सोभा इंद्रपुरी जिसी जी, हो राज करै जादमा कुमार ।।५।। रास

हो पहलौ जी राजा अंधीक वृष्टि, हो जैन सरावक समिकित दृष्टि ।
दस कुमार घरि अति भलौ जी, हो सुता एक कुंता सुकमाला ।
रूपि अपछरा सारिखी जी, हो पांडुराय सा परणी बाला ।।६।।

हो लहुडौ जी पुत्र तासु वसुदेव, हो देव सास्त्र गुर जार्णं सेऊ ।
रोहिणी देवी कामिणी जी, हो रूपकला अपछरा समानी ।
जिनधर्म निरची करै जी, हो [illegible] त्रिभुवन जाणी ॥७॥

हो नारायण बलिभद्रति पुत्रो, हो दुवं महाभड दुवं मित्रो ।
पुरिष सलाका मं गिण्या जी, हो जैन धरम उपरि बहुभाउ ।
मन मिथ्यात न सरदहै जी, हो दुर्जन दुष्ट न राखं ठाऊ ॥८॥

नारद ऋषि का आगमन

हो एकै दिनि ते किल्न दिवाणो, हो नारद रिषि आयो तिह थाने ।
करी जादमा वंदनी जी, हो दीन्हौ अधिक जामा मानो ।
हाथ जोडि ठाढा भया जी, हो कनक सिंघासन ऊचौ जी थानो ॥९॥

हो जादौ बोल्या नारद स्वामी, हो तुम्ह तौ जी छौ आकासां गामी ।
दीप अढाई संचरौ जी, हो पूव पछिम केवल ज्ञानी ।
चौथो काल सदा रहै जी, हो तह की हमस्यौ कहि ज्यो बातो ॥१०॥

हो नारद बोल्यो जादौ राऊ, सुणौ कथा करि निर्मल भाऊ ।
सुम को संचो है सही जी, हो पूरब पछिम केवल जाणी ।
समोसरण बारा सभा जी, हो भवियण सुणै जिणेसुर वाणी ॥११॥

हो जहि भवि की मन पड़ै विवासं, वाणी सुणतां सासौ नासं ।
सभा लोग संतोषि जे जी, हो जती सरावग दहू विधि धर्मं ।
आगम अध्यातम कह्या जी, हो कथा सुणत भाजं सहु भर्मो ॥१२॥

हो सुणी जादमा नारद बातो, हो हरिष्यौ चित्त विकास्यौ गातो ।
सभा लोग संतोषिया जी, हो नारद राज लोक मै चाल्यो ।
सतिभामा घरि संचरौ जी, हो गर्बवंती तिहि दिसं न्हाल्यो ॥१३॥

हो रिषि भासं सति भामा राणी, हो करि सिंगार तू अति गरवाणी ।
गरब पहारी छै दई जी, हो देव गुरा की भगति न जाणी ।
मदि मोह सूझं नहीं जी, हो मूरिख आपो आप बखाणं ॥१४॥

सत्यभामा का उत्तर

हो देवि भणं मुनि जे तप कीजे, हो तप करि चारि कषायन कीजे ।
मान करत तप फल नही जी, हो मान बिना जिणवरि तप भास्यौ ।
तुम्ह सौ मान तजो नही जी, हो कहिनै जी मुकति किसी परिजास्यौ ।।१५।।

हो भणं रिषिसुर देवि अभागी, हो हमनै जी सील देण तू लागी ।
पाप धर्म जाणं नही जी, हो मुझ नै जी मान दान सहु थापं ।
सुर नर सहु सेवा करै जी, हो तीनि लोक मुझ थे सहु कपं ।।१६।।

हो मुनिस्यौ भणं नारायण धरणी, हो उपसम धर्म जती की करणी ।
सत्रु मित्र सम करि गिणे जी, सोनौ तिणौ बराबरि जाणौ ।
भाणई छोड भोजन करै जी, हो सो मुनिवर पहुंचै निर्वाणि ।।१७।।

हो सुणी बात नारद पर जलियौ, हो जाणिकि धृत अग्निस्यौ मिलियौ ।
मन मैं चिंता अति करै जी, हो भामा लेई समद मैं रालौ ।
कामिणि हत्या थे डरी जी, हो कै इह अग्नि मधि परिजालौ ।।१८।।

हो नारदि हियडै बात विचारी, हो नाराइण आणौ नारी ।
इहि थे रूपि जु आगली जी, हो सौकि तणं दुखि धणं विसूरै ।
राति दिवसि कुढि बौ करै जी, हो बहुडि पराधा मरमन झूरै ।।१६।।

नारद ऋषि का प्रस्थान

हो बात विचारि रिषीसुर चाल्यौ, हो विद्याधर को देस निहाल्यौ ।
भामा सम कामिणी नही जी, हो मन मैं भयो अधिक अभिमानो ।
हियडै चिंता बहु करै जी, हो तजी नींद अंस पाणी खानो ।।२०।।

हो भूमि गोचरी राजा ठाम्यो, हो पटण देस नग्र गढ गामों ।
नारद परिथी सहु फिरी जी, आयौ चलि कुंडलपुर ठाए ।
दीठी सोभा नग्र की जी, हो राज करै तहा भीषम राए ।।२१।।

हो श्रीमती पटि तिया घरि सोहै, हो रूप कला सुर सुंदरि मोहै ।
रूप पुत्र रूपहि भलौ जी, हो सुता रुक्मिणी रूपि अपारो ।
सुगं अपछरा सारिखी जी हो, सोभै भीषम कै परिवारे ।।२२।।

हो भीषम भवनी सुमति हि म्हालै, हो आयो जी मुनिवर भिक्षा कालै ।
भोजन दीन्है भगतिस्यौ जी, हो तिहि औसरि रुकमिणी पधारी ।
मुनिवर बंद्यो भाउस्यौ, हो सुवाजी जोबनि देखि कुमारी ॥२३॥

हो मुनिवर रुविणि सुता बूझै, हो स्वामी जी ज्ञान तीनि तुम्ह सूझै ।
कौण रुपिणी परणिसी जी, हो मुनिवर भणै अवधि तहि जाणो ।
किस्न तीया याह होई सी जी, हो सोला सहस ऊपरि पटराणी ॥२४॥

हो बात कही मुनि वन मैं गईली, हो सुणि राइ भीषम स्यौ कहियौ ।
रुपिणि बर हरि मुनि कह्यौ जी, हो भपिम हंसि बोल सुणि बाई ।
किस्न नीच घरि पोखियौ जी, हो भव लग ग्वाले गाईं चराई ॥२५॥

हो सोमलपुर सोभै सविसालो, हो राजकरै भेषज भोवालो ।
मद्रीराणी तिहि तणै जी, हो तिहि कै पुत्र भलौ सिसपालो ।
तीनि चखिस्यौ जाइयौ जी, हो दुतिया जी चंद्र जिम बधै कुमारो ॥२६॥

हो भेषज राजा मुनिवर बूझै, होसी जो ज्ञान तीनि तुम्ह सूझै ।
चषि तीजो किम जाइ सीजी, हो मुनिवर बात रावस्यो भाखौ ।
तिह कै हाथि मरण सहजी, हो हाथ छिवत चखि तीजो जासी ॥२७॥

हो मद्री कै मनि उपनी संका, हो चाली जी पुत्र लीयो करि अंका ।
बालक नै लीयो फिरै जी, हो आई जी चली द्वारिका द्वाए ।
हाथ लगायो किस्न को जी, हो तीजो नेत्र सो गयो पलाए ॥२८॥

हो हाढी सम जोडै हाथो, हो पुत्र भीख दिहु जादौनाथो ।
हसि नाराईण बोलियो जी, हो गुनहु एकसउ छोडौ मातो ।
बोल हमारो छै सही जी, हो पाछै करो सहीस्यो धातो ॥२९॥

हो पुत्र लेई मद्री घरि आई, हो तिहनै पुत्री दीन्हीं हो बाई ।
बोल हमारो किम चलै जी, हो महाबली सोभै सिसपालो ।
रूपकला गुण चातुरी जी, हो दुर्जन दुष्ट तणै सिर सालो ॥३०॥

नारद का कुंडलपुर आगमन

हो तहि औसरि तहां नारद गईयौ, हो भीषम वंदि विनौ बहु कीयौ।
सिंघासण थानक दीयौ जी. हो रूप कुमार मुनीश्वरि दीठ्ठो।
मन मैं सुख पायो घणौ जी, हो अैसो रूप नवि अरणी दीठ्ठो ॥३१॥

हो नारदि मन मै बात विचारी, हो रूपि बहण जै होइ कंवारी।
काज हमारा सहु सरै जी, हो खिण एक भीषम रावलि गईयौ।
नमस्कार राण्या कीयौ जी, हो कनक सिंघासण बैसणो दीयो ॥३२॥

हो नारद आइ रूपिणि देख्यो, हो देखि रूप हियडै आनंद्यो।
नारदि दीन्ही आसिका जी, हो होजे किस्न तणी पटराणी।
सोला सहस सेवा करै जी, हो सुणी रूपणी नारद बाणी ॥३३॥

हो मुनि विचार मन माहि कीयौ, हो रूपिणी तणो रूप लिखि लीयो।
किस्न सभा तक्षण गयो जी, हो नारायण वंद्यो मुनिराज।
मनी लेख हरिनै दीयो, हो देखि लेख मनि भयो उछाहो ॥३४॥

नारद द्वारा श्रीकृष्ण के सामने प्रस्ताव

हो नारायण मुनिस्यो हसि बोलै, हो नही कामिणी इहि कै तोलै।
नारि असी नवि रवि तलै जी, हो ईस्यौ रूप होइ देव कुमारी।
नाम अपछरा सारिखी जी, हो कै यौह रूप जोतिमा नारी ॥३५॥

हो नारद बोलै हरी नरेसो, हो कुंडलपुर शुभ बसै असेसो।
भीषम राजा राजई जी, हो तिह कै सुता रूपिणी जाणै।
तासु रूप लिखि आणियो जी, हो सोभै नाराइण कै राणि ॥३६

हो तौ लग भीषमि लगन लिखायौ, हो कन्या केरौ ब्याहु रचायो।
हो रूपिणि चिति चिन्ता भई जी, भूवा जाणि कवरि को भाउ।
वचन मुनीसुर की सही जी, हो किस्न बुलावण रच्यौ उपाउ ॥३७॥

हो समाचार सहु छानै लिखिया, हो गूढ वचन ते मुख थे कहिया।
जाहु दूत द्वारामती जी, हो लेख हाथि नाराईण देज्यौ।
रूपिणि चिंता बहु करै जी, हो थ्योरौ मुखा खानि सहु कहिज्यौ ॥३८॥

हो चीरी लै सो चल्यो बसीठो, हो नग्र द्वारिका सुंदरि दीठो ।
नाराईण घरि संचरोउ जी, हो चीरी देई विनो बहुकीयो ।
समाचार कह्या मुख तणाजी, हो बाचत लेख हरिषियो हीयो ।।३९।।

हो माघ उजाली आठै जाणौ, हो गोधलूक सुभ लग्न बणाणौ ।
बेगा हो बणन में आईज्यो जी, हो नागि पूजिवा रूपिणि आवै ।
ले करि घरांह पधारिज्यौ जी, अे बात तुम्हरै मनि भावै ।।४०।।

हो लगन दिवस को आयो कालो, हो ब्याह करण चाल्यौ सिसपालो ।
सजन सेना सारखी जी, हो वांचि लेख हरि बन मैं आयो ।
नागदेव थानक जहां जी, हो हरी आपणं रूप छिपायो ।।४१।।

हो ताहि औसरि रूपिणि तहा आई, हो नाग देव की पूज रचाई ।
हाथ जोडि विनती करै जी, हो जं छ सकल देवता साचो ।
नाराइण अब आइज्यो जी, हो फुरिज्यो सही तुम्हारी बाचो ।।४२।।

रूक्मिणी हरण

हो नाग बिंब पाछै हरि बैठौ, हो सुणी बात हसि तखिण उठिऊ ।
नेत्र नेत्रस्यौ मिली गया जी, हो उपरा ऊपरी बहुत सनेहो ।
रथि बैसाणी रूपिणी जी, हो चल्यो द्वारिका नरहरि देउ ।।४३।।

हो मेघज पुत्र चढिउ सिसपालो, हो जाणिकि उलटिउ मेघ अकालो ।
सूर किरिणि सूझै नहीं जी, हो बखतर जीन रंगावलि टोपो ।
होका हाकि सुभट करै जी, हो रूपिणि हरण भयो अति कोपो ।।४४।।

हो कुंडलपुर में लागी सारो, ठाइ ठाइ वपडि पुकारो ।
रूपिणि नै हरि ले गयौ जी, हो राजा जी भीषम बाहर लागो ।
साठि सहस रथ जोतिया जी, हो तीनि लाख घोड़ा सूर आगो ।।४५।।

हो साठि सहस राज घंटा वागी, हो बाहर सबल पुठि बहु लागी ।
रूपिणि नै डर ऊपनो जी, हो नाराइण स्यो भणै कुमारी ।
दल बल साहण आईयाजी, हो स्वामी किम होईसी उबारी ।।४६।।

हो सुणी बात हसि किस्न बखाणी, हो मेरा जी बल को मरम न जाणी।
देखि तमासा हम तणा जी, हो लाउ त्रिष देखिउ परचंडो।
हरि बाणस्यो छेदियोजी, हो पडिऊ भूमि भयो सतखंडो ॥४७॥

हो रूपिणि बात हरिस्यो भासी, हो भाई रूप हमारो राखी।
इहु पसाऊ हमने करो जी, हो मान्यो जी किस्नि तीया को बोलो।
अभै दान दीन्हो सही जी, हो रूपिणि को मन भयो भडोलो ॥४८॥

हो लालग बाहर नीडो आई, हो रूपिणि दिसि तुह घर भाई।
सिसिपाला दिसि हो फिरो जी, हो हरिस्यो भणं भाइ सिसिपालो।
खाटो मीठो अब लहै जी, हो भागो कहां छूटिसी ग्वालो ॥४९॥

हो किस्न भणं तू जाइ सिसपालो, हो तेरो घात न करस्युं बालो।
बोल हमारो ना चलै जी, हो माता मद्री बोल बुलायो।
गुनह एकसउ छोडिस्यो जी, हो पाछै जी मरण तुम्हारो आयो ॥५०॥

हो हरिस्यो भणं बहुडि सिसपाल, हो आयोजी सही तुम्हारो काल।
हा हा कीया न छुटिसि जी, तू छै नीच ग्वाल को ग्वालो।
देस देस को काढियो जी, हो सिंघ गुफा बयो पैसे स्यालो ॥५१॥

हो बोल एकसऊ गिण्या असेसो, हो खंच्यो धनष कान लगं कंसो।
सिर छेद्यो सिसपाल को जी, हो रूप कुमार साथि करि लीयो।
रेवत पर्वति ते गया जी, हो ब्याहु रूपिणि कैसो कीयो ॥५२॥

द्वारिका आगमन

हो हलधर किस्न द्वारिका आया, हो जीरया जी सतु निसाण बजाया।
हलधर के थानकि गया जी, हो किस्नि लीयो रूपिणि उगालो।
महा सुगंध सुहावणो जी, हो गयो जहां सतिभामा थानो ॥५३॥

हो बंधितं बो मिस्या करि सोवै, हो बास सुगंध भ्रमर मन मोहो।
हो भामा आंचल छोडियो जी, हो हाथि उगाल लेई बहु बासो।
हम थे कांई छिपावो जी, हो आग्यो किस्न कीयो बहु हासो ॥५४॥

हो सतिभामा केसौस्यौ रिसाई, हो ग्वाल पाण की बात न जाई ।
अभिप्राइ मनि जाणियौ जी, हो जं तुम्ह आणी परणि कुमारी ।
हमनं तिया दिखालि द्यौ जी, हो जै छै तुम्हनै अधिक पियारी ।।५५।।

हो बोलं किस्न भली यह बातो, हो बन मै चलहु देविको जातो ।
रुषिणि पूजा आईसी जी, हो पाछै केसौ मंत्र उपायो ।
बन मै रूपिणि ले गयौ जी, हो ओलो खीरोदक फहरायो ।।५६।।

हो बैठी देवी कै थानै, हो ऊपरि फूलडीया असमाने ।
सतिभामा आगम भयो जी, हो देवी भोलै चरणा लागी ।
पूजा करिसा वीनवै जी, हमनै हरि कै करौ सुहागी ।।५७।।

हो हसि बोलं हरि सुणि सतिभामा, हो मनवांछित तुम्ह पुरवै कामौ ।
सकल देवि इह सुख करै जी, हो जाणि कूड सहिभामा स्यौ ।
ए प्रपंच सहु तुम्ह तणा जी, हो हाड हमारा जीभा नै हसं ।।५८।।

हो रूपिणि नमसकार उठि कीयौ, हो गौरा तण भामा नै दीयौ ।
दुवै सौकि सायां मिली जी, हो भामा का मंदिर कै काठै ।
मंदिर महा करांईयो जी, हो रहे रूपिणी दीन्हौ मानौ ।।५९।।

हो एक दिवसि हरि मंत्र ऊपायौ, हो दरजोधन घरि लेख पठायो ।
जाह दूत हथणापुरि जाहो, थारै जी पुत्री छै वधि माला ।
रूपिणी भामा सुत भणं जी, हो तिहनै इह परणाज्यो बाला ।।६०।।

हो दूत चाल्यौ हथणापुरि गईयो, हो लेख हाथि दरजोधन दीया ।
तुम्ह छौ मोटा राजईजी, हो मान्यौ बचन भयो अहलादो ।
राजा दूत संतोषियौ जी, हो बचन हरी का महा प्रसादो ।।६१।।

हो मांगी जी बिदा दूत घरि आयो, हो नाराईण नं लेख बचायो ।
नाराईण मनि हरिषीयौ जी, हो हरी दूत पठ्यो तिया थाने ।
रूपिणि भामास्यौ कह्यो जी, हो कर्म प्रापणौ तुम्ह पतिवाणौ ।।६२।।

हो जो पहली तिया पूत जणेसी, सो दूजी को सिर मुंडेसी ।
दरजोधन धिया परणिसीजी, हो मानी बात हरी की भाखी ।
सौक्यां छोड हंसी पडी जी, हो हलधर जेठु दीयो तहा साखी ।।६३।।

हो चौथो स्नांन रूपिणीयो, हो रिति कौ दान किस्नि जी दीयो ।
रहिक गर्भ भीषम सुता जी, हो भामा गर्भ रह्यौ तिहि वारो ।
दहुं सौकि मन हरिषियो जी, हो भया महोछा मंगलचारो ।।६४।।

हो गर्भ तणा पूरा नव मासो, हो रूपिणि पूगी मन की आसो ।
पुत्र महाभड जीइयौजी, हो सूती जहां देवकी कुमारो ।
टोब दही थाली भरी जी हो नंदिण गयो बधाऊ हारो ।।६५।।

सत्यभामा एवं रूक्मिणी के पुत्रोत्पत्ति

हो सतिभामा जायौ सुत भानो, हो गयौ बधाऊ हरि कै थानै ।
रूपिणि सेवक दिट्ठि गई जी, हो सेवकि हरि नैं दही बंदायो ।
पुत्र रूपिणी कै भमो जी, हो दान मान सेवक नैं दीया ।।६६।।

हो पाछै सति भामा कै आयो, हो दान मान तिहिनैं पणि दीयौ ।
रली रंग हुवा घणा जी, हो नग्र द्वारिका भयौ उछाहो ।
घरि घरि गावै कामणी जी, हो मनि हरिक्षा सहु जादो राउ ।।६७।।

हो धूमकेत कौ खल्यौ विमानो, हो गगन पंथि द्वारमति थानौ ।
रूपिणि मन्दिर ऊपरै जी, हो रह्यो खूंचि नवि चालौ आगौ ।
सत्रु मित्र मुनि छै सही जी, हो बितर चित्तहि बिचारै लागो ।।६८।।

प्रद्युम्न का हरण

हो उतरि भूमि देखियौ कुमारो, हो मन माहै सो करै विचारो ।
सत्रु हमारो यहु सही जी, हो मात कल्हा सो लीयो उचाए ।
गगनि पंथि ले संचारिऊ जी, हो बालक राल्यौ सागर मध्ये ।।६९।।

हो पाछै चिंति विचारी बातो, हो मांस पिंड बहु करौ न घातो ।
बन मैं भीत सिंघ घणा स्यालो, ताक्षिक सिला तलि चंपियेगी ।
हो बिन्तर गयो जहां निज थालो.......................।।७०।।

काल संवर को बालक की प्राप्ति

हो तिहि औसरि काल सअर श्रायौ, हो खल्यौ बिमान न चलै चलायौ ।
लक्षण धरती ऊतरौ जी, दीठी जी सीला बहु लेई ऊसासौ ।
करस्यौ उपै हरी करी जी, हो माहै बालक करै विकासो ।।७१।।

हो विद्याधरि सो बालक लीयौ, हो जिम निधि लांधा हरिषै हीयौ ।
सामोद्रिक गुण आगलौ जी, हो कंचण माला बुलाई राणी ।
बालक लो तु तुम्ह नै दीयो जी, हो राणी बाले निर्मल वाणी ।।७२।।

हो थारै जी पुत्र पांचसै सारी, हो इहि बालक को करै प्रहारो ।
ते दुख जाई न मैं सह्या जी, हो सुणि बोलो संवर नरनाहो ।
हम पाछै इहु राजई जी, हो जाणौ जी सही हमारी बोलो ।।७३।।

हो कंचन माला बालक लीयौ, हो घरि चालण को उदिम कीयौ ।
रचि बिमाण सोभा धणी जी, हो धंटा बूबर मोती माला ।
बालक नै ले चालीया जी, हो मेघकूट गढ अधिक रसालो ।।७४।।

हो राजा जी बालक मदिरि आण्यौ, हो बालक जन्म महोछौ ठाण्यौ ।
दीन दुखी यो देश्या घणा जी, हो राजा जी मन मैं करै विचारो ।
कामदेव औतार छै जी, हो नाम दीयौ परदमन कुमारो ।।७५।।

हो इह तो कथा इहां ही जाणौ, हो नग्र द्वारिका बात बखाणो ।
जे दुख पाया रुपिणी जी, हो बालक सेज्या थानि न दीसै ।
रूदन करै हरि कामिणी जी, हो धूणै सीस दुवै कर पीटै ।।७६।।

हो राजा जी भीखम तणी कुमारी, हो हिइडौ सिर कूटै अति भारी ।
दीसै जी खरी डराभणी जी, हो सुणी बात किस्न कै दिवाणि ।
मुख तंबोल हरि रालीयोजी, हो हाहाकार भयौ असमाने ।।७७।।

हो हरि जी बात विचौर जोई, तीन खंड मैं बली न कोई ।
पुत्र हमारौ जो हरै जी, हो हरि रूपणि कै मन्दिर आयौ ।
सांत वचन प्रतिबोध दे जी, हो ठांई ठाई लिखि लेख पठायो ।।७८।।

नारद ऋषि का आगमन

हो तौ लग नारद मुनिवर आयौ, हो सुणी बात तिहि बहु दुख पायौ ।
रूपिणि मंदिर संचरिउजी, हो मुनि आगम सुणि हरि तिय जागी ।
नमसकार विधि स्यौ कीयौ जी, हो स्वामी हो विथना जी करी अभागी ।।७९।।

हो नारद जपे सुणहु कुमारी, हो उपजं विणसं इहि संसारी ।
दुखि सुखि जीव सदा रहे जी, हो पाप पुण्य द्वं गल न छोडं ।
सहे परीसाह तप करं जी, हो पहुंचे मुकति कर्म सहु तोडं ।।८०।।

हो पुत्री हो आकासां गामी, हो बूझिसी आइ केवली स्वामी ।
दीप अढाई हौ फिरौ जी, हो मनि विसमाई करं पटराणी ।
बालक सौधो हो करुजी, हो नारदनाम सहीस्यौ जाणी ।।८१।।

नारद का प्रस्थान

हो बात कही मुनि गिगनाह चढियो, हो जाणिकि सुगि गरड पंखि उडियौ
नदी नग्र छांड्या घणा जी, हो पूर्व विदेह पुहकली देसो ।
पुंडरीक अति भली जी, हो नारद नग्री कीयो प्रवेसो ।।८२।।

सभा लोक अचिरिज भयौ जी, हो पदमनाम पुछं चकेसो ।
हो श्रीमंधर तहां जिणवर नाथो, हो वंद्या चरण केइ सिरि हाथो ।
इहु सरूप माणस तणौ जी, हो कीट समान नर कौण सुदेसो ।।८३।।

हो सुणीहु चक्रेसुर केवल वाणी, हो दखिण दिसा मेर की जाणी ।
भरथ षेत्र द्वारामती जी, हो नवमौ हरि तिहि कं सुत जायौ ।
धूमकेत हरि ले गयो जी, हो तासु गए सं बूझण आयौ ।।८४।।

हो पदम नाम बूझं मोकालो, हो कौण वंर थे हरियो बालो ।
पूर्व भवांतर सहु कहो जी, हो भणं केवली सुणौ हु नरिंदो ।
नख बेठौ नारद सुणं जी, हो कहो पाछिलो सहु सनबंधो ।।८५।।

प्रद्युम्न के पूर्व भावों का वर्णन

हो मगह देस तहां सालीग्रामो, हो विप्र सोमदत्त बसं सुठामो ।
अग्नि वाई सुत तिहि तणा जी, हो विद्या गर्व करं अति भारी ।।
मुनिवरस्यौ भेटा भई जी, हो मुनिवर भासं अवधि विचारी ।।८६।।

हो विद्या गर्व न कीजै बालो, हो इहि नगरी बनि था तुम्हस्यालो ।
चर्म जोत भक्षिण कीयौ जी, हो मह वेदना मरणह पायौ ।
सोमदत्त घरि उपना जी, हो श्वाल जाट धरि देखो थाए ।।८७।।

हो छोडि मिथ्यात अणुव्रत लीया, हो दान चारि तिह पात्रा दीया ।
करुणा समकित पालियो जी, हो मरण समै तजि पासी मन्नो ।
प्राण समाधिस्यो छोडियाजी, हो हुवा देवते सुगि उपनो ।।८८।।

हो पूरी आऊ तहां थे आया, हो सागर सेट्ठि तणे सुत जाया ।
क्षेत्र भरथ अमरापुरी जी, हो पूरण मणिभद्र तसु नामो ।
व्रत पाल्या श्रावक तणाजी, हो छूटा प्राण गया सुरठामो ।।८९।।

हो पूरी आऊ तहां थे भईया, हो नग्र अजोध्या ते अवतारिया ।
हेम नाम राजा बसै जी, हो मधू कीट उपना तसु नंदो ।
राजा हो मनि हरिषिऊ भयोजी, हो रूपकला गुण पूर्यो चंदो ।।९०।।

हो हेम भूपती दिक्षा लीनी, हो राज विभुति मधु नै दीन्ही ।
राजा पिता कौ भोगवंजी, हो एक दिवसि बनि क्रीडा जाए ।
भीम महाबलि बसि कीयौ जी, हो बटपुर बीरसेनि कै ठाए ।।९१।।

हो बीरसेन दीन्हौ बहु मानो, हो भोजन वस्त्र सिंघासन थानो ।
मधुकीटक संतोपिया जी, हो मधु राजा चंद्राभा राणी ।
बीरसेणि की हरि लई जी, हो मधु अतिबात अजुगता ठाणी ।।९२।।

हो बीरसेणि तब बहु दुख पायौ, हो कामिनी काज अजोध्या आयौ ।
तारन मेलै कामिणीजी, हो बीरसेणि मनि करै विचारो ।
तापस का व्रत आचर्या जी, हो धिग धिग जंपै इहु संसारो ।।९३।।

हो मधु पति प्राणियो बंधि अन्याई, हो तलवर बोलै सुणहु गुंसाई ।
परकामिणि इहु भोगवै जी, हो मधु राजा जंपै तलि यारो ।
इहि नै सूलि पाईज्यो जी, हो अनाई कौ एहु विचारो ।।९४।।

हो चंद्राभा मधु सेथी जंपै, हो बात सुणत मुझ हियडौ कंपै ।
बात विचारो आपणी जी, हो हमनै कहैत किम हरिल्यायो ।
पर कामिणि तुम्ह भोगवौ जी, हो कोई अन्याई सुणी न्यौ जे ॥९५॥

हो तीया वचन सुणि मधुवर धीरो, हो चली कंपणी अधिक सरीरो ।
कर्म अजुगतौ हम कीयौ जी, हो पुत्र बुलाइ दीयौ सहु राजो ।
भाऊ मुद्ध संजम लीयौ जी, हो करै घोर तपु आतम काजो ॥९६॥

हो एक मास कौ धरि सन्यासो, हो उपनो सर्ग सोलहै बासो ।
इंद्र विभूति सुभोगवैजी, हो, पूरी आउ तहां थे चाइयौ ।
रूपिणि कै सुत उपनौजी, हो तिहिनै धूमकेत ले गईयौ ॥९७॥

हो वितरि आणि सिलातलि चंपिऊ, हो तिहि पापी को हीयो न कंपिउ ।
आप थानकि गयौ जी, हो कर्म जोगि काल संवर आयौ ।
देखि सिला ऊसास ले जी, हो सिला तलि थै बालक घरी ल्यायौ ॥९८॥

हो कंचणमाला बालक लीयौ, हो पूर्वस्नेह महोछौ कीयौ ।
चंद्राभासी कंचणाजी, हो मधु कौ जीव रूपिणी बालो ।
पूर्व वैरि तिहि हरि लियो जी, हो वितर वीरसेण भोवालो ॥९९॥

हो रूपिणि बालक मुकति गामी, हो सोलह गुफा जीति होई स्वामी ।
पाछै द्वारिका पहुचिसजी, हो मात पिता नैं मिलिसी जाइ ।
सोलह वर्ष पछै सही जी, हो दरजोधन धिइ परणौ जाए ॥१००॥

हो सहु सनबंधि जिणेसुरि कहियो, हो नारदि सुण्यौ बहुत सुख लहियो ।
नमसकार करि चालीयौ जी, हो मेघकूट गढ संवर राऊ ।
कंचणमाला कामिणी जी, हो देखि कवर मुनि भयौ उछाहौ ॥१०१॥

नारद का पुनः द्वारिका आकर समझाना

हो तखिण मुनि द्वारिका गईयौ, हो रूपिणि मंदिरि संचरौ जी ।
हो समाचार ब्यौरौ कह्यौ जी, रूपिणि घरांह भयौ आनंदो ।
चोदलि गूडी ऊछली जी, हो मनि हरिसा सहु नादौ नंद ॥१०२॥

हो रूपिणिस्यौ सुनि बात पयासी, हो सोलह बरस गयां घरि आसी।
रीता सरवर जलि भरै जी, हो सूका बन फूलै असमानो ।
दूध गिरै तुम्ह अंचला जी, हो तौ जाणी साची सहनाण ।।१०३।।

हो बात सुणी अति हरिखो हीयौ, हो नमसकार नारद नै कीयौ।
सफल जन्म मेरो कीयौ जी, हो इह तौ कथा द्वारिका जाणौ ।
कामदेव संवर घरा जी, हो सुणौ तासु की कथा बखाणौ ।।१०४।।

काल संवर के यहाँ प्रद्युम्न का बडा होना

हो सिघ भूपतीस्यौ करि खाति, हो संवरि राजा मांडी राते।
पुत्र पंचसै मोकल्या जी, हो जाहु वेगि सिघ भूपति मारो।
देखौ पोरिष तुम्ह तणो जी, हो ले बीडौ चढि चल्या कुमारो ।।१०५।

हो संघ भूपतां आगै हारया, हो केई भागा के रिण मैं मारया ।
संवर दुख पायो घणो जी, हो चाल्यौ राऊ दमांमो कीयो ।
कामदेव आडौ फिरिउजी, हो देखौ पिता हमारो कीयो ।।१०६।।

हो गयौ काम जहां सिघ नरेसो, हो भरै सुभट भिडिपडै असेसा ।
कामदेव रिणि आगलो जी, हो नागपासि ले राली कामो।
सिघ भूपती बंधियो जी, हो तखिण गयो पिता के गामो ।।१०७।।

हो नमसकार संवर नै कीयौ, हो राजा सिघ बंधि करि दीयो।
संवर अरांह बधावणौ जी, हो जाण्यौ पुत्रि कीया जे काजो।
परजा लोक बुलाईया जी, हो साखि देई दीन्हौ जुगराजो ।।१०८।।

हो पुत्र पंचसै संवर केरा, हो दुष्ट भाव अति करै घणेरा ।
मैणसरिस जीतै नहीं जी, हो सोलाह गुफा तहां से दीयो।
वितर निवसै अति घणा जी, हो कातर नर को फाटै हीयो ।।१०९।।

हो कामदेव कै पुन्य प्रभाए, हो वितर देव मिल्या सहु आए।
करी मैण की बंदना जी, हो दीन्हा जी विद्या तणा भंडारो।
छत्र सिघासन पालिकोजी, हो सेवी घनष खडग हथियारो ।।११०।।

हो रत्न सुवर्ण दीया बहु भाए, हो करै बीनती आगै आए।
हम सेवक तुम्ह राजई जी, हो सोलाह गुफा भले आयौ।
बितर देव संतोषिया जी, हो कंचणमाला कै मनि भायौ ॥१११॥

हो नमसकार माता नैं कीयो, हो राणी अजरामर सुत कहियो।
रूप मयण को देखियो जी, हो मन माहै सा करै विचारो।
ईसा पुरिस नैं भोगवै जी, हो तिहि कामणि को फल जमारो ॥११२॥

हो भणै मयणस्यो छोडी लाजो, हो करि कुमार मन बंछित काजो।
हम सरि कामिणि को नहीं जी, हो भणै मयण इहु बचन अजुगतो।
महा नरक को कारणो जी, माता नैं किम सेवै पुत्तो ॥११३॥

हो राणी सहु सनबंध बखाण्यो, हो राजा तू सिलतलि थे आण्यो।
छोलि हमारी थालियो जी, हो इसी बात को दोष न कीजै।
कुखि हमारी को नही जी, हो मनुष्य जन्म को लाहो लीजै ॥११४॥

हो ऊतर दीन्हो रुपिणि बालो, हो राजा जी मस्तकि ऊपरि कालो।
जीवत माछी को गिलै जी, हो जिहि को लाजे लूण रुपाणी।
तिहि को बूरो न चितिजै जी, हो कह्या बचन इम केवल वाणी ॥११५॥

हो राणी भणै राउ डर मानैं, हो विद्या तीनि लेहु घौ छानैं।
राऊ न तुम्हस्यो बीतिसी जी, मैंयण भणै सुणि मात बिचारो।
जुगती होई सुहो करो जी, हो झूठ न जाणौ बोल हमारो ॥११६॥

हो विद्या चढी काम कै हाथो, हो ही बालक तुम्ह राणी मातो।
नमसकार करि बीनवै जी, हो ईक माता अरु भई गुराणी।
विद्या दान दीयो घणो जी, हो पुत्र जोगि सो काज बखाणी ॥११७॥

हो कंचणमाला बहु दुख करियौ, हो विद्या दीन्ही कामन सरियौ।
बात दुहुं विधि बीगडीजी, हो पली चित्ति न बात बिचारी।
हस्त परत दूर्यो गयो जी, कूकरि खाधी टाकर मारी ॥११८॥

हो पुत्र पंचसै लीया बुलाइ, हो सारहु बेगि काम तैं जाए ।
ते मन मै हरषा भया जी, हो मयण लेई बन क्रीडा चल्या ।
मांझि बावडी चंपियौ जी, हो ऊपरि मोटा पाथर राल्या ।।११९।।

हो कामदेव ते सहु पाकडिया, मयण नग्र मैं आइयो जी ।
हो राणी नेत्र रुधिर अति चूवै, करि प्रपंच तनु पडियो जी ।
हो हम नैं पापी मैंणा बिगोवै, रास भणौ परदवण को जी ।।१२०।।

हो राजा आगैं भई पुकारो, हो कोटी भयौ परदमन कुमारो ।
मेरो अंग बिलूरियो जी, हो संवरि राइ कोप बहु कीयौ ।
मात करी परदमन कौ जी, हो सहु सेवक नं दूवौ दीयौ ।।१२१।।

हो सेवक जाई मैंयणस्यो लागा, हो केई जी भागा के रिणी मारया ।
आप राउ संवर चढिउजी, हो कामदेव संवर बहु भिडिया ।
विद्या जकुजभ कीयौ घणौजी, हो जाणिकि माता कूं जर जुडिया ।।१२२।।

हो जव राजा की सैंना भागी, हो विद्या तीनि लीया पैं मांगी ।
राणी मनि बिलखी भई जी, हो विद्या तौ ले गयौ कुमारो ।
राजा मन मैं चितवै जी, हो देखौ राउ तणा व्योहारो ।।१२३।।

हो संवरि बाण जाई नचि संचिउ, नागपासि स्यौ तंक्षण बंधिउ ।
कामदेव रिणि जीतीयौ जी, हो तौ लग नारद मुनिवर आयो ।
मैयणि मुनी का पद नम्या जी, हो हरिष दुहुं कै अंगिम भावै ।।१२४।।

हो नारद भणै मयण सुणि कले, हो तुम्ह तौ जो करियौ काम अजुगतौ ।
स्वामी गुरु किम बंधि जै जी, हो पालि पोसि जहि कीया ठाढो ।
रास चरण नित बंदि जैजी, हो विनौ भगति अति कीजै गाढो ।।१२५।।

हो सुणी बात राजा छोडिउ, हो नमसकार करि द्वै कर जोडिउ ।
हम थे चूक घणी पडी जी, हो संवर राई बहुत सुख पायौ ।
समाचार नारद कहै जी, हो कामदेव नैं लेवा आयौ ।।१२६।।

हो घर नैं गमन करै हरि बालो, हो गयो जहां थी कंचणमालो।
चरण मात का ढोकिया जी, हो हमिस्यौ करिज्यो खिमा पसाउ।
हम बालक तुम्ह पोखिया जी, हो हमनैं चलण द्वारिका भाउ ॥१२७॥

हो नमसकार राजा नैं कीयो, हो मान बहुत बहु लौ दीयो।
हम बालक था तुम्ह तणाजी, हो हम द्वारिका चलण को भाउ।
भला प्रसाद सु तुम्ह तणा जी, हो पूर्व स्नेह तजो मत राऊ ॥१२८॥

हो रचौ विमाण मुनि बहु मणि जडियो, हो तोडै मयण भूमि गिरि पडियो।
बहुडि रच्यो तिहि तोडियो जी, हो नारद भणै न करहु उपाऊ।
बिलंब करण बेला नहीं जी, हो बरी तुम्हारी मान विबहो ॥१२९॥

विमान पर चढकर द्वारिका के लिये प्रस्थान

हो रच्यो विमाण महामणि जडियो, हो नारद सहित मयण चढि चलियो।
नमसकार अवधारि ज्यो जी, हो चढिउ विमान गगनि असमानो।
नग्र देस सागर नदी जी, हो परबत दीप महागढ थानो ॥१३०॥

हो आगै कैरो देखि बरातो, इह बरात कोणै तणी जी।
हो एक भणै दरजोधन जानो, नग्र द्वारिका जाईसी जी।
हो दधिमाला नैं ब्याहै भानो, रास भणी परदमण कोसजी ॥१३१॥

प्रद्युम्न द्वारा कौतुक करना

हो भील रूप करि ठाढो आगैं, हो चौकी दाण हमारा लागै।
इह चौकी भीला तणी जी, हो कैरो लोग भणै करि हासी।
कौण बात पाणकि कही जी, हो इह लौ जी जान हरी कं जासी ॥१३२॥

हो हरि की एक द्वारिका गांउ, हो हम पाणक बन खंड का राउ।
कैसो ये हम राजई जी, हो जानी बोलै कायौ लागै।
साचा बचन तुम्ह भाखि ज्यौ जी, हो दमडी एक अधिक मत मांगौ ॥१३३॥

हो टांडै बस्त भली होई सारो, हो सो लेस्यां इहु लाग हमारो।
तब तुम्ह नैं पहुचाई स्यां जी, हो जानी बोल्या करि बहु रीसो।
भली बस्त इह लाडिली जी, हो कहनैं जी किस्न पुत्र तिया लेस्यौ ॥१३४॥

हो मीलरूप बोलै बलिवंतो, हो लेस्यौ जी लाडी साहो तुरंतो ।
सुणि कैरो नं रिस भई जी हो जान लोग घाणक स्यौ लागा ।
भग्न लडाइ जी कीयौ जी, हो लाडी तजि सहि कैरो भागा ॥१३५॥

हो लघि माला त्रियानि बैसाणे, हो तंक्षण गयौ द्वारिका थानै ।
बाहुरि वन मैं गम कीयो जी, हो भणै मयण कहि मालाकरी ।
इहु बन कुणंक राईयौ जी, हो वन सतिभामा किस्न वियारी ॥१३६॥

हो माया का घोडा करि मयणो, हो मालीस्यौ बोलै सुभ बइणो ।
लहु सोना को मूंदडो जी, हो घोडा दोई चराकण देजो ।
भूखा दिन दुहु यहुंतणा जी, हो दाम च्यारि अधिके राखे जो ॥१३७॥

हो घोडौ तोडि कीयौ बन छारो, हो माली रावलि गयौ पुकारो ।
भान कुवरस्यौ बोलवै जी, हो घोडा देखण आयो भानो ।
मयण विप्र बूढो भयौ जी, हो घोडा ले बाढो चौगानो ॥१३८॥

हो भणै भान बंभण कहि मोलो, हो याह घोडा को कायौ मोलो ।
बूढो बंभण बोलियो जी, हो बार एक तू चढि दौडावै ।
टाट ताजी परखिजे जी, हो मोल कहौ जे तुम्ह मनि भावै ॥१३९॥

हो भानकुमार चढ्यौ हसि घोडै, हो पडिउ भूमि जब घोडौ दौडै ।
बूढो बंभण बोलियो, हो तुम्ह तो कहिज्यो किस्न कुमारो ।
गदहो को असवार छै जी, हो घोडा तणी न जाणै सारो ॥१४०॥

हो भान भणै सुणि विप्र विचारो, हो फेरौ घोडा करि असवारी ।
विप्र बात हसि बोलियो जी, हो नौसे बरष ईक्यासी लागा ।
कहि जजमान किसी करौ जी, हो देह तणा सगला बल भागा ॥१४१॥

हो भणै भान चढि कंधै मेरे, हो करि असवारी घोडा फेरो ।
कंधै पग दे सो चढिऊ जी, हो फैरया जी घोडा चाबका दीया ।
भाडा ऊभी रालियो जी, हो माया का घोडा दूरि कीया ॥१४२॥

हो गयौ जती होई जहां पणिहारी, हो कमंडल भरण देहु जादो मारी ।
पाणी सहु कमंडलि गिल्यो जी, हो पणिहारी बहु करै पुकारी ।
म्राणि चौहटै फोडियो जी, हो चाल्या खाल नीरकी धारी ।।१४३।।

हो सतिभामा घरि गयो कुमारो, भानकुमार ब्याहु क्योंणारो ।
विप्र रूप बूढो भयो जी, हो छिटिक्या होठ निकस्या दंतो ।
मुंडि हाथ डगमग करै जी, हो बैठो मंडप माह हंसतो ।।१४४

हो भणै विप्र सुणि भामा बातो, हो भूखो छातो तूटै मातो ।
भोजन थारै घरि घणो जी, हो बंभण भजि प्रघाई जिमावै ।
इंद्री पोखै विप्र का जी, हो तो मन बंछित थारै पावै ।।१४५।।

हो नमसकार सतिभामा कीयौ, म्रायौ थाल बैसणै दीयौ ।
बैसि विप्र भोजन करौ जी, हो सालि दालि घ्रित घणा पखले ।
भोजन सहु जिणवार को जी, हो थाली भोजन टाकन दोसे ।।१४६।।

हो पाणी ले सगलौ पीयौजी, हो पाछे विप्र सराफज दीया ।
लहू भोजन तू पापी लीयें, हो घालि अंगुली करी ऊकारी ।
घर आंगण छांर्दि भरयो जी, हो भव गया न जाई सहारी ।।१४७।।

हो पाछे रूप ब्रह्मचारी कीया, हो दीरघ दंत थर हरै हीयो ।
स्यामवर्ण बूढो भयो जी, हो म्रायो वेगि रूपिणी थानै ।
नमसकार माता कीयौ जी, हो पंचलि चाल्यो बूध आसमानै ।।१४८।।

हो जतो भणै मुझ डोलै काया, हो गाढो भोजन ऊपरि माया ।
माता भोजन वेगि द्यो जी, हो बालि चूल्हौ जीवन जोगो ।
चूल्हे आगि बलै नही जी, हो रूपि दुख पुत्र को बिजोगो ।।१४६।।

हो लाडू नाराइण नैं कीया, हो लाडू वोई जती नैं दीया ।
भूख जाइ छह मास की जी, हो जती भणै मुझ भूख घणेरी ।
लाडू व्याधि बहुडि दीयाजी, हो माता भूख न जाइ हमारी ।।१५०।।

हो भणं जती किम बिलखी मातो, हो कुंण दुख थे दुर्बल गातो ।
हियडा की चिंता कहौ जी, हो रूपिणी मन को भणं सतापो ।
चिंता सहु हियडा तणी जी, हो सुणहु बात स्वामी गुरु बापो ।।१५१।।

हो म्हाया पुत्र असुर हरि लीयो, हो नारदि जाई गएसी कीयो ।
श्रीमंधर जिण बूझियो जी, हो जिणवरि संबर घराहु बतायो ।
विद्याधन विलवै घणी जी, हो सोलह [illegible] ।।१५२।।

हो स्वामी आजि अवधि दिन केरो, हो अजौहु न आयो बालक मेरो ।
परिपूर दिन आजि को जी, हो तहि थे चिंता दुर्बल गातो ।
आण जाहि ली असि भला जो, हो लक्यो तंबोल अन्न सहु नीरो ।।१५३।।

हो सती मणं दुख म करि अभागी, हो हमने जी पुत्र आपणो जाणो ।
करो काजु जो तुम्ह कहो जी, हो रूपिणि मन मै करे विचारो ।
अवं हीण दीसे जती जी, हो ईसो पुत्र किम होई हमारो ।।१५४।।

हो बात रूपिणी मन मै आणी, हो मुनि वचन पूगी सहै नाणी ।
दूध अंचला चालीयो जी, हो कामदेव मनि करै विचारो ।
माता दुख पाणे घणो जो, हो प्रगट रूप तब भयो कुमारो ।।१५५।।

हो नमस्कार करि चरणां लागो, हो भीषम पुत्री को दुख भागो ।
असुरपाल आनंद का जी, हो बूझै बात हरिष करि मालो ।
सहु संबर का घर तणी जी, हो मयण मूल को कह्यौ विसालो ।।१५६।।

हो भणं मात धनि कंचनमालो, हो बालक सुख दीठा बहु कालो ।
मैयण रूप बालक भयो जी, हो धाई मात का आंचल चूखै ।
खिण ठाढो खिणि गिरि पडै जी, हो रोवै हंसै खणक मै रूसै ।।१५७।।

हो बरष एक चूहं को डोले, हो वचन सुहावा तोतला बोले ।
धूलि भरिक माता मिलै जी, हो रूपिणि के मनि भयो विकासो ।
बालक का सुख भोगया जी, हो मयण मात की पूरी आसो ।।१५८।।

हो तौ लग भामा नारि पठाई, हो गावै गीत द्वारिका सुगाई ।
सिर मूंडण रूपिणि तणौ जी, हो मयण भणै मां कौण विचारो ।
गावत आवै कामिनी जी, हो इसौ मो सिर मूंडिवा हमारो ।।१५९।।

हो पहलो जी पुत्र होय जणेसी, हो सा दूजी को सिर मूंडेसी ।
पुत्र होउ पैहेलो पछै जी, हो कामदेव तब मंत्र उपायौ ।
भाया की करि रूपिणी जी, हो पौलि द्वारणै बैठो जी ।।१६०।।

हो उपरा ऊपरी मूंडि सिर घालो, हो नाक कान लुणि ले भयालो ।
गावत चालो चौहटै जी, हो ताली पीटि हसै सहु लोगो ।
नाक कान सिर मुंडिया जी, हो कुण विधाता भयो विजोगो ।।१६१।।

हो सति भामा देख्यौ व्योहारो, हो जेट्ठ बलीस्यौ करै पुकारो ।
देखि बात रूपिणि घरि जाय, हो देखि बली रूपिणि घरि गइयौ ।
हो वेण बहु नैं बोलस्या जी, हो विप्र रूप आडौ पडि रहियौ ।।१६२।।

हो हलधर भणै विप्र सुणि भाई, हो छोडि द्वार आघेरौ जाई ।
हलधर स्यौ बंभण भणै जी, हे देव भूख हम परे संताए ।
रूपिणी घणौ जिमाईयौ जी, हो पैंड एक मुझ गयौ न जाई ।।१६३।।

हो हलधर बंभण सेती लागौ, हो उट्ठि विप्र को ताण्यौ पागो ।
बंभणि पग पसारियौ जी, हो गयौ हली कै साथि हि लागो ।।१६४।।

हो छोडि पग बलिभद्र विचारै, हो इहु अचिरज मुझनैं बहु भासै ।
इहु दीसै कोई बली जी, हो मयण प्रपंच एक तब कीयौ ।
रूपिणि नैं हडि लै चल्यौ जी, हो चालि विमानि गगनि संचरियौ ।।१६५।।

हो बैट्ठा जादौ सभा दिवाणो, हो कामदेव जंपै करि माणो ।
किस्न तीया हडि लै चल्यौ जी, हो तुम्ह सहु राजा विरुद बुलावो ।
नेजा बांधै चमर काणो, हो जैं बल छै तो आइ छुडावो ।।१६६।।

हो कहिज्यो जी तुम्ह बलिभद्र भुझारो, हो बाना घालि होइ असवारो ।
रूपणि नैं हुं ले चल्यो जी, हो पोरिष छै तो आई छुडाजे ।
कै बाना सहु रालि द्यो जी, हो पाछै जी मुख तु किसो दिखालो ।।१६७।।

हो तुम्ह बसदेव कहै रणिस्तरा, हो विद्याधर जीतिया घणेरा ।
देखो पौरिष तुम्ह तणोजी, हो नाराइण छै पुत्र तुम्हारो ।
तासु तीया हुं ले चल्यो जी, हो देखो जी बल छै कितउ एक थारो ।।१६८।

हो अरजन कहै धनषधर राए, हो तेहि बैराटि छुडाई गाए ।
जै बल छै तो आई ज्यो जी, हो भीम मल्ल तुम्ह बडा भुझारो ।
रूपिणि बाहर लागि ज्यो जी, हो कै रालि द्यो गदा हथियारो ।।१६९।।

हो निकुल कुंत सोभै तुम्ह हाथे, हो कहि ज्यो बलि पांडवां साथे ।
अब बल देखो तुम्ह तणो जी, हो सहदेव ज्योतिग जाणै सारो ।
कहि रूपिणि किम छूटि सी जी, हो इहि ज्योतिग को करहु बिचारो ।।१७०

हो नाराइण तिहुं खंडा राणो, हो राजा मानै सहु तुम्ह आण ।
कहि ज्यो मोटा राजई जी, हो जिहि की कामिणि हडि ले जाजे ।
पाछा मैं पति किम लहै जी, हो पोरिष छै तो माई छुडाजे ।।१७१।।

हो सुणी बात जादौ सहु कोपा, हो थर हरि मेरु कुलाचल कंप्या ।
नाराइण बाहर चढिऊ जी, हो छपन्न कोडि की सेना चाली ।
घुरैह दमामा रिण तणा जी, हो डस्या नाग सहु धरती हाली ।।१७२।।

हो देखि मयण अति बाहर गाढी, हो रूपिणि नारद की नय छांडी ।
विद्यादल सहु संजोईया जी, हो पडिली चोट पयांदा आई ।
पाछै घोडा घालीया जी, हो रूंड मुंड अति भई लडाई ।।१७३।।

हो असवारां मारै असवारा, हो रथ सेथी रथ जुडै भुझारो ।
हस्तीस्यौ हस्ती भिडैजी, हो घणो कहो तो होई विस्तारो ।
किस्न तणो सहु दल हण्योजी, हो नाराइण मनि करै विचारो ।।१७४।।

हो करि दाहिणै गदा जब लीयो, हो तब रूपिणि को समक्यो हीयो ।
नारद सेथी बीनवैजी, हो मऊं पुत्र उहां भरतारो ।
दुहं माहि काइ मरै जी, हो बात दुहूं घर जाई हमारो ।।१७५।।

हो नारद आइ किसनस्यौ बोल्यो, हो कहि नै गदा किषि उपरि तोलै ।
इहु परदमन कुमार छै जी, हो पाछै आई मयण समझाए ।
आयुध सगला राखि थो जी, हो चरण पिता का ढोको जाए ।।१७६।।

हो हरि परदमन राखि हथियारो, हो मिल्या दुवै आणंद अपारो ।
कुसल समाधि दुहु कही जी, हो बाजै नाद निसाणा घाउ ।
मयण कटक ठाढौ कीयौ जी, हो पुत्र सहित घरि पहुतौ राऊ ।।१७७।।

हो हरि रूपिणि नै मिलियौ नंदो, हो सहु जादौ नै भयौ आनंदो ।
द्वारामती बधावणी जी, हो बंध्या तोरण मोती माला ।
घरि घरि गावै कामिणी जी, हो घरि घरि नाचै बहु छंदि बाला ।।१७८।।

हो गिण्यौ महुर्त लगन लिखायौ, हो कामदेव को व्याहु रचायौ ।
चौरी मंडप अति बण्या जी, हो रूपिणि मंदिरि होई बधावा ।
सतिभामा बिलखी गई जी, हो गावौ कामिणी गीत सुहावा ।।१७९।।

हो दरजोधन कन्या परणावै, हो सजन सगाई लेख पठाया ।
उदधिमाल की मांड हो जी, हो मेघकूट तिहां लेख पठायो ।
विनौ भगति लिखि जुगति स्यौ, हो कंचण माला संवर आयो ।।१८०।।

हो कन्या वर कै तेल लगायौ, हो चोवा चंदन वस्त्र पहिरायां ।
चौरी विप्र बुलाईयो जी, हो बंभण भणै वेद झुणकारो ।
देसांतर साखी भयो जी, हो उदधिमाल वर मयण कुमारो ।।१८१।।

हो वर कन्या भांवरि फिरि चारे, हो दरजोधन करि गहि ती झारी ।
हाथ छुडावण धीय तणो जी, हो रथ हस्ती कंचण के काणो ।
छत्र चवर दासी घणी जी, हो कामदेव ने दीन्हो दानो ।।१८२।।

हो कामदेव जयमाला घाल्यो, हो सजन लोक मिल्या तिहि ठाए ।
अथा जोगि पहिराईया जी, हो मास एक तहा रही बराती ।
भोजन भगति करी घणी जी हो सहु को घरि पहुती कुसलाती ।।१८३।।

हो कामदेव को भयो विवाहो, हो रूपिणि कै मनि भयो उछाहो ।
बहुदल आणी हरिषस्यौ जी, हो दुर्जन दुष्ट न बात सुहाई ।
सजन धाते हरिषीया जी, हो रूपिणि आनंद अंगिन माई ।।१८४।।

हो लोग द्वारिका हरि घो वालो, हो सुख मैं जातन जाण्यौ कालो ।
इंद्र जेम सुख भोगवेंजी, हो नेमिकुमार भयो वैरागी ।
बंध्या पसू छुडाईया जी, हो संयम लीयो व्याहु थे भागो ।।१८५।।

हो केवल णाणी भयो जिणंदो, हो केवलि पूजा विधिस्यौ इंदो ।
समोसरण बारह सभा जी, हो सुरनर विद्याधर सहु आया ।
वाणी उछली केवली जी, हो श्रावक धर्म्म सुणो सहु आए ।।१८६।।

हे हली भणै दे मस्तिक हाथो, हो प्रस्न एक बूझो जिणनाथो ।
संसो भाजै मन तणो जी, हो द्वारामती किस्न को राजो ।
केतो काल सुखी रहै जी, हो छपन्न कोडि जादो सहु साजो ।।१८७।।

हो जिणवर बोलै केवल वाणी, हो बरस बारहे परलो जाणी ।
अग्नि दाझि सी द्वारिका जी, हो दीपाइण थे लागै आगे ।
नग्री लोग न ऊबरै जी, हो हलधर किस्न छूटिसी भाजे ।।१८८।।

हो जाणि केवली साची बातो, हो पाया दुख पसीज्यौ गातो ।
केवल भाख्यौ ते सही, हो केसो भणै धर्म्म सहु कीज्यौ ।
जहि को मन वैरागि छै जी, हो छोडि मोहनी दक्षा लीज्यो ।।१८९।।

हो कामदेव अरु संबु कुमारो, हो जाण्यो सहु संसारु असारो ।
मांगी सीख पिता तणी जी, हो नेमीसुर पै संजम लीयौ ।
मोह विकल्प सहु तज्या जी, हो सहु परिगह नै पाणी दीयौ ।१९०।।

हो अथिर संपदा रूपिणि जाणी, हो जब सांभली जिणेसुर वाणी ।
भाराइण हूंती ओधांसो, हो आर्जिका तणा लीया व्रत सारो ।
साओ एक मुकलातो कीयो जी, हो सहु परिग्रह को कीयो निवारो ।।१६१।।

हो मयण मुनीसुर तप करि घोरो, हो घाति अघाति कर्म्म हणि सूरो ।
सिद्धतणा सुख भोगवै जी, हो सौ रूपिणि मरतां मन निषेध्यो ।
सुर्गि सोलह देवता जी, हो समकित कै बलि स्त्रीलिंग छेद्यो ।।१६२।।

ग्रन्थ प्रशस्ति

हो मूलसंघ मुनि प्रगटो लोई, हो अनंतकीर्ति जाणै सहु कोइ ।
तासु तणो सिषि जाणिज्यौ जी, हो ब्रह्म रायमलि कीयो बखाणो ।।१६३।।

हो सोलहसै अठवीस विचारो, हो भादवा सुदि दुतीया बुधवारो ।
गढ हरसोर महाभलो जी, हो तिमै भलो जिणेसुर थानो ।
श्रीवंत लोग बसै भला जी, हो देव सास्त्र गुरु राखै मानो ।।१६४।।

हो कडवा एकसौ अधिक पंचाणूं हो रास रहस परदमन बखाणो ।
भाव भेद जुवाजी हो, जैसी मति दीन्हो अवकासो ।
पंडित कोई मत हंसो जी, हो जैसी मति कीन्हो परगासो ।।१६५।।
रास भणो परदवण को जी ।

इति श्री परदमनरास समाप्त ।

कविवर भट्टारक त्रिभुवन कीर्ति

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

कविवर त्रिभुवनकीर्ति

जीवन परिचय एवं मूल्यांकन

विक्रम की १७वीं शताब्दी के प्रथम पाद में होने वाले हिन्दी जैन कवियों में त्रिभुवन कीर्ति दूसरे कवि हैं जिनका परिचय प्रस्तुत भाग में दिया जा रहा है। सत्रहवीं शताब्दी हिन्दी के बीसों जैन कवि हुए हैं जिन्होंने हिन्दी में काव्य रचना करके उसके प्रचार प्रसार में सर्वाधिक योग दिया। वास्तव में इस शताब्दी के जैन कवि भी प्राकृत, संस्कृत एवं अपभ्रंश में काव्य रचना बन्द करके हिन्दी की ओर आकर्षित हो रहे थे। यही कारण है एक ही समाज में अनेक कवि हुये जिनका नामोल्लेख भी हिन्दी के इतिहास में नहीं हो सका है। उनके विस्तृत परिचय का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता। त्रिभुवनकीर्ति भी ऐसे ही एक अज्ञात कवि हैं जिनके सम्बन्ध में क्या हिन्दी जगत् और क्या जैन जगत् दोनों ही अपरिचित से हैं।

त्रिभुवनकीर्ति जैन परम्परा के सन्त कवि थे। लेकिन उनके जन्म, माता-पिता, अध्ययन एवं दीक्षा के बारे में कोई परिचय उपलब्ध नहीं होता। वैसे जैन सन्त का जीवन अपनाने के पश्चात् एक श्रावक को दूसरा ही जन्म मिलता है। वह अपने प्रथम जीवन को पूर्णतः भुला देता है तथा माता-पिता, सम्बन्धी आदि उसके पराये बन जाते हैं। यही नहीं उसका नाम भी परिवर्तित हो जाता है। उसका उद्देश्य केवल आत्मचिंतन मात्र रह जाता है। साहित्य संरचना भी गौण हो जाती है। यही कारण है कि जैनाचार्यों, भट्टारकों एवं अन्य सन्त कवियों का हमें विशेष परिचय नहीं मिलता। त्रिभुवनकीर्ति भी ऐसे ही सन्त कवि हैं जिनकी गृहस्थावस्था के सम्बन्ध में हमें अभी तक कोई जानकारी उपलब्ध नहीं हुई है।

त्रिभुवनकीर्ति भट्टारकीय परम्परा के रामसेनान्वय भट्टारक उदयसेन के शिष्य थे। इसी परम्परा में भट्टारक सोमकीर्ति, भट्टारक विजयसेन, भट्टारक कमलकीर्ति एवं भट्टारक यशःकीर्ति जैसे भट्टारक हुए थे जिनका उल्लेख स्वयं त्रिभुवनकीर्ति ने अपनी कृतियों में किया है।[1]

---

१. नंदियड गच्छ मझार, रामसेनान्वयि हुया।
श्रीसोमकीर्ति विजयसेन, कमलकीरति यशकीरति हुवा। जीवंधर रास।

भट्टारक सोमकीर्ति अच्छे विद्वान एवं साहित्य निर्माता थे। संस्कृत एवं हिन्दी दोनों में ही उनकी कृतियां उपलब्ध होती है।[१] स्वयं त्रिभुवनकीर्ति ने उन्हें "ज्ञान विज्ञानह, आगला आम्भ तणा भण्डार" के विशेषण से अलंकृत किया है।[२] सोमकीर्ति के शिष्य थे विजयसेन जो पूर्णतः आध्यात्मिक संत थे तथा आत्म साधना में पंडित थे क्षमाशील एवं गुणों के राशि थे यही कारण है कि उनका यश: चारों ओर फैल गया था।[३] विजयसेन का अन्यत्र वीरसेन भी नाम मिलता है। विजयसेन के पश्चात् यश:कीर्ति हुए और उनके पश्चात् उदयसेन।[४] उदयसेन त्रिभुवनकीर्ति के गुरु थे। त्रिभुवनकीर्ति ने अपने गुरु को चारित्र-भार-धुरंधर, वादीर भंजन एवं वाणी जन मन मोहक" आदि विशेषणों से सम्बोधित किया है। उदयसेन अपने समय के प्रख्यात भट्टारक थे। वे शास्त्रार्थ करते और अपने मधुर वाणी से सबका अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे। यही कारण है कि स्वयं कवि ने भी स्वतः ही इनके चरणों में रहकर अपने जीवन निर्माण की इच्छा व्यक्त की थी।

त्रिभुवनकीर्ति ने उदयसेन का शिष्यत्व कब स्वीकार किया इसके बारे में कोई उल्लेख नहीं मिलता लेकिन उन्होंने अपने गुरु के समीप ही विद्याध्ययन किया होगा तथा शास्त्रों का मर्म समझा होगा। ब्रह्म कृष्णदास ने अपने मुनिसुव्रत पुराण में उदयसेन एव त्रिभुवनकीर्ति का निम्न पद्य में परिचय दिया है—

कमलपतिरिवाभूत्पट्टुदयाद्यंतसेन।
उदित विशदपट्टे सूर्यशैलेन तुल्ये।
त्रिभुवनपतिनाथांह्रिदयासक्तचेता।
स्त्रिभुवनकीर्तिर्नाम तत्पट्टधारी ॥६२॥

---

१. विस्तृत परिचय के लिए देखिये राजस्थान के जैन सन्त व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० ५६ से ४०।

२. ग्रन्थ प्रशस्ति-जम्बू स्वामी रास।

३. तसु पट्टि अति रूयडा विजयसेन जयवंत।
तप जप ध्यानं मंडिया, क्षमावंत, गुणवंत॥
मही मंडल महिमा घणा, महीयलि मोटु नाम॥ जम्बूस्वामी रास

४. एक पट्टावली में विजयसेन को यश: कीर्ति बतलाया गया है।

उक्त परिचय से ज्ञात होता है कि त्रिभुवनकीर्ति उदयसेन के पश्चात् भट्टारक गादी पर सुशोभित हुए थे।

त्रिभुवनकीर्ति की अभी तक दो कृतियां उपलब्ध हुई हैं। ये दोनों ही हिन्दी की रचनायें हैं। त्रिभुवनकीर्ति के नाम से एक और संस्कृत रचना श्रुतस्कंध पूजा दि० जैन मन्दिर सम्भवनाथ उदयपुर के ग्रन्थ भण्डार में संग्रहीत है। पूजा बहुत छोटी है लेकिन यह इन्हीं त्रिभुवनकीर्ति की है अथवा अन्य किसी त्रिभुवनकीर्ति की इसके बारे में कोई निश्चित जानकारी नहीं मिलती।

त्रिभुवनकीर्ति भट्टारक थे। साहित्य एवं संस्कृति के प्रचार प्रसार के लिए वे बराबर विहार करते रहते थे। गुजरात, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश एवं देहली आदि प्रदेश इनके विहार के मुख्य प्रदेश थे। यही कारण है इनके काव्यों की भाषा पूर्णतः राजस्थानी अथवा गुजराती न होकर गुजराती प्रभावित राजस्थानी है।

जीवन्धर रास

त्रिभुवनकीर्ति की प्रथम रचना "जीवंधर रास" है। यह एक प्रबन्ध काव्य है जिसमें 'जीवंधर' के जीवन को प्रस्तुत किया गया है। जीवंधर का जीवन जैन कवियों को बहुत प्रिय रहा है। अपभ्रंश, संस्कृत एवं हिन्दी के कितने ही कवियों ने उसके जीवन को अपने अपने काव्य में छन्दोबद्ध किया है। ऐसे कृतियों में महाकवि हरिचन्द्र का जीवंधरचम्पू, भट्टारक शुभचन्द्र का जीवंधर चरित्र, महाकवि रइधू का जीवंधर चरिउ (अपभ्रंश) ब्र० जिनदास का जीवंधर रास, भट्टारक यशःकीर्ति का जीवंधर प्रबन्ध, दौलतराम कासलीवाल का जीवंधर चरित्र (सभी हिन्दी) के नाम उल्लेखनीय हैं। त्रिभुवनकीर्ति का जीवंधर रास भी उसी 'शृंखला' में निबद्ध एक प्रबन्ध काव्य है।

जीवन्धर रास संवत १६०६ की रचना है।[1] रचना स्थान कल्पवल्ली नगर

---

१. श्री कल्पवल्लीनगरे गरिष्ठे, श्रीब्रह्मचारीश्वर एव कृष्णः।
कंठावलंब्यूर्जितपूरमल्ल, प्रवर्द्धमानो हितमाततानि ।। ६८ ।।
मुनिसुव्रत पुराण

है जो १६ वीं १७ वी शताब्दी में साहित्य निर्माण का प्रमुख केन्द्र था । ब्र० कृष्णदास ने भी कल्पवल्ली नगर में ही मुनिसुव्रत पुराण की रचना की थी ।[२]

जीवंधर रास प्रबन्ध काव्य है । जीवंधर उसका नायक है । जीवंधर राजपुत्र है लेकिन उसका जन्म श्मशान में होता है । उसका लालन पालन उसकी स्वयं माता द्वारा न होकर दूसरी महिला द्वारा होता है । युवा होने पर जीवंधर पराक्रम के अनेक कार्य करता है । अन्त में अपना राज्य प्राप्त करने में भी सफल होता है । काफी समय तक राज्य सुख भोगने के पश्चात् वह वैराग्य धारण करता है और अन्त में कैवल्य प्राप्त करके निर्वाण का पथिक बन जाता है । पूरी कथा निम्न प्रकार है—

कथा भाग

एक बार जब महावीर राजगृह आये तो आये तो राजा श्रेणिक अपने प्रजा-जनों के साथ उनके दर्शनार्थ गये । मार्ग में जब राजा श्रेणिक ने एक गुफा में समाधिस्थ मुनि के सम्बन्ध में जानना चाहा तो भगवान महावीर ने उस मुनि को जीवंधर कहा तथा उसके जीवन का निम्न प्रकार वर्णन किया—

जम्बूद्वीप में भरत क्षेत्र के हेमांगद देश की राजधानी थी राजपुरी नगरी । उसके राजा का नाम सत्यंधर एवं राणी का नाम विजया था । उनके दो मन्त्री थे । एक काष्ठांगार एवं दूसरा धर्मदत्त । एक बार वहाँ एक अवधिज्ञानी मुनि का आगमन हुआ । वे सब उनकी वंदना के लिए गये मुनि ने सभी को नियम दिये । एक भारवाह ने भी मुनि से व्रत देने की याचना की । मुनि श्री उसे पूर्णिमा के दिन ब्रह्मचर्य व्रत पालन का नियम दिया । उसी नगर में दो वैश्याएँ थी एक पद्मावती एवं दूसरी देवदत्ता थी । एक दिन जब वह लकड़ी का भारा लेकर आ रहा था तो पद्मावती उसे देखकर क्रोधित हो गयी और उस पर थूंक दिया । तथा कहा कि उसके शरीर का मोल पांच दीनार है । भारवाह गरीब था लेकिन वेश्या के कहने को सहन नहीं कर सका । उसने पांच दीनारों का संग्रह किया और वेश्या के पास चला गया । उस दिन पूर्णिमा थी इसलिये उसका लिया हुआ व्रत भंग हो गया ।

---

२. कल्पवल्ली मभार संवत सोलछहोत्तरि ।
   रास रच्यउ मनोहार रिद्धि हयो संघहुअरि ।।

एक बार रानी ने पांच स्वप्न देखे। प्रातः काल होने पर राजा ने जब स्वप्नों का फल बतलाया और कहा कि रानी के पुत्र होगा किन्तु उसका पिता यदि उसका मुख देख ले तो तत्काल उसकी मृत्यु हो जावेगी। इससे रानी एवं राजा दोनों को ही गम्भीर चिन्ता उत्पन्न हुई। गर्भ बढ़ने लगा और रानी को आकाश भ्रमण की इच्छा हुई। राजा ने मयूर यंत्र की रचना करके रानी की इच्छा पूरी की। राजा रानी के प्रेम में ही रहने लगा और समस्त राज्य काष्टांगार को सौंप दिया। लेकिन काष्टांगार को इतने से ही सन्तोष नहीं हुआ। उसने धर्मदत्त मन्त्री को बन्दीग्रह में डाल दिया और वह सेना लेकर राजा के घात के लिए आगे बढ़ा। राजा को जब मन्त्री की कुटिलता का भान हुआ तो उसने गर्भवती रानी को मयूर यंत्र में बिठाकर आकाश में उड़ा दिया और स्वयं वैराग्य धारण कर ध्यान करने लगा लिया लेकिन काष्ठांगार को यह भी सहन नहीं हुआ। शुभ ध्यान में तल्लीन राजा की हत्या कर दी गयी। इधर रानी का विमान श्मशान में उतर गया और वहीं उसके पुत्र उत्पन्न हो गया। उसी दिन नगर की सेठानी सुनन्दा के मृत पुत्र उत्पन्न हुआ। जब उसे दाह संस्कार के लिए श्मशान में लाया गया तो रानी ने अपना पुत्र उसे दे दिया। सेठ गंधोत्कट ने पुत्र प्राप्ति पर खूब उत्सव मनाया और उसका नाम जीवन्धर रखा। रानी विद्युत् पक्षी की सहायता से अपने भाई के पास चली गई।

मेघपुर में खेचरों का निवास था। वहां सभी जिनधर्म का पालन करते थे। वहाँ का राजा लोकपाल था। अभ्र पटल को देखने के पश्चात् राजा को वैराग्य हो गया और उसने मुनि दीक्षा धारण कर ली। एक बार जब मुनि आहार को गये तो दही एवं चूर्ण का आहार लेने से उन्हें भस्म व्याधि हो गयी। व्याधि के प्रभाव से वे आहार के लिए निरन्तर घूमने लगे। एक बार वे गंधोत्कट सेठ के यहाँ गये। उनकी क्षुधा बहुत सा कच्चा पक्का आहार करने पर भी शान्त नहीं हुई। लेकिन जीवन्धर के हाथ से आहार लेते ही उसकी व्याधि दूर हो गयी। इससे वह मुनि जीवन्धर से बड़ा प्रभावित हुआ और वहीं ठहर कर उसे छंद पुराण, नाटक, ज्योतिष आयुर्वेद आदि सभी विद्याएँ सिखला दी। मुनि ने जीवन्धर को उसके माता-पिता के सम्बन्ध में वास्तविकता से परिचय कराया। अन्त मे वे मुनि वहाँ से अपने गुरु के पास प्रायश्चित लेने के लिये चल दिये।

इसके पश्चात् जीवन्धर के पराक्रम की कहानी प्रारम्भ होती है। सर्व प्रथम उसने भीलों का उत्पात शान्त किया और उनसे गायों को छुड़ा कर राजा को वापिस

लौटा दी। इससे वह गोप बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने अपनी लड़की के साथ जीवन्धर का विवाह कर दिया। इसके पश्चात् जीवन्धर ने सुघोष वीणा बजा कर गंधर्वदत्ता से विवाह किया। इसके पश्चात् उसने मरते हुए स्वान को णमोकार मंत्र सुनाया जिससे मरने के बाद वह यक्ष हुआ। उन्मत्त हाथी को वश में करने के पश्चात् उसे सुरमंजरी जैसी सुन्दर कन्या प्राप्त हुई। सहस्त्रकूट चैत्यालय के कपाट खोलकर राजकन्या से विवाह किया। पद्मावती का विष उतार कर उसका वरण किया। एवं आधा राज्य भी प्राप्त किया। इसके पश्चात् उसने और भी कितनी ही सुन्दर कन्याओं से विवाह किया और अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया। अपने पिता के शत्रु काष्टांगार को मार दिया। अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त कर एक दीर्घ समय तक राज्य का सुख भोगा। अन्त में वैराग्य धारण करके निर्वाण प्राप्त किया।

काव्य कला

जीवन्धर चरित एक प्रबन्ध काव्य है। इसका नायक जीवन्धर है लेकिन प्रतिनायक एक नहीं कई हैं जो आते है और चले जाते हैं। प्रस्तुत रास सर्गों में विभक्त नहीं है किन्तु जब कथा को मोड देना पड़ता है तो "एह कथा इहां रही" कह दिया जाता है। इससे पाठकों का थोड़ा ध्यान बट जाता है।

रास के सभी वर्णन अच्छे हैं। कवि ने अपने काव्य को सरस बनाने के लिये कभी प्रकृति का, कभी मानव का, और कभी अन्य प्रदेशों का सहारा लिया है। जीवन्धर की माता विजया का जब कवि सौन्दर्य का वर्णन करने लगता है तो वह पूर्ण श्रृंगारी कवि बन जाता है—

मस्तक वेणी सोभतुए, जाणे सखी मार।
सिथइ सिंदूर पूरतीए, कंठइ रूडइ हार।
काने कुंडल झलकताए, किडि कटि मेखल।
चरणे नेउर पिहिरतीए, दीसंता निर्म्मल।
रंभास्तंभ सरी खडीए, बिन्यइ कि जंघ।
हंसगति चालइ सदा ए, मध्यइ जसी संघ ॥४४॥

तृष्णा का कभी अन्त नहीं। समुद्र का जल सूख सकता है लेकिन तृष्णा का अन्त फिर भी नहीं हो सकता। इसी को कवि ने कितने ही उदाहरण देकर समझाया है—

समुद्र जल नवइ माजइ, तिरसा तृपा विदि किम थाइ विरस ।
विषया शक्त प्रामइ नर नाम, अनुक्रमि काया विनास ।।१५।।

मोटी काया हस्ती तणी, मन दव सधाइ वे वणी ।
खाई पद्यु सहि बहु दुःख, तेहनि पामइ लवलेस नु सुख ।।१६।।
जिह्वा लोलप मछ दुख सही, कांटि श्रोध्यु लोही बहि ।
मछ पड़ तडफ उंकु मरइ, तेह जीव काया नवि घटइ ।।१७।।

कवि के समय में जिन विद्याओं का पठन-पाठन होता था उन्हीं का उसने जीवंधर की शिक्षा के प्रसंग में वर्णन किया है जो निम्न प्रकार है—

कुण कुण शास्त्र भणावीमाए, वृत्त नइ छंद पुराण ।
नाटक योतिक वैदक ए, भरइ नइ तर्क प्रमाण ।
मंत्र विद्या नर लक्षणाए, राजनीति अलंकार ।
अश्वपरीक्षा गज रत्नए सा भण्यु छि लिपि अढार ।।२१ ।

वेद विद्या भणावीउए, आव्यु तातनि पास
विनोद करइ गुरू शिष्य सु, भोगवइ भोग निवास ।।२२।।

बसंत ऋतु आती है तो चारों ओर फूल खिल जाते हैं भौरें गुजारते हैं तथा शीतल मन्द सुगन्ध हवा चलने लगती है । इसी वर्णन को कवि के शब्दों में देखिये—

सखी एकदा मास बसंत, आव्यु मननी प्रति रलीए ।
मजरी आंबे रसाल, केसूयडे राती कलीए ।।१।।
सखी केतकी परिमल सार, मोगरा केला तिहां अति घणीए ।
सखी दाडिम मंडप दाख, रंभास्तंभ रहण घणीए ।।२।।

सखी कमल कमल अपरांग, आस्वादन मधुकर करइए ।
सखी कोकिला सुस्वर नाद, हंस हंसी शब्द घरइए ।।३।।

सखी मलयाचल संभूत, शीतल पवन वांइ घणाए ।
सुख करइं कामीय काय, स्पृस तु रात्रि दिवस सुणउए ।।४।।

जीवंधर को देख कर गुणमाला उसके विरह में खान-पान स्नान आदि सभी भूल जाती है—

मंदिर आवी ताम, स्नान मज्जन नवि धरइए ।
रजनी न धरइ नीद्र, दिवस भोज नवि करइए ।।३७।।
न धरइ सार शृंगार, आभूषण ते नवि धरिए ।
नवि पामइ काय निवृत्ति, शीतोपचार घणा करइए ।।३८।।

इस तरह रास के सभी वर्णन सुन्दर हैं । यद्यपि यह एक कथात्मक काव्य है लेकिन शैली में आकर्षण है तथा वह प्रभावयुक्त है । छन्दों के परिवर्तन से रास के अध्ययन में रोचकता आती है । यह एक गेय काव्य है जिसे मंच पर गाया जा सकता है । कवि का भी रास काव्य लिखने का संभवत: यही उद्देश्य रहा है ।

रास में दूहा, चउपई एवं वस्तु बंध छन्द के अतिरिक्त ढाल यशोधरनी, ढाल आंणदानी, ढाल सुंदरीनी, ढाल साहेलडीनी, राग धन्यासी, राग राजवल्लभ, ढाल सखीनी, ढाल सहीनी—राग गुडी, ढाल नीरसुवानी, ढाल भामाहूलीनी, ढाल वणजारानी का उपयोग हुआ है ।

इस काव्य में स्वर्ण मुद्रा के लिये 'दीनार' शब्द का प्रयोग हुआ है ।[1] इसी तरह अन्य शब्दों का प्रयोग निम्न प्रकार हुआ है—

माया—आव्यु[2] (२३।१३२)
आवी (२५)
पाया—प्रामी[3] (३६)
प्रामीय
[4]तुम्हारी—तुम्ह

---

१. पंच दीनार दीक्षा मन रंग, भोग इच्छा तणइ मन रंग ।
अतंगत प्राम्यु तव सूर, कामीनि सुख करवा पूर ।।१०।।
२. पुरुष न आव्यु सामार
३. राय तणुं प्रामी सनमान ।३१। प्रामीय शिष्या अति मनोहार
४. दुर्बल दीसइ तुम्ह काय ।।२।।१३३

[1]विनय किया—वीनव्यु

[2]उस, उसका, उसकी—तिणी, तेह, तेहनी

शब्दों के आगे 'नी' 'नु' लगा कर उनका प्रयोग किया गया है। जैसे कर्मनि, पुत्रनु, नाथनु, पुत्रीनु इत्यादि।

इस प्रकार जीवंधर रास १७वीं शताब्दि के प्रथम पाद में रचे जाने वाले काव्यों का प्रतिनिधि काव्य है जिसमें तत्कालीन शैली के सभी रूप देखे जा सकते हैं। राजस्थानी, गुजराती एवं हिन्दी इन तीनों का मिश्रित रूप कहीं देखना हो तो हम त्रिभुवन कीर्ति के रास काव्यों में देख सकते हैं।

रास का आदि अन्त भाग निम्न प्रकार है—

आदि भाग

आदि जिणवर आदि जिणवर प्रथम जे नाम
जुग आदि जे अवतर्या, जुग आदि अणसरीय दीक्षा।

जुग आदि जे पामीया केवल ज्ञान तणीय, शिक्षा युग आदि जिणि प्रगटीयु।
धर्माधर्म विचार तास चरण प्रणमी, रचउ रास जीवंधर सार।

अजित आदि तीर्थंकरा, जे अछि त्रिणिनि बीस।
कर्म्म कठोर सवे खपी, हूया ते मुगतिना ईश ॥२॥

केवल वाणी सरसती, भगवती करू पसाउ।
निर्म्मल मति मुझ आपमो, प्रणमु तुम्ह वी पाउ ॥३॥

सिद्ध आचार्य जेहवा, उपाध्याय वली साधु ॥४॥
निज निज गुणे अलंकर्या, ते मुझ देज्यो साधु।
श्री उदयसेन सूरी पाए नमी, रचउ कवित विशाल।
जीवंधर मुनि स्वामिनु, सौख्य तणु गुणमाल ॥५॥

---

१. सरसंधर जाई वीनव्यु।

२. तिणी नगरी वाणिज्य वसइ, गंधोत्कट तेह नाम।
सुनंदा स्त्री तेहनी, मूंड पुत्र जण ताम ॥३७॥

अन्तिम भाग

सात तत्व पुण्य पाप, काल निर्णय तिहां करइ ।
त्रिसठि पुरषाख्यान, पंचास्तिकाय उच्चरइ ।।४२।।

श्रावक नियती धर्म्म, भेदाभेद सहूइ कही ।
विहारी तणी इच्छाइ, देस विदेस जाइ सही ।।४३।।

ग्रोण मगध तिलंग, मालव द्रावड गुज्जर ।
पंचाल माहोभोट, कर्णाट कांबोज कस्मीर ।।४४।।

तिहां रही अक्षर पंच, ते प्रकृति क्षय करी ।
प्राम्या सिद्ध नउ ठाम, अष्ट गुणा भला धरी ।।४५।।

तिहां नहीं रोग वियोग, रूप वर्ण गंध नहीं ।
जिहां नहीं जामण मर्ण, नारीय पुत्र जिहां नहीं ।।४६।।

जिहां नहीं रोग वियोग, रागद्वेष जिहां नहीं ।
जीवंधर मुनि राय, ते स्थानिक प्राम्यु सही ।।४७।।

जे मुनिसद पंच, तप्य करी स्वर्गि गया ।
तप करी सवे नारि, स्त्री लिंग छेदी देव हुआ ।।४८।।

महीयलि थाई नर, चारित्र नइं बली प्रामसइ ।
करीय कर्म्म नउ क्षय, तेस विमुक्ति जाय सइ ।।४९।।

नदीग्रड गछ मझार, रामसेनान्वयि हूवा ।
श्री सोमकीरति विजयसेन, कमलकीरति यशकीरति हूवउ ।।५०।।

तेह पाटि प्रसिद्ध, चरित्र भार धुरिधरो ।
वादीय भंजन वीर, श्री उदयसेन सूरीश्वरो ।।५१।।

प्रणमीय ते गुरु पाय, त्रिभुवन कीरति इम वीनवइ ।
देयो तम्ह गुणग्राम, अनेरी काई वांछा नहीं ।।५२ ।

कल्पवल्ली मझार संवत सोलसहोत्तरी ।
रास रचउ मनोहारि, रिद्धि हुयो संघहु घरि ।।५३।।

दूहा

जीवंधर मुनि तप करी, पहुतु शिवपद ठाम ।
त्रिभुवन कीरति इम वीनवइ, देयो तुम्ह गुणग्राम ।।५४।।

इति जीवंधर रास समाप्त:

२. जम्बूस्वामी रास

कविवर त्रिभुवनकीर्ति की यह दूसरी काव्य कृति है जो राजस्थान के शास्त्र भण्डारों में उपलब्ध हुई है। प्रस्तुत कृति भी उसी गुटके में लिपि बद्ध है जिसमें कवि की प्रथम कृति जीवंधर रास संग्रहीत है। जम्बूस्वामी रास उसकी संवत् १६२५ की रचना है अर्थात् प्रथम कृति के १९ वर्ष पश्चात् छन्दोबद्ध की हुई है। १९ वर्ष की अवधि में त्रिभुवनकीर्ति ने साहित्य जगत को और कौन-कौन सी कृतियां भेंट की इस विषय में विशेष खोज की आवश्यकता है। क्योंकि कोई भी कवि इतने लम्बे समय तक चुपचाप नहीं बैठ सकता। लेकिन लेखक द्वारा राजस्थान के जैन ग्रन्थ भण्डारों के जो विस्तृत खोज की है उसमें भी अभी तक कवि की दो कृतियां ही मिल सकी है।

जम्बूस्वामी रास एक प्रबन्ध काव्य है जिसमे जैन धर्म के अन्तिम केवली जम्बूस्वामी का चरित्र निबद्ध है। पूरा काव्य रास शैली में लिखा हुआ है तथा भाषा एवं शैली की दृष्टि से जीवंधर रास से जम्बूस्वामी रास अधिक निखरा हुआ है। प्रस्तुत रास दूहा, चउपई एवं विभिन्न रागों में निबद्ध है। कथा का विभाजन सर्गों में नहीं हुआ है किन्तु उसमें भी उसी प्राचीन शैली को अपनाया गया है।

जम्बू स्वामी के वर्तमान जीवन का वर्णन करने के पूर्व उनके पूर्व भवों का वर्णन किया गया है। कवि यदि पूर्व भवों के वर्णन को छोड भी जाता तो भी काव्य की गरिमा में कोई विशेष अन्तर नहीं आता। लेकिन क्योंकि प्राय: प्रत्येक जैन काव्य में नायक के वर्तमान के साथ-साथ पूर्व भवों के वर्णन करने की परम्परा रही है इसलिये कवि ने उस परम्परा से अपने आपको अलग नहीं कर सका है।

कवि ने काव्य का आरम्भ भगवान महावीर की वन्दना से किया गया है। सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं सर्वसाधु परमेष्ठी का स्मरण करने के पश्चात् अपने गुरु उदयसेन को नमस्कार किया है।[1] जम्बूद्वीप में भरत क्षेत्र और उसमें मगध देश तथा उसकी राजधानी राजगृह थी। राजा श्रेणिक राजगृही का सम्राट था। चेलना उसकी पटरानी थी। चेलना लावण्यवती एवं रूप की खान थी कवि ने उसका वर्णन करते हुये लिखा है---

ते घरि राणी चेलना कही, सती सरोमणि जाणु सही।
समकित भूषण तास सरीर, धर्म ध्यान धरि मनधीर ।।१६।।

हंसगति चालि चमकती, रूपि रंभा जाणउ सती।
मस्तक वेणी सोहि सार, कंठ सोहिए काडल हार ।।२०।।

काने कुंडल रत्ने जड्यां, चरणे नेउर सोवन घड्या।
मधुर वयण बोलि सुविचार, अंग अनोपम दीसि सार ।।२१।।

एक दिन विपुलाचल पर्वत पर भगवान महावीर का समवसरण आया। राजा श्रेणिक पूरी श्रद्धा के साथ सपरिवार उनके दर्शनार्थ गये। राजा श्रेणिक ने भगवान महावीर से निम्न शब्दों में निवेदन किया--

राइ, जिनवर पूछीया जी, कहु स्वामी कुण एह।
विद्युन्माली देवता जी, जिन कोइ कहु सहू हेत हो स्वामी ।।

भगवान महावीर ने राजा श्रेणिक के प्रश्न का उत्तर देते हुये कहा कि वर्द्धमानपुर में भवदत्त और भावदेव दो ब्राह्मण विद्वान् थे। नगर में कुष्ठ रोग फैलने के कारण अनेक लोग मारे गये। एक बार वहां सुधर्मा स्वामी पधारे। उन्होंने तत्वज्ञान एवं पुण्य-पाप के बारे में सबको बतलाया। भवदत्त ने उनसे वैराग्य धारण कर लिया। कुछ समय के पश्चात् भवदत्त ने भवदेव के सम्बन्ध में विचार कर वह घर

---

1. श्री उदयसेन सूरी वर नमी, त्रिभुवन कीर्ति कहि सार।
रास कहूं रलीया मणु, अक्षर रयण भंडार ।।

माया । भवदत्त के उपदेश से भवदेव ने भी वैराग्य धारण कर लिये लेकिन उसका मन अपनी स्त्री की ओर से नहीं हट सका । स्त्री ने मुनि से अपनी व्यथा कही । इस अवसर पर नारी के प्रति कवि ने वे ही विचार प्रकट किये हैं जो अन्य जैन कवियों के हैं ।

दया रहित अति लोभणी, धर्म न जाणि सार ।
दयामणी दीसि सही, रुठी क्रूर अपार ।।१२।।

नारी रूप न राचीय, गुण राचउ सहु कोइ ।
जे नर नारी मोहीया, ते नवि जाणि लोय ।।१३।।

भवदत्त ने तपस्या करके स्वर्ग प्राप्त किया और फिर वहां से पुण्डरीक नगरी के राजा के यहां सागरचन्द्र नामक राजकुमार हुआ । तथा भवदेव ने वीतशोका नगरी के शिवकुमार राजकुमार के रूप में जन्म लिया । राजा के नाम चक्रधर महापद्म था । भवदेव ने शास्त्रों का ज्ञान अर्जन किया । एक बार संयोगवश उसी नगर में एक अवधिज्ञानी मुनि का आगमन हुआ । सभी लोग उनके दर्शनार्थ गये । शिवकुमार को मुनि को देखते ही पूर्व भव का स्मरण हो गया । इससे उसे वैराग्य हो गया और घोर तपस्या करने के पश्चात् वह मृत्यु के पश्चात् छठे स्वर्ग में विद्युन्माली नामक देव हुआ । सागरचन्द्र को भी घोर तपस्या के पश्चात् तीसरे स्वर्ग की प्राप्ति हुई । वही विद्युन्माली सात दिन पश्चात् राजगृह नगर के सेठ अर्हदास के जम्बूकुमार नाम से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ ।

मगध देश राजग्रहि अर्हदास घिर सार ।
जिनमती कूखि अवतिरि जंबूकुमर अवतार ।।३८।।

जम्बू कुमार की माता का नाम जिनमति था जो अत्यधिक लावण्यवती शीलवती एवं पीनपयोधरा थी । एक रात्रि को जिनमति ने पांच स्वप्न देखे जिनका निम्न प्रकार फल बतलाया गया —

जंबू फल देखयउ तम्हेव नारि, पुत्र हुसि घिर जंबूकुमार ।।१०।।
निरधूम अग्नि देखयउ तम्हे सुणउ क्षय करसि सवे करम महंतणु ।
शाल क्षेत्र देख्यु अभिराम, लक्ष्मीपति होसि गुणधाम ।।११।।
जल पूरयु सर दीठउं सार, पाप तणु करसि परिहार ।।
रत्नाकार देख्यु तिणिवार, जन बोधी भव तरसि पार ।।१२।।

जम्बूकुमार का जन्म आषाढ़ शुक्ला अष्टमी के शुभ दिन हुआ । सारे नगर में उत्सव मनाये गये । बाजे बाजे । मन्दिरों में पूजा की गयी । कवि ने जन्मोत्सव का विस्तृत वर्णन किया है—

> नृत्त करि करि नृत्यंगनाए, गीत गाइ रसाल ।
> वाजित्र वाजि अति घणाए, ढोल ददामा कंसाल ।।६।।
>
> तिवली तूर मादल घणाएं, भेर वाजि बग चंग ।
> इणी परिजन महोत्सवाए, श्रेष्ठि विरहुड रंग ।।७।।

बचपन में ही जम्बूकुमार ने विविध शास्त्र, एवं विद्याएं सीखली तथा कला में वह पारंगत हो गया । जंबूकुमार की सुन्दरता देखते ही बनती थी । जो भी कुमारी उसे देखती वही उसकी चाहना करने लगती तथा माता-पिता के भाग्य का सराहना करती कि जिसके यहां ऐसा पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ है । उसी नगर में सागरदत्त, धनदत्त, वैश्रवण एवं वणिकदत्त श्रेष्ठि रत्न थे । चारों के ही एक एक कन्या थी जिनके नाम पद्मावती, कनकश्री, विनयश्री एवं लक्ष्मी थी । चारों ही सुन्दरता की खान थी—

> च्यार कन्या अछि अति भलीए, रूप सोभागनी खाणि ।
> पृथु पीनपयोधरा, बोलि अमृत वाणि ।।३२।।
> कटियंत्र अति रूडीए मृग नयणी गुणवंत ।

अक्षय तृतीया के दिन जम्बूकुमार का विवाह इन चारों कन्याओं से निश्चित हो गया । बसन्त ऋतु आने पर राजा श्रेणिक, नगर सेठ जम्बूकुमार एवं उनकी होने वाली पत्नियां सभी वन क्रीडा के लिये गये । उस समय राजा श्रेणिक का हाथी बिगड गया और कराल काल बन कर चारों ओर उत्पात करने लगा । हाथी ने अनेक वृक्षों को तोड़ डाला, फूलों को रौंद डाला । उसको देख कर सभी प्राण बचाकर भागने लगे । लेकिन जम्बूकुमार ने उसे सहज ही वश में कर लिया । इससे उसकी वीरता की चारों ओर प्रशंसा होने लगी ।

कुछ समय पश्चात् एक विद्याधर राजा श्रेणिक के पास आया तथा कहने लगा कि भविष्य वाणी के अनुसार केरल देश के राजा की राजकुमारी के आप पति होंगे । लेकिन हंसद्वीप के राजा ने उस राजकुमारी को लेने के लिये उस पर चढ़ाई

कर दी। इस विपत्ति में वह राजा श्रेणिक की सहायता चाहता है। जम्बूकुमार वहीं राज सभा में थे। उन्होंने विद्याधर के प्रस्ताव को स्वीकार करके राजा श्रेणिक की अनुमति मांगी। तथा सैन्य दल के साथ दक्षिण की ओर चल पड़े। जम्बूकुमार के विध्याचल पर आये और वहां की शोभा का अवलोकन किया—

सैन्य सहित तिहां आवीउ, विध्यांचल उत्तंग।
जीव घणा तिहां देखीया, विस्मय पाम्यु मन चंग ।।३६।।

पिक केकी वाराहनि, हरण रोझ गोमाउ।
हंस व्याघ्र गज सांबरा, मृग वृष महिष न काय ।।३७।।

भिल्ली भिल्लज देखीया, ते आयुध सहित अपार।
सैन्य हाथ देखी करी, नाठा ते तिणी वार ।।३८।।

आगे चल कर उन्होंने जिन मन्दिरों की वन्दना की। अन्त में जम्बूकुमार सेना के साथ केरल पहुंचे। नगर से दूर ही उन्होंने पड़ाव किया और प्रतिद्वन्दी रत्नचूल विद्याधर को समझाने के लिये अपना दूत भेजा। दूत ने राजा को विभिन्न प्रकार से समझाया लेकिन समझ नहीं सका। दोनों की सेनाओं में घोर युद्ध हुआ। कवि ने रास काव्य में युद्ध का अच्छा वर्णन किया है। युद्ध में सभी तरह के बाणों का प्रयोग हुआ, हाथी, घोड़े, रथ एवं पैदल सभी सेनायें एक दूसरे से खूब लड़ी।

तिहां क्रोध करीनि ऊठीया, मुकि बाण अपार।
तिहां मेघ तणी धारा परि, बरसि तिणी वार।
तिहां सिंध तणी परि गाजता, नेह लइ नहीं ठाम।
तिहां छत्रीस आयुध लेईनि, राइ करि संग्राम।

अन्त में युद्ध में जम्बूकुमार की विजय हुई। चारों ओर उसकी जय जय होने लगी। नगर प्रवेश पर जम्बूकुमार का जोरदार स्वागत हुआ।

राउं नगर सणगारउ, नगर कीउ प्रवेस।
नगर स्त्री जोइ धणु, करती नव नवा वेस ।१२।।

काम रूप देखी भलु, विस्मय पामी नार ।
धन जननी धन ए पिता, जे घर एह कुमार ।।१३।।

इसके पश्चात् रत्नचूल विद्याधर ने जम्बूकुमार को एवं राजा श्रेणिक को अपने यहां आमंत्रित किया। राजा श्रेणिक ने जंबूकुमार की खूब प्रशंसा की तथा उसका सम्मान किया। खेचर पुत्री के साथ विवाह होने पर श्रेणिक एवं जम्बूकुमार दोनों ही वहां से लौट गये और विंध्याचल पार करके स्वदेश आ गये। मार्ग में उन्हें सुधर्माचार्य के दर्शन हुये। श्रेणिक एवं जम्बूकुमार दोनों ही उनके चरणों में बैठ गये। तत्त्वोपदेश सुना। अन्त में जम्बूकुमार ने अपना भव पूछा। सुधर्माचार्य ने उसके पूर्व भव का पूरा चित्र उसके सामने रख दिया। उससे जम्बूकुमार को वैराग्य हो गया लेकिन सुधर्माचार्य ने घर पर जाकर आज्ञा लेने की बात कही।

जम्बूकुमार ने माता-पिता के सामने जब वैराग्य लेने का प्रस्ताव रखा तो वे दोनों ही मूर्च्छित हो गये।[1] जम्बूकुमार को बहुत समझाया गया। स्वर्ग सुख के समान घर को छोड़ने के विचार का परित्याग करने को कहा। लेकिन जम्बूकुमार ने किसी की नहीं सुनी। चार कन्याओं को जम्बूकुमार के निश्चय की सूचना दी गयी तो वे भी विलाप करने लगी। अन्त में यह तय हुआ कि जम्बूकुमार चारों कन्याओं के साथ विवाह करेगा तथा एक-एक दिन में घर में रह कर फिर दीक्षा ग्रहण करेगा।[2]

जम्बूकुमार के विवाह की जोरदार तैयारी की गयी। बाजे बजे। गीत गाये गये। बन्दी जनों ने प्रशंसा गीत गाये। जम्बूकुमार चंचल घोड़े पर सवार होकर

---

१. बचन सुणी मुर्छागति हुई, नांखी वाय ते बिठी थई ।
रूदन करि दुख आणि घणउ, पुत्र प्रसंसि माता सुणउ ।।

२. एक रात्रि एक दिवस परणानि वली एह ।
मह्या समीपि तु रहितु, नवि छांडि गेह ।।१७।।

बचन सुणी कन्या तणां, कन्या नाबनि तात ।
अर्हदास घिर आवीया, कुमर प्रति कहि बात ।।१८।।

एक दिवस परणी करी, घिर रहु एक दिन ।
पछि दीक्षा लेय जो, जु तुह्म हुइ मन ।।१९।।

तोरण के लिये गये। विवाह में विविध प्रकार के पकवान बनाये गये। विवाह सम्पन्न हुआ और जम्बूकुमार चारों पत्नियों के साथ अपने घर चला। रात्रि आयी। नव विवाहित पत्नियों के हाव-भाव से जम्बूकुमार का मन लुभाना चाहा लेकिन वे किंचित भी सफल नहीं हो सकी। जम्बूकुमार ने एक-एक पत्नी को समझाया। प्रत्येक स्त्री ने कथाएं कही और गृहस्थी का सुख भोगने के पश्चात् वैराग्य लेने की बात कही लेकिन जम्बूकुमार ने सबका प्रतिवाद किया और वैराग्य लेने की बात को ही उत्तम स्वीकार किया।

उसी रात्रि को जम्बूकुमार के घर विद्युत चोर चोरी करने के विचार से आया। नगर कोटवाल एवं दण्डनायक के भय से वह जम्बूकुमार के पलंग के नीचे जाकर लेट गया। एक ओर जम्बूकुमार जब अपनी नव-विवाहित पत्नियों को समझा रहा था तो उस चोर ने भी उनके उत्तर प्रत्युत्तर को सुनने में मस्त हो गया। विद्युत चोर भी जम्बूकुमार से अत्यधिक प्रभावित हो गया और उसके भी जगत् को निस्सार जान कर वैराग्य धारण करने की इच्छा हो गयी।

प्रातःकाल होते ही जम्बूकुमार को नवीन वस्त्राभूषण पहिनाये गये। पालकी में बैठ कर वह दीक्षा लेने चल दिया। नगर में हजारों नर-नारी जम्बूकुमार के दर्शनार्थ उपस्थित हुये और उसकी जय जयकार करने लगे। उसकी माता जिनमती आकर रोने लगी। वह मूर्छित हो गयी। अश्रुधारा बहने लगी—

पुत्र आगिल माता रही, करि रूदन अपार।
बार बार दुख धरि, करि मोह अपार ।।

— — —

जल विण किम रहि माछली, तिम तुझ विण पुत्र।
मुझ मेहली बीसासीनि, कांह जांउ वन सुत ।।

लेकिन जम्बूकुमार अपने निश्चय पर दृढ था। वह माता को कहने लगा—

पुत्र कहि माता सुणु, ए संसार असार।
दिक्षा लेवा मुझ देउ, कांई करू अंतराय ।।११।।

अन्त में माता-पिता, सास-श्वसुर सब से आज्ञा लेकर जम्बूकुमार सुधर्मास्वामी के चरणों में जा पहुँचा तथा उनसे दीक्षा देने की प्रार्थना की। जम्बूकुमार निर्ग्रन्थ बन गये। उनके साथ विद्युत्प्रभ एवं उसके साथी, अर्हदास एवं उसकी माता जिनमती, पद्मश्री आदि उसकी चारों पत्नियों ने भी जिन दीक्षा धारण करली।

कुछ वर्षों के पश्चात् जम्बू उसी नगर में आये। मुनि जम्बूस्वामी के दर्शनार्थ हजारों नर नारी एकत्रित हो गये। सेठ जिनदास के यहां मुनिश्री का आहार हुआ। आहार के प्रभाव से रत्नों की वर्षा हुई। कुछ समय पश्चात् सुधर्मास्वामी को निर्वाण प्राप्ति हुई और उसी दिन जम्बूस्वामी को कैवल्य हो गया। इन्द्र ने गन्धकुटी की रचना की। जम्बूस्वामी ने सभी को सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र को जीवन को उतारने, बारह व्रत, भोजन क्रिया, अष्टमूलगुण, दशधर्म, षट् आवश्यक कार्य आदि पर विस्तृत प्रकाश डाला। पर्याप्त विहार करने के पश्चात् जम्बूस्वामी एक दिन विपुलाचल पर्वत पर आये और वहीं से निर्वाण प्राप्त किया। इन्द्रादिक देवों ने जम्बूस्वामी का निर्वाण महोत्सव मानाया। जम्बूस्वामी के पिता अर्हदास ने छटठा स्वर्ग प्राप्त किया। उनकी माता जिनमती स्त्री पर्याय को छोड कर ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में इन्द्र हुई। जम्बूस्वामी की चारों स्त्रियों ने भी इसी प्रकार स्त्री पर्याय का विनाश कर स्वर्ग में जाकर देव हुई। विद्युच्चोर ने घोर तप कर सर्वार्थसिद्धि प्राप्ति की।

इस प्रकार कवि ने जम्बूस्वामी रास में जम्बूस्वामी का जिस व्यवस्थित शैली में जीवन चरित्र प्रस्तुत किया है, वह अत्यधिक प्रशंसनीय है। कवि का प्रस्तुत काव्य कथा प्रधान है। इसलिए इसमें कहीं-कहीं कथा भाग अधिक है तो कहीं-कहीं उसमें काव्य प्रधान अंश भी देखने को भी मिलता है।

मूल्यांकन

जम्बूस्वामी रास का रचना काल संवत् १६२५ है। उस समय तक बहुत से रास काव्य लिखे जा चुके थे। और रासो काव्य की दृष्टि से वह उसका स्वर्ण युग था। ब्रह्म जिनदास जैसे महाकवियों ने पचासों रास लिख कर रास शैली का निर्माण किया था। ब्रह्म जिनदास के पश्चात् भट्टारक ज्ञानभूषण, विद्याभूषण एवं रायमल्ल ने जिस परम्परा को जन्म दिया था उसी पर त्रिभुवनकीर्ति ने अपने दोनों रास काव्यों की रचना की। इन रास काव्यों में कथा प्रवाह बराबर चलता रहता है। और उसी प्रवाह से कवि कभी कभी काव्यमय वर्णन भी प्रस्तुत करने में सफल होता है—

जम्बूस्वामी रास का नायक है जम्बूकुमार जो राजगृही के नगर सेठ अर्हत दास का पुत्र है। जम्बूकुमार के जीवन में वीररस, शृंगार एवं शान्त रस का समावेश है। वह बचपन में ही महाराजा श्रेणिक के उन्मत हाथी को सहज ही वश में कर लेता है। १५–१६ वर्ष की आयु में वह सेना लेकर केरल के राजा की सहायतार्थ जाता है और उसमें अपनी अपूर्व वीरता से विजय प्राप्त कर लेता है। एक ओर विद्याधरों की सेना दूसरी ओर जम्बूकुमार की सेना। दोनों में घनघोर युद्ध होता है। स्वयं जम्बूकुमार विभिन्न प्रकार के शस्त्रों का प्रयोग करता है। और अन्त में युद्ध में विजय प्राप्त करता है। वह वीर है और किसी भी शत्रु को हराने में समर्थ है। जम्बूकुमार का जीवन शृंगार रस से भी ओत-प्रोत है। बचपन में वह बसन्तोत्सव मनाने के लिए नगर के बाहर उद्यान में जाता है और वहाँ बसन्तोत्सव का आनन्द लेता है। है। वैराग्य लेने से पूर्व अपने माता पिता के अनुरोध पर चार कन्याओं से विवाह बंधन में बंधता है। सुहागरात्रि को वे उनसे मिलता है। उनकी पत्नियाँ क्या थी स्वर्ग सुन्दरियां थी जो विभिन्न हाव-भाव से एवं अपने तर्कों से जम्बूकुमार से गृहस्थ जीवन परिपालन आग्रह करतीं है।[1] सभी पत्नियां एक एक करके जम्बूकुमार से विभिन्न दृष्टान्तों से गृहस्थ जीवन की उपयोगिता पर प्रकाश डालती हैं तो जो भविष्य के सुख का त्याग करते हैं वह उनकी दृष्टि में प्रशंसनीय कार्य नहीं है।[2] जम्बूकुमार एक एक पत्नी को अपने अकाट्य प्रमाणों से निरुत्तर कर देता है। इसी बीच उसे विद्युच्चोर मिलता है।[3] वह भी जम्बूकुमार को वैराग्य लेने में सहायक बनता है।

---

१. कामाकुल ते कामिनी करि ते विविध प्रकार।
अंग देखाडि आपणां, बली बली जम्बूकुमार।
गीत गान गाहे करी, कुमर उपाई राग ॥५॥

२. निश्फल फल मूकी करी, जे फल वांछि अन्य।
ते सुख कांइ नवि लही, चिंतवि आपणि मन ॥२॥१२०॥

३. मनरलोग भमीउ उत्तर दक्षण पूरव पश्चिम ए दिश ए।
करणाट सिंधल द्वीप केरल देश चीणक ए खिशि।
कुंतल देस विदर्भ जनपद सह्य पर्वत भामीउ ॥१॥
भसपच पाटण अहीर कुंकण देश कलि आवीउ।
सोराष्ट देसि किष्कंध नगरी गिरनारि पर्वत भावीउ ॥

जम्बूकुमार यौवन प्राप्ति के पूर्व ही वैराग्य धारण कर लेता है और अन्त में कैवल्य प्राप्त कर निर्वाण का महापथिक बनता है। उसका अधिकांश जीवन शान्त रस से समाविष्ट रहता है

भाषा

रास की भाषा गुजराती प्रभावित राजस्थानी है। क्रिया एवं क्रिया एवं क्रियापदों में दोनों एक साथ चलती हैं। क्रिया पदों में आव्युं (३३।१६३) चाल्यु (५।१६३) पूछीया (६।१६३) आवीया (१०।१६४) पाम्यु (३६।१७३) आवीउ १६।१६४) जाइ, आवि (१५।१६४) लीधा दीधां (२२।१६५) का प्रयोग काव्य में प्रमुख रूप से हुआ है। वैसे रास की भाषा, अत्यधिक सरल एवं सहज रूप से लिखी हुई है। उसमें कृत्रिमता का अभाव है। शब्दों को तोड़ मरोड़ कर प्रयोग करने में कवि की जरा भी रुचि नहीं है।

छन्द

रास गेय काव्य है। सभी छन्द गेय हैं और कवि ने उसे गेय काव्य बनाने का पूरा प्रयास किया है। रास के मुख्य छन्द, दूहा, चुपई, राग, गुडी ढाल साहेलडीनी, ढाल यशोधरनी, ढाल मिथ्यामोनी, ढाल मालंतडानी ढाल सखीनी, ढाल सहीनी, राग आसाउरी, राग सन्यासी, राग विराडी, ढाल दमयंतीनी, ढाल मोहराजतनी, राग सामेरी, ढाल भवदेवनी, ढाल बिवाउलानी, ढाल हिंडोलानी राग देशाख, ढाल आणंदानी, ढाल वणजारानी, ढाल दशमी यशोधरनी आदि विविध ढालों, रागों का प्रयोग किया गया है। इन रागों से प्रस्तुत रास पूर्णतः गेय काव्य बन गया है।

सामाजिकता

प्रस्तुत रास में तत्कालीन सामाजिक प्रथाओं का भी वर्णन उपलब्ध होता है।

नेम निर्वाण जिहां पाम्या, राजीमतीइ तप ग्रही।
तिहां आवी जिणवर पाय प्रणमी, मानव भव सफल सही ॥२॥

अर्बुदाचल मेवाड देस लाड मरहठ गामीउ।
चित्रकोट गुजराति देस मालव सिंधु देशि कामीउ।
काश्मीर करहाट देस विराट हुं भम्यु अति घणउ।
परिभ्रमण कीधां द्रव्य कारणी पार न पाम्यु तेह तणु ॥३॥

पुत्र जन्मोत्सव पर अनेक प्रकार के आयोजनों का सम्पन्न होना, उपाध्याय के यहां विद्यार्थियों का अध्ययन, सभी तरह की विद्याओं, कला एवं अन्य विद्याओं में पारंगता प्राप्त करना, विवाह के अवसर पर बाजों का बजना, स्त्रियों द्वारा मंगल गीत गाना, नृत्य करना, बन्दीजनों द्वारा गुणानुवाद करना, घोड़े पर चढ़कर विवाह के लिये प्रस्थान करना, दहेज में सोना चांदी, रत्नों के आभूषण देना, विवाहोत्सव पर विविध प्रकार के व्यंजन तैयार करना, आदि प्रथाओं के नाम उल्लेखनीय हैं। इसके तत्कालीन समाज का कुछ कुछ परिचय प्राप्त किया जा सकता है। नारी को त्यागने के प्रति जैन काव्यों में उत्साह वर्धक अंश रहता है। नारी के त्यागने पर मुक्ति मिल सकती है। क्योंकि नारी और गृहस्थी का तारतम्य सम्बन्ध है है। यदि किसी के जीवन में नारी है तो वैराग्य का अभाव है। साधु के जीवन में प्रवेश करने के पूर्व नारी का परित्याग नितान्त आवश्यक है इसलिये प्रत्येक जैन कवि ने अपने काव्यों में नारी की प्रशंसा के साथ साथ उसकी निन्दा भी उसे संसार परिभ्रमण का कारण मान कर की है। प्रस्तुत काव्य भी इस से अछूता नहीं बचा और यहां भी त्रिभुवनकीर्ति ने नारी के प्रति निम्न विचार प्रस्तुत किये हैं—

कूड कपटनी कोथली, नारी नीठर जाति।
नसकि देखी रूयडउ, करि पियारी तात ॥१०॥

सीयल रयण नवि तेह गमि, हीयडा सुंदरी मोह।
रस सुंरमि अनेरडी, अन्य चडावि दोह ॥११॥

दया रहित अति लोभणी, धर्म न आणि सार।
दयामणी दीसि, सही रूठी क्रूर अपार ॥१२॥

नारी के सौन्दर्य के प्रति अरुचि पैदा करके मानव में वैराग्य की भावना उत्पन्न करना ही जैन काव्यों का मुख्य उद्देश्य रहा है। काव्यों के रचयिता स्वयं जैनाचार्यों एवं सन्तों ने इसको पहले अपने जीवन में उतारा है और वही बात काव्यों में प्रस्तुत की है। जम्बूस्वामी भी अपनी नवविवाहित ऐसी पत्नियों का त्याग करते हैं जिनके विवाह की मेंहदी भी नहीं सूखी थी तथा विवाह का कंकण हाथों में ही बंधा था। लेकिन यदि निर्वाण पथ का पथिक बनना है तो इन सबका परित्याग करना पड़ेगा। इसी त्याग के कारण एक 'साधु' सम्राट द्वारा पूजित होता है इन्द्रों एवं देवों द्वारा आराध्य होता है।

भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति जैन सन्त थे। त्याग उनके जीवन में उतरा हुआ था। इस प्रकार के सन्त जल में कमलवत रहते है। वे अपने भक्तों को पाप के कार्यों का त्याग करने एवं पुण्य के कार्यों को अपनाने के लिए कहा करते हैं। यद्यपि पाप एवं पुण्य दोनों ही संसार का कारण है लेकिन पुण्य से उत्तम गति, उत्तम देह, ऐश्वर्य एवं सम्पत्ति सभी तो मिलती है। इसलिए ऐसे कार्यों को करते रहना चाहिए जिससे सतत पुण्य का उपार्जन होता रहे। प्रस्तुत काव्य में कवि पुण्य की प्रशंसा भी इसीलिये निम्न शब्दों में करते हैं—

पुण्य ग्नरि घोडां नीलास, पुण्यि घिर लक्ष्मी नु वास।
पुण्यि घिरि रिधि अविसार, एसहु पुण्य तणु विस्तार।।२४।।

प्रस्तुत काव्य जवाछ नगर के शान्तिनाथ चैत्यालय में रचा गया था। इसकी एक मात्र पांडुलिपि जयपुर के दिगम्बर जैन तेरह पंथी बड़ा मन्दिर के शास्त्र भंडार में गुटका संख्या २५५ के पत्र संख्या १६१ से १६० तक संग्रहीत है। प्रस्तुत पांडुलिपि संवत् १६४४ फागुण शुक्ला अष्टमी की लिखी हुई है। लिपि स्थान बडवाल नगर का आदिनाथ जिनालय था। लिपिकर्त्ता थे ब्र० सामल जो काष्ठा संघ में नन्दीतटगच्छ के विद्यागण के भट्टारक विश्वभूषण के शिष्य थे।[1]

---

१. संवत् १६ ४४ वर्षे फागुण मासे शुक्ल पक्षे अष्टम्यां शुक्रवासरे बडवाल नगरे आदिनाथ चैत्यालये श्रीमत्काष्ठासंघे नंदीतटगच्छे विद्यागणे भट्टारक विश्वभूषण तत् शिष्य ब्र० सामल लिख्यते।

जम्बूस्वामी रास

रचनाकाल संवत १६२५

रचनास्थान—जवाछ नगर

अथ जम्बूस्वामी रास लिख्यते

मंगलाचरण

वीर जिणवर २ नमुं ते सार।
तीर्थंकर चुबीसमुं वाँछित फल बहु दान दातार।
बालपणि रिधि परिहरी, वरीय संयम भार मार।
रुद्र पूरीसह अति सही, करी बली तप अघोर।
हुया ते मुगति नाराजीया कर्महणी कठोर ॥१॥

दूहा—तीर्थंकर त्रेवीस जे पूरवि हुया ते सार।
तास चरण प्रणमी करी, कवित करूं मनोहार ॥२॥

सिद्ध सूरि उवज्झायना, प्रणमी साधु मुनिंद।
हृदय कमल विकासवा, जाणउ अभिनव चंद ॥३॥

केवल वाणी ऊपडी, मनधरी सारद माय।
निर्मल मति मुझ आपज्यों, प्रणमुं तमचा पाय ॥४॥

श्री उदयसेन सूरी वर नमी, त्रिभुवनकीर्ति कहि सार।
रास कहुँ रलीयामणु, अक्षर रयण भंडार ॥५॥

भवीयण जन तमे सांभलु, चरित्र जम्बूकुमार।
सार सौख्य जम लहुं, वाँछित फल बहु सार ॥६॥

मगध देश की राजधानी राजगृही का वर्णन

चुपई—सायर द्वीप असंख्या जाण, तेह मध्य जंबू द्वीप बखाण।
लक्ष योजन कुंडल आकार, त्रिगुणी परिधि अधि विस्तार ॥७॥

मेरु सुदर्शन मध्यि कह्यु, सहस्र नवाणुं ऊंचु रह्यु।
सहस्र योजन भू मध्यि जाण, पंच वर्ण रत्न मिश्र बखाण ॥८॥

मेर थकी दक्षिण विभाग, भरत क्षेत्र वसि तिहां लाग ।
पंचसि योजन छत्रीस, छह कलावर जाणु ईस ।।६।।

मगध देश अछि तिहां चंग, सविहू देश मांहि मन रंग ।
रायण केल अनिसहकार, दाडिम द्राख तणउ नहीं पार ।।१०।।

ठाम ठाम दीसि प्रासाद, भालरि ढोल दादामा नाद ।
कनक कलस ध्वजा लहकंत, ठाम ठाम मुनिवर महंत ।।११।।

मटंब धोख करबट छि घणा, पुर पाटण नगर नहीं मणा ।
ठाम ठाम पर्वत उत्तंग, मुनिवर ध्यान धरि रही अंग ।।१२।।

देश मध्य मनोहर ग्राम, नयर राजग्रह उत्तम ठाम ।
गढ़ मढ मंदिर पोल पगार, चउहटा हाट तणु नहीं पार ।।१३।।

धनवंत लोग दीसि तिहां घणा, सज्जन लोक तणी नहीं मणा ।
दुर्ज्जन लोक न दीसि ठाम, चोर चरड नहीं तिहां ताम ।।१४।।

घरि घरि वाजित्र वाजि चंग, घिर घिर नारी धरि मन रंग ।
घिर घिर उछव दीसि सार, एह सहू पुण्य तणु विस्तार ।।१५।।

राजा श्रेणिक एवं चेलना रानी का वर्णन

तिणि नयर श्रेणिक छि राय, सवि भूपती जीता भडवाय ।
दान करी सुर वृक्ष समान, याचकनि देइ बहुदान ।।१६।।

धर्म तणु राय करि विस्तार, पाप तणु करि परिहार ।
समकित रयण भूखउ शरीर, कामदेव सम रूपि धीर ।।१७।।

ज्ञान विज्ञान जाणि सवि भूप, जीवा जीवा जाणि स्वरूप ।।
प्रथम तीर्थंकर अनागत सार, कर्म तणुउं करि परिहार ।।१८।।

तै घरि राणी चेलना कही, सती सरोमण जाणु सही ।
समकित भूखउ तास सरीर, धर्म ध्यान धरि मन धीर ।।१६।।

हंस गति चालि चमकती, रूपि रंभा जाणउ सती ।
मस्तक वेणी सोहि सार, कंठ सोहिए काउल हार ।।२० ।

काने कुंडल रत्ने जडयां, चरणे नेउर सोवन घड्या ।
मधुर वयण बोलि सुविचार, अंग अनोपम दीसि सार ।।२१।।

राय तणी राणी छि इसी, सुख विलसि ते हसु उलहसी ।
तेह सरसु भोगवइ सुख भोग, तेह सरसु भवि लहि वियोग ।।२२।।

काल गउ नवि जाणि राय, राज्यपालि जिन पूजि पाय ।
चिहु प्रकार देइ बहु दान, मन अहिंकार न धरि मान ।।२३।।

पुण्यि घरि घोडा नीलाम, पुण्यि थिर लक्ष्मी नु वास ।
पुण्य थिर रिधि अविसार, ए सहू पुण्य तणु विस्तार ।।२४।।

भगवान महावीर के समवसरण का आगमन

दूहा—एक दिवस विपुलाचलि, आव्या वीर जिणंद ।
समोसरण धनदि रचउ सीख लेइ तव इंद ।।२५।।

रयण सुवर्णह रूप्यमि, चूली गढ़ ए च्यार
गढ गढ प्रति सोभति पोल अछिच्यार च्यार ।।२६।।

मानस्तंभ अति रूयडा सोहि च्यार उत्तंग ।
वायव सिद्ध जा लहू लहि, आहवानन करि चंग ।।२७।।

निग्रंथ आदि अति भली, बार सभा माहंत ।
चतुर्निकाई देवता, तिहां अछि अनंत ।।२८।।

मध्य सिंघासण विसणि, बिठा जिनवर भाण ।
सप्त भंगी वांणी हुई, योजन एक प्रमाण ।।२९।।

भामंडल पूठि भलु, दिनकर कोडि समान ।
छत्र त्रय अति रूयडा पंच, धरि बली ज्ञान ।।३०।।

एक दिवस वनपालक, आव्यु वनह मझार ।
छह रतनां फल देखीनि: मन माहि करि विचार ॥३१॥

श्रेणिक द्वारा भ. महावीर की वंदना

समोसरण जिन वीरनु, आव्यु विपुलगिरि राय ।
हरष धरी मन आपणि, देइ पंचाग पसाय ॥३३॥

सिंघासन थी उतरी, ते दिश नमीउ राय ।
आणंद भेर देइ करी, वीरनि वंदण जाय ॥३४॥

वस्तु —तिणि अवसर रे राय भुआण, भाव धरी मन आपणि स्नान करी ।
वस्त्रांग पिहुरी सामग्री सवि सज करी ।
निर्मल भाव मन माहि घरी ।
पट हस्ती श्रंगरीनि चाल्यु सवि परिवार ।
अष्ट प्रकार पूजा लेई, करतु जय जय कार ॥१॥ ॥३५॥

राग गुडी ढाल साहेलडीनी

वीर जिणेसर वांदवा जी, चाल्यु श्रेणिक भूप ।
भाव धरी मन आपणे जी, जाण तु तत्त्व स्वरूप ।
हो स्वामीय गुरु वंदण जाइ, वीर तणा गुण गाई रे साहेलडी ॥१॥ ॥३६॥

गज बिसी राजा चालीउ जी, साथि सहू परिवार ।
वाजित्र वाजि अति घणा जी, संख्या रहित अपार ॥ हो स्वामी ॥२॥ ॥३७॥

मैगल माता अति घणा जी, राजवाहन चकडोल ।
वाय वेग तुरंगमाजी, तेह अछि बहू मूल हो स्वामी ॥जग॥३॥३८॥

मस्तक छत्र सोहामणु जी, चमर ढलि बिहू पास ।
दान देइ राजा अति घणु जी, याचक पूरि आस हो स्वामी ॥जग॥४॥३९॥

मान धरंतु अति घणु जी, लागु जिनवर पास ।
त्रण प्रदक्षणा देईनिजी, वांदि मन उल्हास हो स्वामी ॥जग॥५॥४०॥

अष्ट प्रकारी पूजा करी जी, स्तवन करि रे नरिंद ।
जग गुरु जग गुरु राजीउजी, जगश्रय सेवि जिणंद हो ।।स्वामी।।६।।४१।।

जिन जीइ धर्म प्रकासीउ जी, कहीउ तत्व स्वरूप ।
चिहुगति नां सुख दुख कहा जी, ते सवि सुणीयां भूप हो स्वामी ।।७।।४२।।

देव एक तिहां आवीउ जी, अपछरा च्यार सहेत ।
देखी मन माहि चमकीउ जी, पूछि देव नु हेत हो स्वामी ।।जग।।८।।४३।

राजा श्रेणिक की जिज्ञासा

राइ जिनवर पूछीया जी, कहु स्वामी कुण एह ।
विद्युन्माली देवता जी, जिनजीइ कहु सहू हेत हो स्वामी ।।जग।।९।।४४।

आज थकी दिन सातमि जी, चवसि एहज देव ।
मन माहि संदेह प्रामिउ जी, पूछि श्रेणिक हेव हो स्वामी ।।जग।।१०।।४५

सुरवि तह्यो इम कहु जी, षट मास इह ज आयु ।
कंठमाला म्लानिज हुइ जी, तेह हुइ सुख आयु हो स्वामी ।।जग।।११।।४६।।

देव आवी पूजा करी जी, बिठउ सवि परिवार ।
एतलि राइ पूछीउ जी, देवनु सहुइ विचार हो स्वामी ।।जग।।१२।।४७।।

सांभल राजा तुझ कहु जी, देवनु सहूइ विचार ।
एक मनां सहू सांभलु जी, जिम लहु सौख्य अपार हो स्वामी ।।जग।१३।४८।।

भ० महावीर द्वारा समाधान

वस्तु बंध—सुणु राजन सुण राजन देव चरित्र ।
भवदत्त भवदेवनु कहु चरित्र, मन आणंद आणी ।
तप जप संयम आचरी धरीय ध्यान मन ज्ञान जाणी ।
आज थकी दिन सातमि स्वर्ग थकी चवी सार ।
देव देवी सुख भोगवी, मध्य लोक अवतार ।।१४।।४९।।

वर्द्धमानपुर नगर वर्णन

ढाल यशोधरनी

जंबू द्वीप भरह क्षेत्र कहिइ अति सोहि ।
वर्द्धमानपुर नाम सार भवीयण मन मोहि ॥१॥५०॥

मिथ्यात्वी द्विज अतिघणाए, तेह नयर मझार ।
वेद स्मृति यज्ञ करीए हणि जीव अपार ॥२॥५१॥

स्वरग मारग तिणि कारणि ए, करि धर्मज एह ।
जीव तत्व अजीव तत्व, नवि जाणि तेह ॥३॥५२॥

मिथ्यात्वी द्विज एक वसि, तेह नयर मझार ।
आर्यवसु तसु नाम भंजु, सोम सर्मा नार ॥४॥५३॥

ताय तणी कुखि उपनीए, भवदत्त भवदेव ।
सास्त्र सवे भणावीयाए, पाम्या योवन तेव ॥५॥५४॥

अष्टादस वरसह तणु ए, हुउ भावदेव ।
बार वरस तणी उलंघूए, हुउ भवदेव ॥६॥५५॥

एक दिवस आर्यवसू ए, पापह परिभाव ।
कुष्ट घणु तेह नीसरयुउ पाम्यु दुख दाव ॥७॥५६॥

जीवत आस्या परहरीए, काष्टह घणां मेली ।
चिहा करी प्रवेश कीउ, साथि स्त्री सहेली ॥८॥५७॥

पितृ तणां दुख पुत्र करि, नवि जाणि मर्म ।
घिर रह्यां सुख भोगविए, नवि जाणि धर्म ॥९॥५८॥

एकदा मुनिवर आवीयाए, सौधर्म्मा स्वाम ।
ज्ञानवंत यती नायकु ए तेज तणु धाम ॥१०॥५९॥

दश लक्षण धुर धर्म धरि, त्रण रत्न भण्डार ।
च्यारि कषायनि त्रण सल्य, ते रहित संसार ॥११॥६०॥

भवदत्तादिक नगर लोक, आव्या तेणि ठाम ।।
मुनिवर वांदी पाय पूजी, बिठा सविनाम ।।१२।।६१।।

मुनिवर बोल्यु विहुय परि, श्रावक यती धर्म ।
सात तत्व पुण्य पाप भेद, कह्य तेहज मर्म ।।१३।।६२।।

धर्म प्रभावि जीव, लहि स्वरग अवतार ।
पाप प्रभावि नरक माहि, छेदन दुख अपार ।।१४।।६३।।

जाइ आवि जीव एकलुए, चिहुं गति मझार ।
एकलु सुख दुख भोगवि ए, जीव इणि संसार ।।१५।।६४।।

मुनिवर वाणी सांभली, भावदेव बलवंतु ।
वैराग पाम्यु अति घणु ए, संसार थी संवयु ।।१६।।६५।।

दिक्षा लीधी जिण तणी ए, सवि मूकी संग ।
चारित्र पालि निर्मलुए, मन धरीय संवेग ।।१७।।६६।।

एकदा मुनिवर चिंतविए, भ्राता भवदेव ।
मिथ्यात्व मत माहि पड्यु ए, प्रतिबोधु हेव ।।१८।।६७।।

गुरू वांदी एक शिष्य लेइ, चाल्यु मुनि तेह ।
भव देव घिर आवीउ, दीठउ तब गेह ।।१९।।६८।।

उछव देखी अति घणुए, पूछि भावदेव ।
कर कंकण कुण कारणिए, बोलि भवदेव ।।२०।।६९।।

बर्द्धमान पुर माहि द्विज, दुर्मख नागदेवी ।
तेह तणी धी नागिलए, स्वजने परणावी ।।२१।।७०।।

सांभली मुनिवर कम कम्युए, सोभलि वछ वात ।
धर्म बिना जीव नवि लहिए, इंद्रादिक ता तउ ।।२२।।७१।।

वचन सुणी अति बीहनुए, श्रावक व्रत लीधां ।
समकित लीधउंनिर्मलउंए, मूलगुण दीधां ।।२३।।७२।।

मुझ घिर स्वामी आहार लेई, [illegible] गेह ।
आहार लेई मुनिवर कहिए. अक्षय अन्न एह ॥२४॥७३॥

आहार लेई धर्म वृधि कही, चाल्यु तल रवेव ॥
कमण्डल लेई पूठ थकी, चाल्यु भवदेव ॥२५॥७४॥

मारग जाती चिंतविए, किम जाउ गेह ।
कंकण केरा काज सवि, किम करूंय तेह ॥२६॥७५॥

मारग जाती देखविए, मरोच नर वन वृक्ष
स्वामी जाणउ मुझ गेह. मुझ मंडप दक्ष ॥२७॥७६॥

बोलि मुनिवर सुणु वछ, नहीं मंडप गेह ।
चालिवि मुनि आवीयए, बिठा तिहां तेह ॥२८॥७७॥

देखी मुनिवर बोलिया ए, भाई प्रति बोधी ।
दिक्षा लेवा ल्यावीउ, भवदेवह सोधी ॥२९॥७८॥

वचन सुंणी मन चिंतविए, हवि करूं केम ।
बाल दीतइ विचि पड्यउ, ए जीव वरूं केम ॥३०॥७९॥

लाज आणी मन आपणिए, मांगि व्रत हेव ।
सवि दिक्षा मुनिवरिए, दीधी भव देव ॥३१॥८०॥

कामिक तप अतिघणु ए करि मन आणी ।
नागला रूप सौभाग्य कला, मन माहि जाणि ॥३२॥८१॥

वर्द्धमान पुर संघ सहित, आव्या मुनि ताम ।
ध्यान धरी मुनिवर सहुए, बिठा निज ठाम ॥३३॥८२॥

आहार लेवा नगर भणी, चाल्यु भवदेव ।
चैत्यालुं सब देखीउं ए संसि हूउ हेव ॥३४॥८३॥

वस्तु-तेह मुनिवर तेह मुनिवर आव्यु पुर मध्य
नेह धरी मन आपणि, नागला नारी उपरि अपार ।
नगर माहि वली पिसंता, देखु चैत्य नवु उधार ।
देखी प्रसाद ल्यडउ, मन चिंति मुनिराय ।
चालीनी तिहां आवीउ, दीठी तिहां एक नारि ॥३५॥८४॥

दोहा क्षीण गात्र अति दूबली, जोवानि नही लाग ।
मुनिवर वांदी नागला, बिठी अग्रंवि भाग ।।१।।८५।।

धर्मबुद्धि मुनि इम कही, पूछि पूर्व विचार ।
भवदत्त भवदेव द्विज, किसु कारि व्यापार ।।२।।८६।।

वचन सुणी कहि नागला, मुनि हूआ भवतार ।
सांभली मुनि इम बोलीउ, आपणा नारि विचार ।।३।।८७।।

यौवन पायी अति घणु, परण्यु भवदेव ।
नारि तेह बडा किसु करि, किम रहकि आधार ।।४।।८८।।

वचन अलापित्त लक्षु, जाण्यु ए भवदेव ।
स्थितिकरण करू घणुं, प्रतिबोधं मुनि हेव ।।५।।८९।।

वचन सुणी मुनिवर तणां, बोलि नागला नारि ।
रे रे मुनिवर तुझ कहुं, सांभलि वचन उदार ।।६।।९०।।

जिन दिक्षा जिन दर्शन, प्रामी परम संयोग ।
विषय सुख मन माहि धरी, कुण इछि वर भोग ।।७।।९१।।

समकित चिंतामणि समुं, प्रामीनि ममहार ।
विषय सुख दुर्गति तणा, दुःख देइ अपार ।।८।।९२।।

स्वरग मुगति सुख दायनी, प्राणी दिक्षा सार ।
नयरतणी दाता सही, कुण ई छिए नारि ।।९।।९३।।

कूड कपटनी कोथली, नारी नठिर जाति ।
नसकि देखी रूयडउं, करि पियारी तास ।।१०।।९४।।

सीयल रयण नवि तेह गमि, हीयाडा सुंधरी मोह ।
रस सुंरमि अने एडी, अन्य चडावि दोह ।।११।।९५।।

दया रहित अति लोभणी, धर्म न जाणि सार ।
दया भणी दीसि सही, रूठी क्रूर अपार ।।१२।।९६।।

नारी रूप न राचीय, गुण राचउ सहू कोइ।
जे नर नारी मोहीया, हो ंवि जाणि सोय ॥१३॥९७॥

नवे द्वारे अशुचि चविमल पुरस्यु तस देह ।
असत्य भाषि सदा, सत्य न बोलि तेह ॥१४॥९८॥

इशां वचन ज सांभली मास्यु मुनिवर लाज ।
अवो मुख जोह घणउं, नवि सरयुउ मुझ काज ॥१५॥९९॥

जे पूछिति नागला, ते मुझनि तु जाण ।
देह कुछित मुझ देखीनि, मम कर मोह प्रमाण ॥१६॥१००॥

मोहि नर दुर्गति लहि, प्रामी दुखनी खाणि।
मोह करि जे प्राणीया, करि सवि जीव नीहाणि ॥१७॥१०१॥

द्रव्य हतु जे ताहरू, खरचीनि मनोहार ।
चैत्य कराव्यु रूयडउ, पुण्य तणु आधार ॥१८॥१०२॥

परिग्रह सहूइ परिहरी, श्रावक व्रत धरी सार ।
हणि स्थानिक तप जप करि, रहती जिन आधार ॥१९॥१०३॥

एहवी मुझनि जाणीनि, चंचल चित्त मम थाय ।
निश्चल मन करे आपणु, सेवि जिनवर पाय ॥२०॥१०४॥

वचन सुणी नारी तणां लाज लही अपार ।
नाव समान मुझ तु हूई, उतारवा भव पार ॥२१॥१०५॥

जे नारी सहूइ कहि ते ए नारन होइ।
स्वरग मुगति सुख दायनी, एह समान न कोइ ॥२२॥१०६॥

क्षमा क्षमतव्य कही, आव्यु वनह मझार ।
गुरु चरणे प्रणमी करी, मांगि संयम भार ॥२३॥१०७॥

भाव चारित्र लेई करी, तप जप करि अघोर ।
राग द्वेष सहू परिहरि, विषय निवारि चोर ॥२४॥१०८॥

वि मुनिवर अति रूपडा, ध्यान धरि बन माहि ।
संयम पालि निर्मल, घरीय ते मन उच्छाह ॥२५॥१०६॥

अवसानि विपुलाचलि, याळ्या बे मुनिराय ।
अणसण लेई ध्यान सु, मूमि बे मुनिकाय ॥२६॥११०॥

वस्तु बेह मुनिवर बेह मुनिवर करी तप घोर ।
सप्त सागरनि आयु सि तृतीय स्वरग अवतार ।
प्रामी समकित पालि निर्मलु चारित्र भावि ।
स्वरग गामीय सुख भोगाव व अति घणु कीडा करि अपार ।
काल गउ जाणि नहीं भोग लही सुख सार ॥२७॥१११॥

ढाल-मिथ्यामोती

जंबू द्वीपि अति भलु ए, पूर्व विदेह विख्यात तु ।
उत्सर्पणी अवसर्पणीए, काल तणी नहीं बात तु ॥१॥११२॥

सलाका पुरुषह उपजिए, अंतर नहीं तिहां हेततु ।
कोड पुरवु नु आयु सुए, पंच सिष नु देहतु ॥२॥११३॥

अन्य मिथ्यात्व तिहां नहीए, दीसि सास्वतु काल तु ।
पंच ज्ञान तिहां सास्वताएं, सास्वतां तत्व रसाल तु ॥३॥११४॥

विदेही मुनिवर अतिघणाए, मुनि दीसि रिधिवंत तु ।
मोक्ष मारग एक जाइए, संचि सौख्य अनंत तु ॥४॥११५॥

व्यसन एक तिहां नहीं, एक नवि दीसि तीहां कुरीति तु ।
सत्य भाषि नर अति घणाए, नवि दीसि तिहां ईत तु ॥५॥११६॥

तस मध्यि देसह भलउए, पुकलावती तसु नाम तु ।
मटंब घोष करबट भरयु ए, नगर दीसि ठाम ठाम तु ॥६॥११७॥

पुंडरीकणी नगरी भलीए, देशह तेह मझारतु ।
चैत्य चैत्याली अति घणां ए, बन उपवन अपार तु ॥७॥११८॥

ध्यान धरि मुनि अति घणाए, स्वरग मुक्ति तणि हेतु तु ।
पुण्यवंत नर अति भलाए, नारी नर शीलवंत तु ॥८॥११९॥

तेह नगरी नु राजीउ ए, वज्रदंत तेह नाम तु ।
धीर प्रतापी अति भलु ए, सोहि अभिनवु काम तु ॥१२०॥

तस पट राणी रूयडीए, विशालाक्षी तस नारि तु ।
भवदत्तु जीव ज्रे अछिए, बीजा स्वरग मभार तु ॥१०॥१२१॥

तिहाँ थकी चवी उपनुए, तास यपरि अवतार तु ।
सागरचन्द्र नामि भलु ए, दिन दिन वाधि अपार तु ॥११॥१२२॥

वीतशोका नगरी भली ए, तेह देस माहि जाण तु ।
मणि माणिक पुरी अछिए रत्न तणी ते खाणि तु ॥१२॥१२३॥

तेह नगरी नु राजीउए, चक्रधर महा पद्म तु ।
षट खण्ड ते भोगविए चौद रत्न तेह छद्म तु ॥१३॥१२४॥

नवह निधि घिर अति भलीए, सहस बत्रीस राय तु ।
छनूं सहस अते घरीए, सेवि तेह न पाय तु ॥१४॥१२५॥

अठार कोड तुरंगमाए, लक्ष चउरासी नाग तु ।
एतला रथ चंदन तणा ए, पायदल तणु नहीं भाग तु ॥१५॥१२६॥

छन्न उप कोडि ग्राम अछिए, सहस बत्रीसह देस तु ।
त्रण कोडि गोकल अछिए, एक कोडि हल हेसतु ॥१६॥१२७॥

राज रिद्धि सुख भोगविए, पुत्र रहित राय तु ।
पुत्रनी वांछा जव करिए, सेवि जिनवर पाय तु ॥१७॥१२८॥

भवदेव चरजे अछिए, स्वरग थकी चवी हे ततु ।
शिव कुमार नरमि भलु ए, पुत्र हुउ तस गेह ॥१८॥१२९॥

बीज चंद तणी परिए, दिन दिन वाधि देह तु ।
आठ वरस जब नु लीधा ए, भणवा मुक्यु तेह तु ॥१९॥१३०॥

शास्त्र सवे भणावीउए, प्राप्यु ज्ञाननु संच तु ।
विवाह मेली परणावीए, कन्या सुभसि पंच तु ॥२०॥१३१॥

तिहुं सरसां सुख भोगविए, क्रीडा करि अपार तु ।
एह कथा हवि इहां रही ए, अवर सुणु विचार तु ॥२१॥१३२॥

सागरचंद्र नामि भलु ए, सुख भोगवि समाज तु ।
अवधि ज्ञानी मुनि आवीयाए, आव्यु नगर उद्यान तु ॥२२॥१३३॥

नगर लोक कुमारसु ए, चाल्या सब परिवार तु ।
मुनि वांदी धर्म सांभलीए, पूछि निज भवसार तु ॥२३॥१३४॥

पूरव भव मुनि वर कह्या, ए आव्यु अति वैराग्य तु ।
दिक्षा लेई मुनि तप करिए, करतु जीवनु माग तु ॥२४॥१३५॥

विहार करंतु आवीउ ए, वीतशोक मुनिराय तु ।
राज द्वार पासि आवीउ ए, सेठि प्रणम्या पाय तु ॥२५॥१३६॥

पडघाई घिर आणीउ ए, अहार दीउ अपार तु ।
रत्न वृष्टि तिहां हुई ए हुउ तिहां जयकार तु ॥२६॥१३७॥

कोलाहल हुउ घणाउए, कुमरि सुणीउ ताम तु ।
मुनि साहमु जब जोई ए, जाति समर तिणि ठाम तु ॥२७॥१३८॥

पूरव वृतांत ह जाणीउ ए, आव्यु मुनिवर पास तु ।
देखी मुनिवर मूरछ्यु ए, चेत रहित नीसास तु ॥२८॥१३९॥

स्वजन मिली तिहां आवीयाए, पूछि मातनि तात तु ।
कुण कारण तु मूरछ्यु ए, अम्हनि कहु सहू वात तु ॥२९॥१४०॥

दिक्षा लेउ अह्मो रूयडीए, तप करसूं अह्मो माय तु ।
सुणीय वचन विलखी हुई ए, कुश मावसी अनि राय तु ॥३०॥१४१॥

तात निवारि पुत्रनि ए, दिक्षा नु नहीं काल तु ।
जिन दिक्षा दोहिली अछिए, घिर रही व्रत पालतु ॥३१॥१४२॥

सुणी वचन तातह तणाए, घिर रहु कुमार तु ।
तप करि तिहां अति घणु ए, नीरस लेइ आहार तु ॥३२॥१४३॥

विषय सुख सहू परिहरिए, परिहरि नारी संग तु ।
राग द्वेष सहू परिहरिए, ध्यान धरि मनरंग तु ॥३३॥१४४॥

बरस चउरासी सहस्र लगि, तप करयु अपार तु ।
अन्त काल दिक्षा धरीए, संयम पाली सार तु ॥३४॥१४५॥

सुभ ध्यानि काल करीए, छट्ठा स्वरग मझार तु ।
विद्युन्माली देव हूउ ए, इद्र तणु अवतार तु ॥३५॥१४६॥

सागर दसनि आयुधिए, नवि जाणि गत काल तु ।
च्यार देवीसउ मन रलीए, भोगवि सौख्य रसाल तु ॥३६॥१४७॥

सागरचन्द्र तप करीए, पाली अणसण सार तु ।
तिणि स्वर्गि प्रेते हूउए, भोगवि सोख्य अपार तु ॥३७॥१४८॥

वस्तु— सुणु श्रेणिक सुणु श्रेणिक एह कथा सार ।
विद्युन्माली देवता च्यार नारिसु इहां आव्यु ।
आज थकी दिन सातमि चवीय भवह अवतार ।
पामि मगध देश राजग्रहि अर्हंदास घिर सार ।
जिनमती कूखि अवतरि जंबूकुमार भवतार ॥३८॥१४९॥

चुपई— जंबूद्वीप भरत मझार, नयर राजग्रह उत्तम ठार ।
राजकरि तिहां श्रेणिक राय, सवि भूपति प्रणमि तस पाय ॥१॥१५०॥

नयर धुरंधरि श्रेष्ठी वसि, अर्हंदास नामि उल्हसि ।
धर्मधुरा धरि मन धीर, समकित भूष्यउ तास शरीर ॥२॥१५१॥

दाता धरमीनि गुणवंत, राज्य मान अति शीलवंत ।
च्यार अहार देइ बहू दान, मन अहिंकार न धरि मान ॥३॥१५ ॥

तस घिर राणी शीलि सती, चंद्र वदना नामि जिनमती ।
पीन पयोधर मदनावास, विद्याधर कोकिल संकास ॥४॥१५३॥

नव यौवन पूरि ते नार, कंठ सोहिए काउल हार ।
शीलाभरण भूख्यउ तस देह, दिन दिन पति सूं अधिक सनेह ॥५॥१५४॥

एक दिवस सूती जिनमती, पश्चिम रयणी देखि सती ।
पंच स्वपन देखां अभिराम, नयणे नींद न आवि ताम ॥६॥१५५॥

पहिलि जंबू वृक्ष विसाल, परिमल सहित फल फूल रसाल ।
बीजि निरधूम अगिन अंगीठ, शाल क्षेत्र त्रीजि पगउ मीठ ॥७॥१५६॥

सरोवर चुथि दीठउ जाम, हंस सारस क्रीडा करि ताम ।
पंचमि समुद्र दीठउ तिहां सार, हुउ प्रभात जागी तिणि वार ॥८॥१५७॥

अर्हदास आगलि कही वात, पंच स्वपन देख्या विख्यात ।
सुणी वचन वन आई नाह, मुनिवर प्रणमी पूछि साह ॥९॥१५८॥

सुणी वचन बोलि मुनि रही, स्वपन फलाफल जाणउ सही ।
जंबू फल देख्यउ तम्हे नारि, पुत्र हुसि चिर जंबूकुमार ॥१०॥१५९॥

निरधूम अगिन देख्यउ तम्हे सुणउ, क्षय करसि सवे करमह तणु ।
शाल क्षेत्र देख्यां अभिराम, लक्ष्मीपति होसि गुणधाम ॥११॥१६०॥

जल पूरयु सर दीठउ सार, पाप तणु करसि परिहार ।
रत्नाकर देख्यु तिणि वार, जन बोधी भव तरसि पार ॥१२॥१६१॥

वरस सोले त्यजी घर वार, च्यारि नारि छंडी परिवार ।
दीक्षा लेई तप करसि सार, चरम देही होसि अवतार ॥१३॥१६२॥

सुणी वचन हरख्यु अर्हदास, स्वजन सहित आव्यु आवास ।
सुखविलासि नारीनि नाह, काल गयु नवि जाणि साह ॥१४॥१६३॥

आउ अंति तडितमाली देव, स्वरग थकी चवी ते खेव ।
जिनमती उपनु गर्भ, दिन दिन वाधि तेहज दंभ ॥१५॥१६४॥

गर्भ करी सोहि जिनमती, उत्तम डोहला धरती सती ।
त्रिवलय भंग न पामि देह, सुत्र त्रिनमि रमणी निज गेह ॥१६॥१६५॥

मन वछित पूरि भरतार, ए सहू पुण्य तणु विस्तार ।
पुण्यि नर पामि घणी रिधि, पुण्यि त्रिरि हुइ सहू सिधि ॥१७॥१६६॥

मास नव पूरा थया जसि, पुत्र जनम हुउ घिर तसि ।
आषाढ घिर मजू पालि पाख, आठिम दिन जाणउ ए माथ ॥१८॥१६७॥

वस्तु—पुत्र जन्म पुत्र जन्म अति मनोहार ।
घिर घिर उछव अति घणा, घिर घिर वर्तिय मंगल च्यार ।
स्वजन जन सहू हरखीउ, नयर लोक अति अपार ।
बंदी जिन विडदावली, बोलि अति घणी सार ।
हरष हूउ होइडि घणु अर्हदास तस नारि ॥१६॥१६८॥

ढाल मालंतडानी

घिर घिर उछव अति घणाए, मालंतडे घिर घिरमंगलच्यार सुणु सुंदरे ।
नयर लोक सहू हरषीउए । म उछव करि रे अपार ॥१॥

घिर घिर गुडी उछलीए । म तलीया तोरण सार ।
बंदी जिन बोलि घणु ए, मा० विडदा वलीय कुमार ॥२॥१७०॥

जय जय शब्द करि घणु ए ।मा०। आकासि रही देव ।
दुंदभि नाद करि घणु ए ।मा०। रतन वृष्टि करि खेव ॥३॥१७१॥

नारि अक्षांणा लेई लेई ए ।मा०। आवि श्रेष्ठ आवास ।
वधावीनि इम कहीए ।मा०। जीव जे कोडि वरस ॥४॥१७२॥

नयर सहू सणगारीइए ।मा०। वलीय विसेखि हाट ।
चउहटा सवे सणगारीइए ।मा०। घिर गवाक्षनि वाट ॥५॥१७३॥

नृत करि करि नृत्यंगनाए ।मा०। गीत गाइ रसाल ।
वाजित्र वाजि अतिघणां ए ।मा०। ढोल ददांमा कंसाल ॥६॥१७४॥

निकलो तुरमा दल घणाए ।मा०। भेरि वाजि वर चंग ।
इणी परि जनम महोत्सवए ।मा०। थें छिइ छिग्गइ रंग ॥७॥१७५॥

जिन मंदिर पूजा [illegible] पूजा जिनवर देव ।
चउविह दान देइ घणाउए ।मा०। सदगुरुनी करि सेव ॥८॥१७६॥

इणी परि दश वासरहूयाए ।मा०। उछिव सहितअपार ।
सोयणा अणसारि करु ए ।मा०। जंबूय नाम कुमार ॥९॥१७७॥

बीजना चंद्र तणी परिए ।मा०। दिन दिन वाधि वाल ।
एणी परि अष्टवर सहूयाए ।मा०। सुंदर सिगुण माल ॥१०॥१७८॥

जिनवर बिंब पूजी करी ए ।मा०। भणाया मेल्यु कुमार ।
जैन उपाध्याय भणावताए ।मा०। शामीउ भणवा पार ॥११॥१७८॥

कुण कुण शास्त्रज जोईयांए ।मा०। कुण कुण ग्रंथनी जाति ।
कुण कुण भासज जोईयां ए ।मा०। कुण कुण जाणि वात ॥१२॥१७९॥

व्याकर्ण शास्त्रज सवी भण्यु ए ।मा०। साहित्य तर्क प्रमाण ।
ज्योतिक वैदिक ते भण्यु ए ।मा०। छंदनि काव्य पुराण ॥१३॥१८०॥

चौदह विद्या नर लक्षणाए ।मा०। जाणि लिप अठारा ।
सर्व कलावली सीखीउ ए ।मा०। जाणि सास्त्र विचार ॥१४॥१८१॥

घिर आवी क्रीड़ा करिए ।मा०। रायना पुत्र संघात ।
राज लीला करि घणी ए ।मा०। धर्म तणी करि वात ॥१५॥१८२॥

रूपि काम देव समुए ।मा०। बल करी सिंघ समान ।
समुद्र सम गंभीर छिए ।मा०। नवि धरि जोबनि मान ॥१६॥१८३॥

यशकीर्ति न घणउ विस्तरूं ए ।मा०। भूमण्डल जग माहि ।
मन जातां देखी करी करीए ।मा०। पौर नारी मन माहि ।।१७।।१८४।।

विरहानल व्यापी घणुं ए ।मा०। करिगछि विविध प्रकार ।
पगनुं नेउर कंठि धरिए ।मा०। कंठ तणु पगे हार ।।१८।।१८३।।

किंहिंडि तणी कटि मेखलाए ।मा०। कंठ धरी तिणि वार ।
मस्तक वेणी सोहामणाउ ए ।मा०। किंड धरि सुविचार ।।१६।।१८६।।

आपणु पुत्र मुकी करी ए ।मा०। पुरनु पुत्र धरेव ।
घरनां काम मूकी करा ए ।मा०। चालि जे आत तसेव ।।२०।।१८७।।

रूपदेखी कुमर तणुए ।मा०। धरिमि मोह अपार ।
मन संकल्प धरि घणु ए ।मा०। देखि रूप कुमार ।।२१।।१८८।।

माहो माहि एकसुं कहिए ।मा०। बोलि एहवी बात ।
धन जननी कुमर तणी ए ।मा०। धन धन एहनु तात ।।२२।।१८६।।

जो थिर पुत्र एह अछिए ।मा०। सरयां सवे तेह नो काम ।
शीलवंत स्त्री जे अछिए ।मा०। तेह लेइ एहसुं नाम ।।२३।।१६०।।

कामा कुल बोलि इसुं ए ।मा०। ते करीइ तप सार ।
अन्य जन्म एह समुए ।मा०। पामीइए भर्त्तार ।।२४।।१६१।।

आपणु यसकीर्त्ति न सहूए ।मा०। सांभलि आपणे कांन ।
इणी परि थिर सुखि रहिए ।मा०। धरतु धरमनुं ध्यान ।।२५।।१६२।।

उत्तम पुत्र एकि भलुए ।मा०। भार धरि कुल जेह ।
घणे मुंडे सुं कीजीइए ।मा०। खांपण आंणि जेह ।।२६।।१६३।।

श्रेणिक रायनि बापसुए ।मा०। स्नेह धरि रे कुमार ।
सुख विलसि थिर रह्या ए ।मा०। भोगवि सोक्ष अपार ।।२७।।१६४।।

तिणि नयर विवहारीउए ।मा०। सागरदत्त ते नाम ।
पद्मावती कुखि भलीए ।मा०। पद्मश्री सुता नाम ।।२८।।१९४।।

घनदत्त बीजु भलुए ।मा०। कनकमाला तस नारि ।
कनकश्री पुत्री भलीए ।मा०। सर्व कन्या माहि सार ।।२९।।१९५।।

वैश्रवण त्रीजउ भलीए ।मा०। विनयमाला स्त्री जाण ।
विनयश्री दुहिता भली ए ।मा०। बोलि मधुरी वाणि ।।३०।।१९६।।

कणिकदत्त चउथउ भलिउए ।मा०। विनयवती तस नारि ।
लक्ष्मी दुहिता तस घिर ए ।मा०। जाणि परम विचार ।।३१।।१९७।।

चार कन्या अछि अति भली ए ।मा०। रूप सोभागनी खाणि ।
पृथु पीन पयोधरा ।मा०। बोलि अमृत वाणि ।।३२।।१९८।।

कटियंत्र अति रूडीए ।मा०। मृग नयणी गुणवंत ।
स्वरग थी च्यारि अवतरीए ।मा०। जाणि पूर्व वृतांत ।।३३।।१९९।।

सास्त्र सवि भणावीयां ए ।मा०। कन्या केरे तात ।
कला गुण सहू सखिवीए ।मा०। हूई छि लोक विख्यात ।।३४।।२००।।

पुत्र पुत्री जण्या विना ए ।मा०। पूरवि बोल्या बोल ।
अर्हदास घिर आवीया ए ।मा०। मनसुं धरी रंगरोल ।।३५।।२०१।।

आसण विसन घणां दीयांए ।मा०। मान दीघांरे अपार ।
मीठां मधुरा बोलीयांए ।मा०। ते बिठा तिणि ठाम ।।३६।।२०२।।

दूहा—ते च्यार तिहां बोलीया, अर्हदास प्रतिसार ।
जंबूकुमार ए पुत्रीयां, योग्य अछि भरतार ।।३७।।२०३।।

इणां वचन जब सांभली, मनसुं धरी उल्लास ।
स्त्रीय सहित आलोचियो, प्रमाण कहि अर्हदास ।।३८।।२०४।।

उत्तम जोसी तेडीउ, लगन लीउं तिणी वार ।
अखय तृतीया नु दिन, उत्तम जाणी सार ॥३६॥२०५॥

निज मंदिर व्यारि गया, हरष हीयि मन माहि ।
घिर जाई घिर आवणि, उछव करि विवाह ॥४०॥

अर्हंदास घिर इणी परि, उछव हुइ अपार ।
मंडप वाल्या रूयडा, अति घणी विस्तार ॥४१॥२०७॥

तोरण बांध्या रूयडा, चंद्रोया सुसाल ।
मुगता फलनी झुंबखां, पुष्पतणी नरमाल ॥४२॥२०८॥

इणी परि उछव पंच घिरि, गीत गान अपार ।
महोछव हुइ अति घणु, को नवि लाभय पार ॥४३॥२०९॥

वस्तु—बसंत आव्यु बसन्त आव्यु अति हाली रंग ।
कामीजन मनरंजनु, पंथीजन उद्वेग करतु ।
कोकिल कलिरव अति, हुया मधुप शब्द अधिक ।
घरता मंडप अतिघणा, दान करी बस्संत ।
विवाह उछव जोयवा, आव्यु मास बसंत ॥४४॥२१०॥

ढाल सखीनी

सखी आव्यु मास बसंत, वन वन वृक्षत मुरीयाए ।
चंपक चूत रसाल, केसूयडा घणां आवीयाए ॥१॥२११॥

मलयाचल संभूत वाइ, सुगंध वाइ घणाउए ।
सुखकरी कामी काय, पंथी जन दुख तणउए ॥२॥२१२॥

सखी कोकिल पंचम राग, हंसी हंमी सबद करीए ।
आव्यां वृक्ष असंख्य, घन सकाम पुर धरिए ॥३॥२१३॥

सखी आव्यु जाणी बसंत, क्रीड़ा करिवा बन भणीए ।
नगर लोक समेत, साथि सेना अति घणीए ॥४॥२१४॥

वन क्रीडा वर्णन

सखी श्रेणिक राय सुजाण, रमवा वन भणी चलीउए ।
चेलणा सहु परिवार, जंबू कुमार वली भावीउए ।।५।।२१५।।

सखी वन आव्या सहू कोइ, बसंत क्रीडा करि भलीए ।
सरोवर क्रील रांक, जंबूकुमर भलि बलीए ।।६।।२१६।।

सखी क्रीडा करि चिरकाल, सरोवर कंठि आवीयाए ।
सज करी वाहन सर्व, नगर भणी सवे चालीयारे ।।७।।२१७।।

सखी भेरी मुंगल नाद, ढोल ददमां अति वणांए ।
रण काहूण रणतुर, पारन पामुं तेह तणु रे ।।८।।२१७।।

हाथी का पागल होना

सखी तिणि दिन श्रेणिक नाग, साकलि त्रोडी मन रलीए ।
चाल्यु नगर मझार, दुष्ट पणुं धरतु वली रे ।।९।।२१८।।

सखी वन माहि आव्यू नाग, वन वृक्ष ऊपाडी यारे ।
ताल तमाल कदंब, मल्लकी कपित्थ ऊजाडीयारे ।।१०।।२१९।।

जंबू जंबीर अशोक, सहिकार नारिंग बलीए ।
खर्जुर कदली द्राख, क्रमुक चंपक पाडलीए ।।११।।२२०।।

श्रीखंड दाडिम बिलूनाल, केर राइण खरीरे ।
नागवेल वर बोल, आखोड बदाम कुमरीरे ।।१२।।२२१।।

सखी धुव खरणी गिरमाल, बहेडा महूडा आंमलीरे ।
लींबूंड लीबक बार, बीजोगी बीली बलीरे ।।१३।।२२२।।

सखीए लाल बंग प्रमुख, वन वृक्ष सहू भाजीयारे ।
पंखी सवे अनेक तिहुना माला टालीयारे ।।१४।।२२३।।

सखी महामद पूरयु नाग, अंकुशनि मानि नही रे ।
त्रास विन रनि नार, राजादिक लोकां सहूरे ।।१५।।२२४।।

सखी दह दिशि नाग लोक, श्रेणिक सु भूपति सवेरे ।
नाग नर नि नारि, प्रांण राखु ए सुलविरे ॥१६॥२२५॥

सखी को जंपि नवकार, अराधना केवि दे उरे ।
सन्यास लेइ केवि, के वि अणसण लेइरे ॥१७॥२२६॥

जम्बुकुमार द्वारा हाथी को वश में करना

सखी दुर्जय जाणी नाग, जंबकुमार आव्यु बली रे ।
नाग प्रति कुमार दृष्टि, देइ मननी रली रे ॥१८॥२२७॥

युद्ध करि तेह साथ, अंकुस घाय चूकि रही रे ।
सांग तणा बली घाय, कुंडल घाय चूकि नही रे ॥१९॥२२८॥

सखी निरमद कर बली नाग, पग देई ऊपरि चढ्यु रे ।
फेरवीनि चिरकाल, मुष्ट प्रहारि सुनड उरे ॥२०॥२२९॥

जीतु तेवली नाग, जय लक्ष्मी तिहां पामी उरे ।
पुष्प वृष्टि करि देव, ए तलि श्रेणिक आवीउरे ॥२१॥२३०॥

सखी करीय प्रसंसा सार, मनसुं स्नेह धरि घणउरे ।
पुण्य लाख भंडार, पुण्यि थिर थोडां सुणु रे ॥२२॥२३१॥

पूछ्यु श्रेणिक राइ, अर्द्धासन देइ बली रे ।
महोछव सहित कुमार, नगर माहि आवि रली रे ॥२३॥२३२॥

सखी नगर नारि तिनी वारि, वृद्धा त्रि सुखि रही रे ।
जोती जंबूकुमार, तृपति न पांमि ते सही रे ॥२४॥२३३॥

सखी हर्षण पिरि आव्यु आवास, माय बाप स्वजन मिल्यु रे ।
पूछि क्षेम समाधि, कहु नाग तम्हे किम कलु रे ॥२५॥२३४॥

सखी जिम जिम जीतु नाग, ते ते पिर सघली कही रे ।
सुखि रहि मंदिर माहि, दिन जाता जाणि नही रे ॥२६॥२३५॥

दूहा—एह कथा हवि इहां रही, अवर सुणु तम्हो वात ।
विमान बिसी एक आवीउ, विद्याधर विख्यात ॥२७॥२३६॥

गगनगति विद्याधर का आगमन

गगन, मारग थी मदसि, आव्यु सदसि मझार ।
प्रणमी श्रेणिक रायनि, बिठउ ते तिणीवार ॥२८॥२३७॥

विस्र चित्त ते जाणीउ, पूछि श्रेणिक राय ।
कुण कामि इहां आवीउ, वासि कुं कुण ठाम ॥२९॥२३८॥

सांभलि राजा तुझ कहू, सहश्र श्रंग गिरि ठाम ।
खेचर नु हुं राजीउ, गगनगति मुझ नाम ॥३०॥२३९॥

तिणि पर्वत मुझ वासडउ, हुं आव्यु जिन काज ।
ते बात तुझ हुं कहू, सांभलि तुं महाराज ॥३१॥२४०॥

ढाल सहीनी-रागगुडी

मलयाचल दक्षिण दिसि, केरामा नगरी तिहां अछि ।
धन कण संपति पुरीय, ते भली सहीए ॥१॥२४१॥

मृगांक विद्याधर भूपती, तस घिर राणी मालती ।
रूप सौभाग्य गुणी आगलीए, सहीए ॥२॥२४२॥

तेह तणी कूखि उपनी, यौवन करी वली नीपनी ।
विलासवंती नाम रूयडउ, ए । सहीए ॥३॥२४३॥

द्रढ पीन पयोहरा, कनक वर्ण काया धरी ।
मृग नयणी हंस गति गामिनीए । सहीए ॥४॥२४४॥

एक दिवस रूप देखीय, मन चिंति राय पेखीय ।
वन जाई ज्ञानी मुनि पूछीउए । सहिए ॥५॥२४५॥

कुण वर होसि एहनु, मुनिवर बोलि राय निसुणउ ।
श्रेणिक भूपति वर एह नु । सहीए ॥६॥२४६॥

एमु मन निश्चि धरी, थिर रहि सुखी करी
ए तलिए अन्य कथांतर चालीउए । सहीए ।।७।।२४७।।

हंस द्वीप द्वीपापती, रतन चूलि निहां खग पती ।
सपतांग राज राय सुख भोगविए । सहीए ।।८।।२४८।।

संग्राम दाम भेदि करी, कन्या मागी तिणि खरी ।
तेह नि मृगांक कि नवि दीधीए । सहीए ।।९।।२४९।।

कोप करी सेना मेली, देस नयर सवे भेली ।
पलिए केरला नगरी आवीउए । सहीए ।।१०।।२५०।।

रतनचूल भय मन धरी, नगरी गढ नि अणुसरी ।
स्वीकीय सैन्यइ रहु ते चलीए । सहीए ।।११।।२५१।।

काहलि संग्राम राय करिसि, रतन चूल सु बली भडसि ।
एहवुं ए पूरव वृत्तांत तुझ कहु ए ।।१२।।२५२।।

मान तणु धन जेह नि, सवे पदारथ तेह नि ।
मान रहित मूंड अति भलउए । सहीए ।।१३।।२५३।।

एहवुं कहीनि क्षण रही, चालवा उद्यम करि सही ।
ए तलि जंबूकुमार बोलीउए । सहीए ।।१४।।२५४।।

क्षण पडखु विद्याधरु, जंबूकुमार कहि सेचरु ।
सैन्य लेई श्रेणिक आवसिए । सहीए ।।१५।।२५५।।

हसी करी खग इम कही, संग्राम मारग नवि लहि ।
वामनु हस्ति चंद्र किम ग्रहिए । सहीए ।।१६।।२५६।।

सउ योजन मारग दूर, भूचर जावा नवि सूर ।
खेचर पाखि कोइ नवि जाइए । सहीए ।।१७।।२५७।।

भूपति विस्मय पामीया, चिशाम लिक्षा दामीया ।
श्रेणिक चितातुर तव हूउए । सहीए ॥१८॥२५८॥

इवडां राइ कहि किम करूं, किम काया किम जीव धरूं ।
अति घणुं कष्ट हूं पामीउए । सहीए ॥१६॥२५६॥

जंबुकुमर द्वारा जाने का प्रस्ताव

चितातुर रा देखीउ, जंबुकुमारि पेखीउ ।
बोलीए सांभलि राय तुझ कहूंए । सहीए ॥२०॥२६०॥

मुझ आदेश देउ राय, खग साथि जाउ तिणि ठाय ।
काजए करसुं राइ तह्म तणउए । सहीए ॥२१॥२६१॥

कुमर वचन खग सांभली, विस्मि आम्यु ते बली ।
रतन चूल आगवि, आवीसुं करीए ॥२२॥२६२॥

वचन सुणी तव मन रली, मुझ लेई जाउ खग वली ।
वैरी जीपी मृगांक राज देउ ए । सहीए ॥२३॥२६३॥

तव भाणेज श्रेणिक देई, जय लक्ष्मी तवहू लेइ ।
आपणि नगर वेगि आवसुए । सहीए ॥२४॥२६४॥

श्रेणि पर्वत कुण भेदि, दुर्जय गिरि कुण छेदि ।
बलवंत साथि बालक कुण भडिए । सहीए ॥२५॥२६५॥

श्रेणिक राइ इम कहि काल जीव घणा ग्रहि ।
एक सव शब्द गजशा सि वगाए । सहीए ॥२६॥२६६॥

एक गरूड बहू अहिदलि, एक जीव संमति रलि ।
एक एक केवली लोक सहू देखिए । सहीए ॥२७॥२६७॥

एक अगनि वन सहू दहि, एक जीव दुख सहि ।
एक जीव मुगति रमिए । सहीए ॥२८॥२६८॥

एक समुद्र जाल बहू, संचि एक दीप गुण बहू ।
बंचि एहवी अद्भुत वाणी, खग सुणीए ॥२६॥२६९॥

संग्राम जांणी नर मीय, जंबू श्रेणिक प्रणमीय ।
विमान लेईश्वि संनि लेई चालीए । सहीए ॥३०॥२७०॥

जंबुकुमार का प्रस्थान

वस्तु—ताम श्रेणिक ताम श्रेणिक कही तिणी बार ।
भो भो क्षत्रय सज थई जरह जीणसनाह लेइ ।
यान वाहन सय सज करी चतुरंग सैन्य सुहय लेइ ।
विविध वाजित्र वाजतां, आव्या ते तेणि ठाम ।
रत्नचूल खग जीपवा, श्रेणिक चालि ताम ॥३१॥२७१॥

दूहा—केत लाग चंदनै चड्या, के तला अश्वारोह ।
सनाह लेई केतला, छांडीनि घरना मोह ॥३२॥२७२॥

सेना वर्णं ।

पायक आगलि चालीया, सेना सबे चतुरंग ।
समुद्र सरीखीए अछि, रणस्थानिक नहीं भंग ॥३३॥२७३॥

सैन्य सागर तिहां चालतां, जल स्थल एकज होइ ।
सम विसम पंथा सहू, ते सबे सरखा जोइ ॥३४॥२७४॥

ढोल ददांमा दरवड़ी, रण काहल रणतूर ।
पंच शबद वाजि घणां, जाणे सायर पूर ॥३५॥२७५॥

सैन्य सहु तिहां आवीउ, विंध्याचल उत्तंग ।
जीव घणा तिहां देखीया, विस्मय पाम्यु मन चंग ॥३६॥२७६॥

कपि केकी वाराहनि, हरण रीभ गोमाउ ।
हंस व्याघ्र गज सांवरा, मृग वृष महिष निकाय ॥३७॥२७७॥

भिल्ली भिल्लज देखीया, ते आयुध सहित अपार ।
सैन्य साथ देखी करी, नाठा ते तिणी वार ॥३८॥२७८॥

तिहां थी सैन्यज चालीउ, आव्यु कुर गिरि ठाम ।
जिन प्रासाद छि ऊपरि, ते देख्या अभिराम ॥३६॥२७६॥

जिन पूजी जिनवर नमी, मुनि प्रणमी वली पाय ।
पंथाश्रम विनास वा, विश्रामि तिहां राय ॥४०॥२८०॥

राग धन्यासी

के नर समायक करि, के जपि नवकार ।
के जंबुकुमार नी, बोलि क्षांति अपार ॥४१॥२८१॥

तिणि अवसर विमान थी ऊतरी, जंबू कुमर विद्याधर रे ।
केरला नगरी विन्धि आव्या, सैन्य देख्यु तेणेवा रूरे ॥१॥२८१॥

जंबूकुमर खग प्रति बोलि ए, सैन्य कहिनु अछि रे ।
रतन शिखिर विद्याधर वैरी, गढ़वीटीपडउ अछि रे ॥२॥२८२॥

मृगांक विद्याधर आपणउरे, स्वामी गढ माहि इणि राख्यु रे ।
वचन सुणी कुमार ज बोलि, क्षण एक विमान तेराखुरे ॥३॥२८३॥

गगन मारगथी ऊतरी रे, हेठउ सैन्य सागर माहि आव्यु रे ।
विद्याधरे जब तेहज दीठउ । दैत्य दानव मन भाव्यु रे ॥४॥ २८४ ।

द्वार आवी प्रतिहारज कहीउ रतन चूलनि किहि जोरे ।
मागांकि मोकल्यु दूतज आव्यु, इणि स्थानिक तम्हो घर जोरे ॥५॥२८५॥

नुति स्तुति कर्‌गा विना बिठउ, सिंह समान तव दीठु रे ।
दैत्य दानव मानव नही, एह दूत पणउ किम मीठउरे ॥६॥२८६॥

विस्मि प्राम्यु बोलि विद्याधर कुण कामि इहां आव्यु रे ।
सांभलि रतन चूलह तुम्ह कहु, न्याय मूंकी कोई चालाव्यु रे ॥७॥२८७॥

रूप सुंदरी स्त्री तम तणि विर, तेह तणु नही पार रे ।
एक मृगांक पुत्री तिणि कारणि, ए आग्रह नहीं सार रे ॥८॥२८८॥

मांन मुंकी मृगांकज, प्रणमी सुख भोग बुधिर जाइ रे ।
मांनि दुर्जोधंन नासज, प्राम्यु मांनि दुर्गति जाइ रे ॥६॥२८६॥

बापि कन्या श्रेणिक दीधी, ते तुम्हांन किम देइ रे ।
मोह छांडी आस्या परी, मुकी परस्त्री सुख कुण वेई रे ॥१०॥२६०॥

पर स्त्री कारण रावण राणि, नरक माहि दुख सहिरे ।
वचन सुणी रतन चूलज, कोप्यु इंसा वचन कांइ कहिरे ॥११॥२६१॥

कोप करी रतन शिखिरज, बोल्यउ तुम्ह स्वामी भूमि गोचरी रे ।
रावण विद्याधर रामि जीतु, तु सू कीजि खेचरी रे ॥१२॥२६२॥

भूमिचर सिंघ खेचर वाघ, सतु सुं कीजि खेचरी रे ।
सिंघ सियाल सरसा नवि होइ, तुसु भला भूमि गोचरी रे ॥१३॥२६३॥

क्रोध करी रतनचूल ज ऊठउ, लेउ लेउ दूतज एहजरे ।
सजथाई खेचर सबे, ऊच्या बल जाण्या बिना तेहरे ॥१४॥२६४॥

होठ डसी क्रोध करी, कुमर खडग धरी तब उठ्यउरे ।
आयुध सघलां कुमरनि, आवां गमनगति तब तूठउरे ॥१५॥२६५॥

दूहा राग आसाउरी

जंबुकुमार द्वारा युद्ध करना

जंबू कुमर तब ऊठीउ, खडग धरी तिणी वार ।
युध करि खेचर समुवलह न लाभि पार ॥१॥२६६॥

ते आगलि नवि को रहि, जुद्ध करवा नही जाण ।
कोटी भट्ट कहीइ सदा, कवण सहि ते बाण ॥२॥२६७॥

जबू कुमरि एकलि रिपा, संग्रामि सेन ।
क्षण एकि विद्याधर भंग पमाड्या तेण ॥३॥२६८॥

जंबू तिणि अवसरि विद्याधरा, माहोमाहि चवंति ।
ए बल नहीं मृगांक नु, ए बल दूत न हुंति ॥४॥२६९॥

दस्य दानव को देवता, ए बल तेहज होइ ।
इसु निस्यउ मनसुं धरी, जुद्ध करि सहु कोइ ।।५।।३००।।

तिणि अवसर मृगांकनि अई कहु वली कंप ।
श्रेणिक मोकल्यु को नर जुद्ध करि बली सेण ।।६।।३०१।।

एहवां वचन ज सांभली, देवडा बीरण भेर ।
सैन्य सबे लेई आवीउ, मन करी निश्चल मेर ।।७।।३०२।।

केतला समकित लेईनि, अणसण लेई केवि ।
रिण संग्रामि आविया जरहु जीण धरी खेव ।।८।।३०३।।

मोहो माहि अति घणउ, सुभट करि संग्राम ।
कंपि कायर हाथ थी, लोह पडि तिणि ठाम ।।९।।३०४।।

पति जुद्ध तिहां हुइ, कायरनि करि भीति ।
जे संग्रामि बाउला, तेहसुं करि सम प्रीति ।।१०।।३०५।।

आरति पामी केतला, पुणि कलिअ वली मोह ।
पंच थावर तिर्यंच गति, मरी करी उपजि छोह ।।११।।३०६।।

रौद्र ध्यानि मरी केतला, मरी करी नरकि जाय ।
धर्म ध्यानि मरी केतला, देव मनुष्य गति थाय ।।१२।।३०७।।

बाणे चक्रि मुद्गरि खडग तो मरनि पास ।
कुंत घेनुनि सांग सुं, उभय सैन्य हुइ नास ।।१३।।३०८।।

रत्नचूल कुमर सु, युद्ध करि अपार ।
मुद थकी तब देखीउ, मृगांकराय तिणी वार ।।१४।।३०९।।

कुमरि मुकी अंबरि, रत्न शिखिर आव्यु भूमि ।
नाग पद्मुए कुण अछि मृगांक पुछि एमि ।।१५।।३१०।।

गगनगति हम उच्चरि, सम विरोद आण ।
एसु जाणी युवह करि को नवि मूकि मांण ॥१६॥२११॥

छत्रीस आउध लेईनि तिहां करि संग्राम ।
अवसर लही नाग पास, मृगांक बाध्यु ताम ॥१७॥२१२॥

आठ सहश्र खग जी पीनि, कुमर आव्यु मुइ लग ।
जुद्ध करतां देखी करी, विस्मय पाम्यु खग ॥१८॥२१३॥

वस्तु बंध

तिणि अवसर तिणि अवसर विद्याधर सहु कोइ
विस्मय प्राम्या अति घणउ, माही माहि करिए बात ।
ए सामान्य नर नवि अछिए सीकरी तेहनो सवे स्यात ।
जुद्ध करता देखी करी विस्मय पाम्य खग ।
आठसहस खग जीपीनि, कुमर आव्यु भूइ लग ॥१९॥२१४॥

राग विराडी ढाल दमयंतिनी

संग्राम भूमिज देखीय पेरवीय रौद्र रूप इम चितवए ।
निरापराध ए खेचरा भूचरा मारयामि इम चितविए ॥१॥२१५॥

निरदय भाव ते मनधरी परहरी दयाभाव ते अति घणुए ।।
ए वडउं कर्ममि कांइ करूं, कस्य भोगव जीवतु आपणउं ए ॥२॥२१६॥

पूरवि जीव जे कारम करि ते करम इह लोकि जीव भोगविए ।
इसु चित्त कोमल जब कर्यउं, तब आगिल आवी खग इम चविए ।।३॥२१७॥

सांभलि कुंमर तुझ कहुं तुझ विण आठ सहश्र जग कुण हणिए ।
दूत वचन मृगांक सुणी संग्राम कीधु, गमन गति इम भणिए ॥४॥२१८॥

रतन सिखर प्रस्ताव लही, साहीय नाग पासि बांधीउ ए ।
इसां वचन जब सांभली कोपिय कुमरि बाणज सांधीउ ए ॥५॥२१९॥

महां उरग मणि कुण ग्रहि कुण काल मुख विसीनी सरिए ।
मद पूरयउ गज कुण धरि, कुण पुरुष सिंह साथो संग्राम करिए ॥६॥६२०॥

जिनधर्म पाखि सुख नही पापिय नरग माहि जीव दुख सहिए ।
मुझ छतां मृगांकज साहीय, ऐसन परमाहि कुण रहिए ॥७॥६२१॥

खडग धरी मुझ आगलि कुण रहि गगन गति मुझ तुम्हो कहउए ।
कुमर वचन खगपति सुणी, गुणीय राजा सेना इम ग्रहीए ॥८॥३२२॥

उभय सैन्य तव सज थई जरह जीण लेइय आय्धु अति भलाए ।
रण काहल रण वाजीयां गाजीयां ढोल नीसाण एकलाए ॥९॥३२३॥

रतनचूल रण आवीउ भावीउ जंबूकुमारनि अति रलीय ।
उभय सैन्य तिहां एक थई, धईय युद्ध करि सवे एकलाए ॥१०॥३२४॥

हस्ती-हस्तीसु भडि असवार असवार साथि अति घणउए ।
रथवंत रथवंत सुकरि, करिय संग्राम पार बिना घणउए ॥११॥३२५॥

रतनचूल पासी आवीउ आवीय कुमर कहि विद्याधरूए ।
मृगांक साही मुझ आगलि जीवतु किम रहे सतु खेचरूरे ॥१२॥३२६॥

आठ सहस्र खगमि मारी याहवि तुझ तणु वारू अवीउए ।
जु तुझ माहि बल अछि पछि कांउ विद्याधर ल्यावीउए ॥१३॥३२७॥

एणे रांके मारे कांइ अछि आपणविन्य जुध करूं यकलाए ।
एसा वचन जल सांभलि रण संग्राम करिय विन्यि ते अति भलोए ॥१४॥३२८॥

दूहा—रण काहल रण वाजीयां वागां ढोल नीसाण
बाणमां भेर तिहां अति घणां कोलवि लाभि माण ॥१५॥३२९॥

ढाल मोह पराजसनी-राग सामेरी

तिहां कोध करीनि ऊठीया, मुकि बाण अपार ।
तिहां मेघ तणी धारा परि वरसि तिणिवार ॥१॥३३०॥

तिहां संघ तणी परिगाजतां, मेल्हइ नही ठाम ।
तिहां छत्रीस आयधु लेईनि, राइ करि संग्राम ॥२॥३३१॥

तिहां सबल वैरी तव जाणिनी, समरि देव बाण ।
तिहां नाग बाण राइ मूकीउ, कुमर हूउ जाण ॥३॥३३२॥

तिहां गुरुड़ बांण कुमरी धरी, मेल्ह तिणि ताम ।
तिहां अगनि बांण वैरीधरि, मउ वयुं उ सैन्य कुमार ॥४॥३३३॥

तिहां अगनि सघलि हुई, हूउ हाहाकार ।
तव जरह जीण बलि घणां, बलि रथण अपार ॥५॥३३४॥

तेह समाववा मूकीउ, कुमरि मेघ बांण ।
तिहां गाज बीज करी, आवीउ आव्यु घन प्राण ॥६॥३३५॥

तव वाय बाण राइ प्रेरीउं, कुमर प्रति हेव ।
तिहां पवनि मेघनि वारीउ, हरख्यउ सहू सेव ॥७॥३३६॥

तव कटक सहु नासी गउं, नाग सवे भूप ।
तिहां हा हा कार हूउ घणु, हूउ बली कोप ॥८॥३३७॥

आकासि नारद रही, नीरख्यु तिणी बार ।
देव सवे तिहां नाचीया, बोल्या जय जय कार ॥९॥३३८॥

युद्ध में जम्बु कुमार की विजय

दूहा—नाग पास मूकी करी, साहउ रतनचूल ।
सैन्य सवे भंग पामीउ, जिम नासि मृगतूल ॥१०॥१३९॥

जय जय शबद तिहां हउ, मूकाव्यू मृगांक ।
हरष हूउ हीयडि घणउ, को नथि साभि वंक ॥११॥३४०॥

नगर प्रवेश

राइ नगर सणगारउ, नगर कीउ प्रवेस ।
नगर स्त्री जोइ घणु, करती नव नवा वेस ॥१२॥३४१॥

काम रूप देखी भलु विस्मय पामी नार ।
धन जननी धन ए पिता, जे घिर एह कुमार ।।१३।।३४१।।

जस महिमा निज आपणउ, सांभल तु गुणग्राम ।
मृगांक सभा माहि आवीउ, बिठउ ते निज ठाम ।।१४।।३४३।।

कुमर कहि रत्नचूलनि, सांभल तुं महाराय ।
तुं राजा मोटु अछि, सेवि तुझ खगराय ।।१५।।३४४।।

मीठे वचन संतोषिनि, कुमरि मुकयउ तेह ।
नगर पधारु आपणि, काज करू निज गेह ।।१६।।३४५।।

एसा वचन जब सांभली, रत्न चूल कहि बात ।
श्रेणिक राजा नोयचा, आवुं तम संधात ।।१७।।३४६।।

केतला दिन तिहां रही, विमान रची तिणि वार ।
पंचसि रच्यां भलां, दीसंता मनोहारा ।।१८।।३४७।।

रतनचूल तब चालीउ, मृगांक कुमर वली साथ ।
गगनगति वली स्यइउं, कन्या छिनली साथ ।।१६।।३४८।।

कुराल गिरि सहू आवीया, श्रेणिक छि जहां राय ।
हरष धरी हीयड्डि घणु, प्रणमि श्रेणिक पाय ।।२०।।३४६।।

ढाल भवदेवनी राग धन्यासी

आकास विमान मुकी करी, हेम आव्यु सहू ताम ।
जम्बू कुमर राय तिहां निल्यारे, मिलि सहू लेई नाम ।।१।।३५०।।

कुरल गिरि सहू आवीया, भेटउ श्रेणिक राय ।
हरष धरी मन आपणि रे, प्रणाछि श्रेणिक पाय ।।२।।३५१।।

कुसल कल्याण सहू पूछीउरे, पूछि संग्राम नी वात ।
पूर्व वृत्तांत कुमरि कह्यु रे, तिहूनी बोलि सविख्यात ।।३।।३५२।।

कुमरि लग चलावीयारे, रतनचूलि घरी माहि ।
श्रेणिक राय प्रसंसीयारे, तिहुं प्रति बोली साद ।।कुरल।।४।।३५३।।

मृगांक सुता तिहां परणी उरे, श्रेणिक राय सुजाण ।
सहूइ लग चलावीयारे निज निज मंदिर प्राण ।।कुरल।।५।।३५४।

तिहां थी श्रेणिक चालीउरे, आव्यु विध्याचल ताम ।
विलासवतीनि देखाल तुरे, विविध कुगति लिणि ठाम ।।
निध्या चल सहू आवीया ।।६।।३५५।।

विंध्याचल वर्णन

हरण रोझ गज सांवरा रे, मृग मयूरनि सेह ।
कपि महुषि सिंव अति भला, देखालतु स्त्रीयनि तेह ।।कुरल।।७।।३५६।।

तिहां थी श्रेणिक चालीउरे, साथि जम्बूकुमार ।
सैन्य सवे साथि अछिरे, देख्यु सौधर्म्माचार्य ।।कुराल।।८।।३५७।।

नगर उद्यान सहू आवीयारे, भेटउ सौधर्म्मा स्वाम ।
हरष हूउ हैयडि घणउरे, प्रणमि मुनिवर पाय ।।९।।३५८।।

तप जप ध्यानि आगलु रे, पंचसि शिष्य समेत ।
ज्ञानवंत मुनिवर अछिरे, तत्व लणउ जाणि हेतु ।।१०।।नगर।।३५९।।

सौधर्म्म मुनिवर वांदीयारे, बिहु श्रेणिक राय ।
धर्म वृधि मुनिवर कही रे, प्रणमि जंबू पाय ।।११।।नगर।।३६०।।

वस्तु—तिणि अवसर तिणि अवसर जम्बूकुमार ।
प्रणमी मुनिवर चरण युग, बिठउ ते वली अग्रवि भाग ।
कुमरि मुनिवर पूछीया, स्वकीय भव लही लाग ।
सांभलि सहू तुम्ह हुं कहुं, स्नेह तणी वली बात ।
एक चित्त मनवरबी, पूरव भव सहू क्षति ।।१।।३६१।।

पूर्व भव वर्णन

चुपई—मगध देश देशां माहि सार, वर्द्धमान पुर उत्तम ठाम ।
भवदत्त भवदेव बाडव कहीं, समकित पामी दिक्षा लही ।।१।।३६२।।

तप जप संयम पामी कला, तृतीय स्वरग हुया भला ।
स्वर्गा तर्णां सुख भोगवी सार, मध्य लोक हूउ अवतार ।।२।।३६३।।

भवदत्त चर जेह तु सुरेन्द्र, वज्रदंत विर सागर चंद्र ।
भवदत्त चर जे स्वरग मभार, मह्या पद्म विर शिव कुमार ।।३।।३६४।।

वैराग्य बस धरी दिक्षा तेह, स्वरग छठि अवतरीया बेह ।
इंद्र अर्हमिंद्र हुया तिहां रही, देव देवी सुख भोगवि सही ।।४।।३६५।।

सांभलि वछ अम्हारी वात, मगध देश संवाहन ख्यात ।
सुप्रतिष्ठ राजाछि भलु, दान शील संयम गुण निलउ ।।५।।३६६।।

तस घिर राणी रूीज सती, रूपलक्षण नामि गुणवती ।
सागरचन्द्र चर जे सार, तस कूखि हूउ अवतार ।।६।।३६७।।

नव मास पूरे हूउ सुत, सौधर्म्म नामि दीउ तव पुत्र ।
दिन दिन वृद्धि थिर रहउ, अनुक्रमि विद्या सवे लह्य‍ु ।।७।।३६८।।

एक दिवस विपुला वीर, आव्या जाण्या राइ धीर ।
जिन वांदी जिन पूजी पाय, बिठउ नरपति तिणे ठाय ।।८।।३६९।।

धरम वली पामी वैराग, दीक्षा लेई कीधु माग ।
तप जोगि गणधर पदलही, देखउ मुनिवर संयमु मही ।।९।।३७०।।

हूं वैरागि वासउसार, लीधी डिक्षा मि भवतार ।
पंचम गणधर हुउ वली, विहार करम करि मन रली ।।१०।।३७१।।

आव्या एणा नगरोद्यान, ध्यान रहूं मूकी वली मान ।।
मुझ देखी तुझ उपनु नेह, पूरव भव संस्कारज एह ।।११।।३७२।।

सांभलि वछ तुमारी वात, भवदेव ब्राह्मण विख्यात ।
लही वैराग दीक्षा धरी जेह, तृतीय स्वरग हूउ वली तेह ।।१२।।३७३।।

स्वरग तणां सारां सुख लही, शिव कुमार हूउ ते सही ।
तप जप ध्यान सूधउ तिणि धरी, अंत काल जिणि दीक्षा करी ॥१३॥३७४॥

अणशण पालो स्वरग मभार, विद्युन्माली हूउ भरतार ।
च्यार देवी सुं लही संयोग, तिहुंसर सुवली सही भोग ॥१४॥३७५॥

दस सागर ते जीवी आय, अंग अनोपम रूडी काम ।
तिहां थकी चवी सुरसार, अर्हदास घिर जंबूकुमार ॥१५॥३७६॥

स्वरग देवी च्यारि जे हुती, तिहां थकी चवी ते सती ।
जू जूउज नमहूउ तेह तणु, समुद्रदत्त आदि ते सुणु ॥१६॥३७७॥

नव यौवन पूरी ते नारि, आज थकी दिन दशमी सार ।
विहुलि परणी लही संयोग, तिहुं सरसउ तुं लहे सवियोग ॥१७॥३७८॥

जे पूछी ते तुझ कही बात, पूरव भव तणीय क्षात ।
वचन सुणी पाम्यु वैराग्य, घिर जावा नहीं मन लाग ॥१८॥३७९॥

जंबुकुमार का दीक्षा के लिये निवेदन

दिक्षा मागी मुनिवर पास, संसार तणी छोडी आस ।
वचन सुणी मुनिवर कही बात, घिर जाई तम्हे पूछउ तात ॥१९॥३८०॥

माय बाप हुंया बहुवार, स्वजन बंधव एणि संसार ।
तु माता तु तातज कही, भव संसार उतारू सही ॥२०॥३८१॥

अथम संसार भमंतां अम्हो, पडतां राखु स्वामी तम्हो ।
हवडां काढम कस संभाल, हु छु स्वामी तम्हारू बाल ॥२१॥३८२॥

माता पिता से आज्ञा मांगना

गुरु वचने घिर अई कुमार, माय तात मिल्यु तिणि वार ।
कुल करि माता तिहां रही, पुत्र प्रसंसि माता सही ॥२२॥३८३॥

सुणउ माता अम्हारी बात, अहमे दिक्षा लेसु सुणु तात ।
वचन सुणी मूर्छा गलि हुई, नांखी वाय ते बिठी थई ॥२३॥३८४॥

रुदन करि दुख आणि घणउ, पुत्र प्रसंसि माता सुणउ ।
बार बार स्वर्गि सुख भोग, भोग लही लहि वियोग ॥२४॥३८५॥

तुहि नृपति न पाम्यु सार, दुख सह्या एणि संसार ।
हिवडां दिक्षा लेउं वन रही, पंच महाव्रत पालु सही ॥२५॥३८६॥

पूरव भव मातानि कह्या, पुत्र थकी माताइ लह्या ।
सुणु हो पुत्र सुखी हुउ जेम, हसु आदेश दीउ वली तेम ॥२६॥३८७॥

दूहा—तिणि अवसर तिणे श्रेष्ठी ए, मोकल्या पुरुष ज बेह ।
कन्या घिर जाई कहु, कुमर लेइ तप हेव ॥१॥३८८॥

तिणे जाई तिहुं नि कहुं, पूरव मह वृतांत ।
वज्रपात तिहुं नि हुउ, वात सुणी वली कंत ॥२॥३८९॥

अन्य भव माहि चितवि, अन्य हुइ तिणि वार ।
शुभ अशुभ जीव भोगवि, कर्म तणि अनुसार ॥३॥३९०॥

दूत वचन जव सांभली, बोली कन्या सार ।
ताहरी मागी कन्या का, कुण परणिए नारि ॥४॥३९१॥

जाति शुध जे स्त्री हुइ, ते नवि वांछि अन्य ।
एक बाप एकह गुरु, एक एक कुल धन्य ॥५॥३९२॥

एणि जन्म एह बर अन्यह तात समान ।
ए मुनिस्यउ मन सुं करी, मूकि नहीं ते मान ॥६॥३९३॥

एक रात्रि एक दिवस परणी नि वली एह ।
अम समीपि जु रहितु नवि छांडि गेह ॥७॥३९४॥

वचन सुणी कन्या तणां, कन्यानो वलि तात ।
अर्हद्दास घिर आवीया, कुमर प्रति कहि वात ॥८॥३९५॥

एक दिवस परणी करी, घिर रहु एक दिन ।
पछि दिक्षा लेय जो, जु तम्ह हुइ मन ।।९।३९६।।

वचन सुणी सुसरा तणां, बोलि जंबूकुमार ।
लाज आणि मन आपणि, हाय भणी तिणी वार ।।१०।।३९७।।

ढाल वीवाउलानी
जंबू कुमार का विवाह

अर्हदास आदि वहइ घिरे, उछव हुइ अपार रे ।
मंडप घाल्या अति रूयडा, सोहि घिर घिर सार रे ।।१।।३९८।।

चन्द्रोधा तिहां बांधीया, सावीय पट्टकूल पट्टरे ।
तोरण की रची अति भली, रयण मि ऊब स्वां थहरे ।।२।।३९९।।

कुसम माला तिहां लहि लहि, मह मह परिमल पूर वे ।
भमर भमि तिहां अति घणा, परिमल लीणाबे सूर रे ।।३।।४००।।

वाजित्र वाजि ते अति घणा, ढोल ददामां नीसाण रे ।
तिबलीय तूर सोहामणा, जाजिय वाजिय आण रे ।।४।।४०१।।

गीत गाइ वर कामिनि, भामिनी करि रंग रोलरे ।
नृत्य करि वर कामिनि, भामीय भामणां रंग रे ।।५।।४०२।।

धन धन जननीय एह तणी, धन धन एह नु तात रे ।
धन धन जिणि कुल ऊपनु. धन धन एह नी जात रे ।।६।।४०३।।

बंदी जन बिरदावली, बोलिय कुमरनी सार रे ।
लगन तणु दिन आवीउ. भावीउ ते तिणी वार दे ।।७।।४०४।।

चपल चंचल अश्व चडीय, चालीउ जंबू कुमार रे ।
तिणी चडी अति सोभीउ, जाणउ इंद्र अवतार रे ।।८।।४०५।।

सासूइ कीधां पूषणा, पूरवीउ वर तिणे ठाम रे ।
माहिरामाहि आणीउ, आचार करीय ते ताम रे ।।९।।४०६।।

हस्त मेलापक तिहां हूउ, हूउ छि जय जय कार रे ।
च्यारि कन्या तिहां परणीउ, जिनदास तणु कुमार रे ॥१०॥४०७॥

दूहा—च्यार कन्या तिहां परणीउ, विहुं श्रेष्ठीनी ताम ।
हरष धरी हीयडि घणउ, बोलि ते गुण ग्राम ॥११॥४०८॥

ढाल बीजी सोवाउलानी

च्यार कन्या तिणी वार, परणीइ जंबूकुमार ।
सुसरि आपी परिद्धि, पामीउ अति घणी सिधि ॥१॥४०९॥

आपीमां माणक मोती, कनक प्रवाला संजोती ।
रयणामि हार दीनार, आपीमां सोवन सार ॥२॥४१०॥

बाजूबंध बिरखी आप्या, रयण संघासन थाप्या ।
सासुए वर वधाव्यु इणी परि, बहू द्रव्य लाव्यु ॥३॥४११॥

सुसरि आप्यु भंडार, आप्यु सार शृंगार ।
अति घण संतोषीए, बोलिय गुण ग्राम तेह ॥४॥४१२॥

जमण जमि मनोहार खाजां लाडूय सार ।
विविध प्रकार पकवान, जमणजमि वणि मान ॥५॥४१३॥

बहूवर दीधी आसीस, जीव जे कोडि बरीस ।
उछव उहित अपार, वाजिभ वाजता सार ॥६॥४१४॥

दिवसहु पश्चिम भाग, चालीउ जाणीय भाग ।
च्यार कन्या तव लेई, आव्यु मंदिर सोइ ॥७॥४१५॥

मंदिर मंचक ताम, बिठउ ते तिणि ठाम ।
धरी मन हरष आनंद, बांध्यु परमनु कंद ॥८॥४१६॥

दूहा—तिणि अवर अस्ताचल, अस्तज पाम्यु सूर ।
अंधकारि सहू व्यापीउ, कोइ नवि दीसि भूर ॥१॥४१७॥

पदमनी खडनि चक्रमा, विरह करंतु तेह ।
कामी जननि कामिनी, तेह सुं करतु नेह ।।२।।४१८।।

घिर घिर दीपक प्रगटीया, नभ उग्यंउ तव चद ।
अंधकार सहू नासतु, करतु उद्योत आणंद ।।३।।४१६।।

स्वजन आदेसि कन्यका, आवी तेह पल्यंक ।
जंबूकुमार पासि रही, पामी तेह तु अंक ।।४।।४२०।।

प्रथम मिलन

कामांकुल ते कामिनि, करि ते विविध विकार ।
अंग देखाडि आपणां, वली वली जंबूकुमार ।।५।।४२१।।

गीत गांन गाहे करी, कुमरउ पाहृ राग ।
अधिक वैरागि वासीउ, ते किम पामी राग ।।६।।४२२।।

तिणि अवसर ते चितविए, संसार असार ।
सार वस्तु कांइ नहीं, कामिनी काय मझार ।।७।।४२३।।

दुर्गति दाता कामिनी, वाघिण सापिण एह ।
नव द्वारे अशु श्रवितो, ते तस्सु सउ नेह ।।८।।४२४।।

जे स्त्री आठइ लाघी घीया, ते नर छूटि केम ।
जउ माया छौडि सही, तु नर छूटि एम ।।९।।४२५।।

ढाल हिंडोलानी—राग मारुणी
परस्पर वार्तालाप

पदमस्त्री सखीयां कहि सांभलि मोरी बात ।
बविर आगि लगांन, जिसु जीविडलारे अंध आगिज जे सु नृत्यु ।।१।।४२६।।

तु दम जाणि तप करी, स्वरगज थाउ देवि ।
तिहां अह्यो देवांगना, जीवड लारे इ सुय कहि ते देवि ।।२।।४२७।।

निस्पल फल मूकी करि जे फल वांछि अन्य ।
ते मूरख कोइ नवि लहि, जीवडलारे चितवि आंपणि मन ।।३।।४२८।।

एह ऊपरि कथा कहुं सांभलि तुं कंत सार ।
धनदत्त एकहालिक, जीवड लारे परणीउ एकज नारि ।।४।।४२९।।

ते नारी एक सुत हूउ मरणज पामी नारि ।
वृद्ध पणि बीजी वरी, जीवडलारे कामा कुल तेणी वार ।।५।।४३०।।

एक दिवस सूतो बिन्यि पल्यंक, रात्रि मभार ।
परांग मुखी नारी हुइ जीवडलारे सांभलि तु भरतार ।।६।।४३१।।

प्रथम पुत्र जे तुझ अछि, ते हनि तुह जमार ।
तु आपण सुख भोगवइ, जीवडलारे एम बोलि ते नारि ।।७।।४३२।।

सबल पुत्र तुझ तणु, मुझ पुत्र करि सेव ।
लु आपणा यु किम मिलि, जविडलारे इणि मारि सुख हुइ हेव ।।८।।४३३।।

कठिन वचन जव सांभली, बोलि धनदत्त बात ।
वंस राखि मह उद्धरि, जीवडलारे ते किम मारीय सुत ।।९।।४३४।।

राज डंड वली ऊपजि, पाप हुइ अपार ।
ए कर्म कीम कीजीइ, जीवडलारे सांभलि नारि विचार ।।१०।।४३५।।

हल आगिल तेहनि धरी, हलनि चउडि नेह ।
इणिमां तंतर मार जे, जीवडलारे काई नहीं हुइ तुझ गेह ।।११।।४३६।।

समीप थकी पुत्रि सुणी सघली तिहुंनी बात ।
शाल क्षेत्र ऊखेडीनि, जीवडलारे बाप सुणी सघली तात ।।१२।।४३७।।

इसे दृष्टांते बूझव्यु बूझ्यु ते वली बाप ।
निःफल फल मूकी करी, जीवडलारे कुण वंछि संताप ।।१३।।४३८।।

स्वाधीन सुख मूकी करी, स्वरग वांछि जे सार ।
ते हालि कसम जाणीइ, जीवडलारे तिम जाणउ एह कुमार ।।१४।।४३९।।

वचन सुणी नारी तणां, बोलि जंबू कुमार ।
एह समु मुझ काई करू, जीवडलारे सुणु एक कथांतर सार ।।१५।।४४०।।

विंध्याचल मोटु गज मरणज प्राम्यु एक ।
नदीय नीरि तांण्यउ वली, जीवडलारे कालि छिपाउ सेक ।।१६।।४४१।।

ते ऊपरि एक वायस बिठउ, आमिख लोभ ।
समुद्र माहि जाई पड्यु जीवडलारे पामी अति घणउ लोभ ।।१७।।४४२।।

करां करां करि घणु जीवानि नही लाग ।
गज वायस बिन्यि पड्या जीवडलारे समुद्र मध्यि विभाग ।।१८।।४४३।।

मांस लोलप वायस मूड पडीउ समुद्र अपार ।
तेह सरीखु हु नही, जीवडलारे नहि पड्यु एणि संसार ।।१९।।४४४।।

कनकश्री बोली वली सांभलि कत मुझ बात ।
कैलासगिर थी वानरि, जीवडलारे कीउ वली झंपापात ।।२०।।४४५।।

शुभ ध्यानि ते वली मउ, विद्याधर हुउ चंग ।
एकदा मुनिवर वांदीया जीवडलारे लिणि भव कहु मन रंग ।।२१।।४४६।।

एकदा स्त्री सहित सु, आव्यु तेणि ठाम ।
पूरव कथांतर स्त्री कही, जीवडलारे मरण कर्स एणि ठाम ।।२२।।४४७।।

वचन सुणी भरता तणां, रुदन करि वली नारि ।
स्त्रीय निखेधउ ते पडउ, जीवडलारे कपि हुउ प्रोढि अपार ।।२३।।४४८।।

स्वीकीय सुख मुकी करी, वांछि देवज सुख ।
ते नर गजनी परि जीवडलारे पामि अति घणु दुख ।।२४।।४४९।।

ते नर सरखु हु नहीं, सांभलि नारि विचारि ।
विंध्याचल पर्वत भलु, जीवडलारे वांनर एक उदार ।।२५।।४५०।।

कामातुर पीड्यु सही जे, जणि वानरी पुत्र ।
तेहनि मारि ते वली, जीवडलारे अजाणति रह्यु एक सुत ।।२६।।४५१।।

ते कपि यौवन पामीउ, जननी सुकरि संग ।
वृद्ध वानर तिणे देखीउ, जीवडलारे जुध करतां पाम्यु भंग ।।२७।।४५२।।

ते पूठि वानर थउ, नाग वानर वृंद ।
गहन वन माहि जाई रह्यु, जीवडलारे नासकू तेह अर्बध ।।२८।।४५३।।

क्षुधा तृषा पीड्यु वली सरोवर आव्यु तेह ।
पंक माहि रकलु वली, जीवडलारे पामीउ मरणज तेह ।।२६।।४५४।।

विषयातुर जे नर हुइ, कपि मरि पामि मृत्यु ।
विषय कर्दम माहि पड्यउ, जीवडलारे हुं नहीं कएसी कात ।।३०।।४५५।।

विनयश्री बोलिइसु सांभलि तुं मुभ कंत ।
संखनाम दारिद्री एक, जीवडलारे दरिद्र करि रे एकांत ।।३१।।४५६।।

उदर भांटउ देई घणउ, दिन दिन दमकउ एक ।
एकठउ करी मुइ खेपवि जीवडलारे नवि खाइ कांइ ते रंक ।।३२।।४५७।।

तिणि वन की एक नर रूप टंका भूइ मध्य ।
घातीनि यात्रा गउ, जीवडलारे दरिद्री लही पाम्यु सिधि ।।३३।।४५८।।

लोभ थकी दरिद्री तिहां पुनपि लेग्यु ताम ।
यात्रा करी पूरव नर, जीवडलारे काढि लेउ गउ ताम ।।३४।।४५६।।

स्त्रीनु वचन लेई करी, खणवा लागउ दाम ।
पुनरपि कुंभ सोनी भर्यु, जीवडलारे पामीउ तेणि ठाम ।।३५।।४६०।।

लोभ थकी तिहां सांतीउ, पाम्यु हरखज तेह ।
धन संचित पूरव धन, जीवडलारे वली भोगवुं एह ।।३६।।४६१।।

कष्ट करी दिवस प्रति दम कु मूकि एक ।
धूरत एक देखीउ जीवडलारे गलथी लेइ गउ छेक ।।३७।।४६२।।

एक दिन तिणि जोइउं गलु देखु सर्व ।
दुख करिते प्रतिपणु जीवडलारे पूरव गयु मुझ द्रव्य ।।३८।।४६३ ।

द्रव्य लह्यु विलसि नहीं, लह्यु नवि भोगवि सुख ।
लोभ थकी संखनीं परि, जीवडलारे ते नर प्रामि दुख ।।३९।।४६४।।

वस्तु—तेण अवसर तेण अवसर जंबू कुमार ।
सुणीय वचन बली बोलीउ सामानि नारी मुझ बात ।
ते सुरसुहं नवि मछु करू नहीं संसारपात ।
ए कथांतरि तुम्ह कहुं सांभलि नुं वलि नार ।
सार सौक्ष जिम भोगवुं संसृत पासु सार ।।१।।४६५।।

राग रागिरी

सांभलि नारि एक कथा रे, लुब्ध दत्त एक सार ।
एक दिवस व्यापार गउ रे, चाल्यु प्राप्यु वन माहि रे ।
भवीयण धर्म्म करू एक सार, धरमि सिव सुख पामीइरे ।
धरमि अरय मंडार रे, प्राणी धर्म्म करूं एक सार ।।१।।४६६।।

वणिक पूठि एक गज धउरे, यम रूपी तेह जाण ।
वणिक नासी ते आवीउरे, कूप कांठि ते सुजाण ।।२।।४६७।।

कूप तढि एक वट वृक्ष रे, मउवाई माई तेह ।
मूषक कालु ऊजलु रे, वडवाई कापि बेहरे ।।३।।४६८।।

चितातुर श्रेष्ठी हुइ रे हुं य करू हवि केम ।
कष्ट पड्यु दुःख भोगवुरे मरण पाम्यु बली ए परे ।।४।।४६९।।

हेडउ तिण जव जोईउरे, आजगिरि देख्यु ताम ।
चिहुं पासे सर्प देखीयारे, कसाय रूपी एह नाम रे ।।५।।४७०।।

इसीय चिंता माहि पड्यउरे, गज आव्यु तिणि ठाम ।
आवीय वट हलावीउरे, मधउ पड्यु मुखह ताम रे ॥६॥४७१॥

मक्षिका ऊडी अति घणी रे, आवी लागी तास देह ।
दुख देई ते अति घणा रे, दुख मांहि दुख तेहरे ॥७॥४७२॥

तिणि अवसर एक खगपतीरे, आव्यु तेणि ठाम ।
कष्ट पड्यु नर देखीउ रे, बोलि विद्याधर ताम रे ॥८॥४७३॥

सांभलि नर इहां थकी रे, काढु तुम्हनि हेव ।
परवस दुख कांई भोगवी रे, इमुय कहि तेणि खेवरे ॥भवी॥९॥४७४॥

मधु बिंद लोभि लोलिउरे, वांछि बीजी वार ।
तां लगि रहु तम्हे खगपति रे, इसुंय कहि निरधार रे ॥१०॥४७५॥

वचन सुणी खग बोलीउरे, सांभलि मूढ गमार ।
मधु बिंदु सुखकरी लेखविरे, दुख न देखि अपार रे ॥११॥४७६॥

बिंदु बीजु मुख नवि पडि रे, तुरगा तुर चली तेह ।
दुख घणा पामीउ रे, खग गउ आपणि गेह ॥१२॥४७७॥

वडवाई कापी मुख किरे पडीउ कूप मझार ।
पडतु गिरि ते गल्यु रे, दुख सह्यां अपार रे ॥१३॥४७८॥

लवलेस सुख कारणि रे, दुख न जाणि गमार ।
एणि संसार नहू पडउं रे, नारि सुणु विचार रे ॥१४॥४७९॥

रूपश्री एसु बोलीउ रे सांभलि कंत मुझ वात ।
एक कथा कहुं रूयडी रे, सर्प तणी विख्यात रे ॥१५॥४८०॥

एक दिवस मेघ आवीउरे गाज वीज करी भार ।
सात दिवस वृष्टि करी रे, थोडी हुई पछि धार रे ॥१६॥४८१॥

क्षुधा पीड्यु एक नीसरयु रे कोट बाहिर चकलास ।
भमतां देखीउ रे महा भुयंगम बासरे भवीयण धर्म करु एक सार ॥१७॥४८२॥

चल चपल जिह्वा अछि रे, मेल्हतु विष तणी भाल ।
कुंडल वाली जव रह्यु उ रे, जाणउ एहज काल रे ॥१८॥४८३॥

देखी काकिडउ चितविरे, ए आमिल जीव केम ।
इसुय चिंती ते चालीउरे, नकुल तिणि छिद्र एमरे ॥१९॥४८४॥

पूठि थकी अहि चालीउरे, ते गउ छिद्रज माहि ।
चकलास पाम्यु मूंकीउरे, नकुल तणि गव मेहरे ॥२०॥४८५॥

नकुलि अहि तव मारीउ रे, भक्ष करयु तणि ठाम ।
चकलास पाम्यु मूंकीउरे, सर्प पाम्यु दुःख ताम रे ॥२१॥४८६॥

स्वाधीन सुख नवि भोगवि रे, ते नर पामि दुःख ।
सर्प तणो पिरि अतिघणा रे, काइ नव पामि सुख रे ॥२२॥४८७॥

ते सरषु स्त्री हुं नहो रे, बोलि जंबु कुमार ।
शीयाल कथा कहुं रुयडी रे, सांभलु तम्हो सहू नार रे ॥२३॥४८८॥

दूहा—जंबुक एक रात्रि वली आव्यु नगर मभार ।
बलद बद्द एक देखीउ, मरण पाम्यु एक बार ॥१॥४८९॥

मंस लोलप सीयालीउ, बलद पंजर मध्य भाग ।
मांस खाई तिहां रह्यु, नवि लह्यु रात्रि विभाग ॥२॥४९०॥

दिनकर ऊग्यु जाणीउ, जावानि नहीं लाग ।
पंच सात जोवा मिल्या, न लहि जावा माग ॥३॥४९१॥

हृदय मांहि इम चितवि, सुहज मुझ तणु आयु ।
रजनी मामुं जु किमि तु रासु, वली काय ॥४॥४९२॥

एक पुरुष तिहां आवीउ, लीधां करणनि पूछ ।
दत पाखि बीजि लीया, वसीकरण तिणि अछि ।।५।।४९३।।

जीवत आश्या परहरी, मारयु ते शीयाल ।
स्वान वायस भक्षण कर्यु, तव पाम्यु वली काल ।।६।।४९४।।

विषयासक्त जे नर हुइ ते सहि दुख अपार ।
नरक तिर्यंच माहि रलि, कहां नवि लहि सुख सार ।।७।।४९५।।

ढाल थूल भद्रनी—राग वैशाख

एक अवसरि रे विद्युच्चर आव्यु वली, काम लता रे घिर थी रात्रि मनरली ।
पुर भमतुरे आव्यु जबू घरि भणी, जिहां सुतुरे नारी सुकुमार सुणी ।।१।।४९६।।

धन देखी रे मनमाहि चिंत रही, धन लेवु रे एह तणु चिति सही ।
तिहां सांभली रे कथा तिहुनी अति घणी, विस्मइ आव्यु रे चोर मनसुते सुणी ।२।४९७।

तिणि अवसर रे माय आवी कुमर तणी, संवेग वासु रे तप लेई जाइ वन भणी ।
इसु जाई रे माता तिहां रही, देखउ प्रभवु रे मातइ तिहां सही ।३।४९८।

पूछिउ कुण रे चोर कंउ माता हू वली, आव्यु चोरी रे करवा प्रभवु कही रली ।
धन लेउ रे नगर तणा उमि अति घणउ, तुझ मिंदर रे धन लेवा आव्यु सुणु ।४।४९९।।

बोलि जिनमती रे जे जोइ लेउ तम्हो, विप्र चित रे कांइ अछु माता तम्हो ।
मुझ पुत्र रे एक छि भाई तम्हो, सुणु दिक्षा ले वारे ऊपरि भावछि अति घणु ।५।५००

इणि कारण रे विप्र चित्त घणी अछउं, तिणि कारण रे वार वार रे जोउं अछुं ।
बोलि प्रभवु रे विद्या मुझ कनि घणी, मोहस्तंभन रे मेलापक अंजन तणी ।६।५०१।

दिधि दर्शन रे सुप्त प्रबोधन अंजन, केम रूठा रे केम मनावीइं भंजन ।
मुझ विद्या रे जु मोह पाडउ एवली माय, आवीरे तुझ कहि इसु सांभली ।७।५०२।

पुत्र पूछि रे कुण कारण आव्या इहां, तुझ मांमुरे दिवस घणे आव्युउ इहां ।
लीधउ प्रभवि रे वेस वणिकनु अति भलु, आव्यु मंदिर रे माहि बिठउ एकलु ।८।५०३।

कुण ठाम थी रे आव्या मामा तम्हे कहु, बोलि अभयु रे सांभलि श्रोणेजहूं कहु ।
बन्नव अमीउ रे व्यापार कारणि हुं वलो, तुम्ह मागिलइरे कहु सांभलु मन रली ।६।५०४

वस्तु

विभिन्न देशों के नाम

भम रलीय भमीउ उत्तर दक्षण पूरब पश्चिम ए दशि ए ।
करणाट सिंघल द्वीप केरल देश चौपक ए दिशि ।
कुंतल देस विदर्भ जन पद सह्य पर्वत भ्रामीउ ।
नर्बदा मारि विंध्य पर्वत तिहां आव्यु भामीउ ।।१।।५०५।।

भरुयच पाटण आहीर कुंकण देश कच्छि आवीउ ।
सौराष्ट्र देसि किष्कंध नगरी, गिरनारि पर्वत भावीउ ।।२।।५०६।।

नेम निर्वाण जिहां पाम्या राजीमतीइ तप ग्रही ।
तिहां आवी जिणवर पाय प्रणमी, मानव भव सफल ग्रही ।।३।।५०७।।

अर्वदाचल मेवाड देस लाड मरहठ पामीउ ।
चित्रकोट गुजराति देस मालव देशि कामीउ ।।४।।५०८।।

कासमीर करहाट देस विराट हुं भम्यु अति घणाउ ।
परिभ्रमण कीधां द्रव्य कारणि, पार न पाम्यु तेह तणु ।।५।।५०९।।

चालि

बोलि प्रभयु रे सांभलि जंबू तुझ कहुं इणि संसार रे सुख दुर्लभ जीव सहू ।
सुख आमी रे भोगवि जे पुरख नहीं, ते आमी रे दुःख सहि इहां रही ।।१।।५१०।।

तप लेई रे परलोकि सुख लहि ते मूरख रे कांइ न जाणिइ सुं कहि ।
जीव पारषि रे सुख दुख कुण भोगवि, जीव पाखि रे पुण्य पाप कुण संभवि ।।२।।५११।।

देह माहि रे पंच भूते जीव हुवउ, पंच भूते रे गई जीव तिहां चवउ ।
इम जाणि रे पुण्य पाप को नवि लहि, इसु जाणि रे संसार सुख मोक्ष कहि ।३।५१२।।

परस्पर वार्तालाप

बोलि जंबू रे सांभलि प्रभवा तुझ कहुं, जु एह देह रे पंच भूते करी लहउ ।
माता पिता रे पाखिए देह नवि हुउ, कुंभ नीपनु रे पंच भूते करी इम कहुं ।४।५१३।।

तुं ज्ञानी रे ए कुंभ काईलि नही जीव मोहि रे संसार माहि पडि सही ।
जीव धरमि रे स्वरग मुगति लहि वली ।
जीव पावि रे नरक दुख भोगवि भली ।।५।।५१४।।

जीव पाम्नि रे सुख दुख कुण भोगवि, जीव पाखि रे पाप पुण्य कुण संभवि ।
बोलि जंबू रे पूरव भव सहू आपणां मि पूरवि रे सुख दुख सह्यां घणां ।।६।५१५।।

कहि प्रभवु रे सांभलि जंबू तुझ कहूं, एक उटि रे वन भमता कूप लहूं ।
कूप कांठि रे मध ऊजालु वृभि अछि, तिहां ऊभी रे मक्षक व लागी देह पछि ।७।५१६।।

मधु भक्षणु रे कीधु करभि मन रली, आवेह रे जेतलि तेहज वली ।
कूप मछिय रे पडीउ तेहज बापडउ, मधु लोभि रे मरण प्राम्यु उंटडउ ।।८।५१७।।

दुख सहीयारे अति घणां तिणि प्राणीइ इसु जाणी रे संवर मन माहि आणीइ ।
बोलि जंबू रे सांभलि प्रभवा ए तुझ कहूं एक वाणीउरे व्यवसाय करि बहू ।।९।५१८।।

चउपाई

व्यवसाय वणिक एक चाल्यु देस देसि ते भमि ।
लोभिय लीधउ तेह प्राणी दुख घणां ते खमि ।।
सहश्र हुउ लाख वांछि लाख नु वणी कोड ए ।
कोड पामी राज पाम्यु तुहि तृपति न छोडए ।।१।।५१९।।

पंथी जातां तृषा पीडउ जल किहां किम मिलउ ।
अरण्य पडीउ इसुं चिंति केमइ हांथी नीकलउ ।
नीसरु जे तलि चोर देखउ मूसीयवन सहूइ लीउ ।
तृषां पीडिउ रात्रि सूतां स्वपन माहि जल पीउ ।।२।।५२०।।

जाण्यु रे जे तलि काइ न देखि, किहां सर किहां जल ।
जिह्वा रे स्वादन करि प्राणी काइ नवि लहि बल ।
जिह्वा रे स्वादन करत तेहनी तृषा तेहनी नवि गई ।
तृषा पीडउ मरण पाम्यु दुख भोगवि तिणि लई ।।३।।५२१।।

दूहा—विद्युच्चर इम बोलीउ सांभलि जंबू कुमार ।
वणिक एक तस कामइनी यौवन भामी सार ।।१।।५२२।।

निज द्रव्य लेई नीकली मिलीउ धूरत एक ।
स्नेह बांधी तेह सुवली सुख विलसि अनेक ।।२।।५२३।।

तिहां रहतो वली अन्य सुं सबद हुइ तिणीवार ।
बिहू सरसां सुख भोगवि को नवि जाणी पार ।।३।।५२४।।

अरि वृतांतह जाणिउ कपट धरी मन माहि ।
पूर्व वृतांत तलवर कही मन सुं धरी अति दाह ।।४।।५२५।।

आजि रात्रि तम्हो आव जो, लाभ हसि मुझ गेह ।
इंसु कहीय धिर आवीउ, सयन सूतु वली तेह ।।५।।५२६।।

कामाकुल ते कामिनी, सूती सिज्या जई सार ।
तिहां धूरति सहू देखीउ, स्त्रीय चरित तिणि वार ।।६।।५२७।।

रात्रि संकेति आवीउ, नगर तणु रक्षपाल ।
नगर लोक जागवतु, आव्यु तिहां कोटपाल ।।७।।५२८।।

जार सिज्या थी ऊठी करी आवी धूरत पास ।
तल रक्षक वली आवीउ, धूरत तणि आवास ।।८।।५२९।।

आवी धूरत बोलीबीउ, कुण अछि तुझ गेह ।
हुं नवि जाणउ बोलीउ कोई भहुउ वली तेह ।।९।।५३०।

मुण्ड मुण्ड करी बांधीउ जार ग्रह्यु तिणि ठाम ।
राजभय थी नीकल्यु, धूरत स्त्री लेई ताम ।।१०।।५३१।।

नदी कांठिवि आवीया धूरत चिति एम ।
एह मूकी वसु लूटीनि चिलि जाउ केम ।।११।।५३२।।

सांभलि स्त्री तुझ हुं कहुं, द्रव्य हुइ वली जेह ।
मुझ हाथि आपु तम्हे, पछि उतारूं एह ।।१२।।५३३।।

लोभ पणि वसु आपीउ, धूरत पाम्यु सुख ।
एकाकिनी मूकी तिहां रदन करि धरि दुख ।।१३।।५३४।।

एतलि एक सियालिणी मांस धरी मुख एम ।
रही रही जोइ तिहां हवि करसिए केम ।।१४।।५३५।।

मास मूकी पूठि थई मछ गउ चल ठाम ।
मछ मांस लेइ गउ, रही रही जोइ ताम ।।१५।।५३६।।

हे नारी तिसुं करूं निज मारी भरतार ।
जैसा थि तुं नीकली, ते गउ तुझ भार ।।१६।।५३७।।

नारी जंबुक प्रति कहि मुझ सुं डाह पण तुझ ।
उभय भ्रष्ट हुई वली किसुं प कहुं वली मुझ ।।१७।।५३८।।

वस्तु—तेण अवसर तेण अवसर जंबू कुमार ।
विद्युच्चर प्रति बोलीउ सांभलि मामा मुझ वात ।
असती जंबुक ते समु कांई तु मुझ बात ।
ए संसार असार छिइ सुं आणु सहू कोइ ।
एक कथा कहु रूयडी सहू सांभलु तम्हो लोइ ।।१।।५३९।।

ढाल आणंदानी

जंबु स्वामी बोलीउ आणंदानी
सांभल प्रभवा वात तु वणिक एक वाहण चड्यु ।
द्रव्य लेइ संघातलु ।।आ०।।१।।५४०।।

विविध वस्तु लेई करी ।आ०। द्वीपांतर गउ तेह तु ।
वस्तु वेची तिहां आपणी ।आ०। विविध वस्तु लीधी तेह तु ।।२।।५४१।।

हस्ती घोडा अति घणाँ ।प्रा० भणि मणक लीया ताम तु ।
मनसु चिंति घर जई ।प्रा०। भोगवु राजनि ग्राम ।।३।।५४२।।

रतन पाम्यउ अति रूयडउ ।प्रा०। हरषहूउ मन माहि तु ।
ब्राह्मण पूरी निज आपणां ।प्रा०। आवीउ समुद्रह माहि तु ।।४।।५४३।।

समुद्र माहि जब आवीउ ।प्रा०। रतन पडउ तिणि वार तु ।
हा हा कार तिहां हूउ ।प्रा०। दुख करि वारो वार तु ।।५।।५४४।।

बांह्मण खेडि ते नावडी ।प्रा०। तिहं प्रति बोल्यु साह तु ।
बाह्मण राखउ तम्हो आपणउ ।प्रा०। रतन पड्यु जल माहि ।।६।।५४५।।

ते जोउ तम्हो इहां रही ।प्रा०। बोलि नौ खक तामतु ।
साथ सहूउ ए वाणीउ ।प्रा०। किम लाभि रत्न एणि ठामतु ।।७।।५४६।।

वायवेग बांह्मण जाइ ।प्रा०। समुद्र अछि अपार तु ।
रत्न पड्यउं इहां किम जाडि ।प्रा०। मूरख तूं य गमार तु ।।८।।५४७।।

तिम संसारह जलनिधि ।प्रा०। माणस जन्म ए रत्न तु ।
हस्त थकां जब ए गयु ।प्रा०। नव लहीइए नर रत्न तु ।।९।।५४८।।

वचन सुणी चोर बोलीउ ।प्रा०। सांभलि जंबू कुमार तु ।
विंध्याचल एक भील रहि ।प्रा०। पारधि करि रे अपार तु ।।१०।।५४९।।

उष्ण कालि गज आवीउ ।प्रा०। पांणी पीवा सर ताम तु ।
बांण मूकी तीणि भीलडि ।प्रा०। मारीउ गज तिणि ठाम तु ।।११।।५५०।।

सर्प डसु भील मूउ ।प्रा०। धनुषि मूउ तब काल तु ।
तिणि स्थानिक ते त्रण पड्या ।प्रा०। एतलि आव्यु सीयाल तु ।।१२।५५१

हस्ती भिल्ल अहि देखीउ ।प्रा०। धनुष देखु तिणि ठाम तु ।
हरष हूउ सीयालीया ।प्रा०। भक्ष प्राम्यु घणुं ताम तु ।।१३।।५५२।।

षट मास ए गज हृसि ।आ०। मास एक मांनव जाण तु ।
एक दिवस एं अहि मछि ।आ०। मन चिंतिए सु प्रयाण तु ।।१४।।५५३।।

भाग्यवंत जीव मुझ समु ।आ०। को नही एणि संसार तु ।
प्रथम धनुष गणए मखु ।आ०। ए सहू पछि आहार तु ।।१५।।५५४।।

धनुष प्रत्यंचा खाइतां ।आ०। तालुउ फूटउ तेह तु ।
मरण पांम्यु ते बापडउ ।आ०। दुख तणा हुउ गेह तु ।।१६।।५५५।।

विद्यमान सुख परहरि ।आ०। जे वांछि स्वर्ग सुख तु ।
लोभ थकी ते बापडउ ।आ०। अति घणा पामि ते दुख तु ।।१७।।५५६।।

वचन सुणी ते बोलीउ ।आ०। जंबू नाम कुमार तु ।
सांभलि प्रभवा तुझ कहुं ।आ०। कबाडी एक निराधार तु ।।१८।।५५७।।

काष्ट वेचिते अति घणां ।आ०। दिन दिन पर ति तेह तु ।
कष्ट करी उदर भरि ।आ०। एकदा वन गउ तेह तु ।।१९।।५५८।।

उष्ट काल पीड्यु घणउ ।आ०। लेई लेई आवि काष्ट तु ।
ताप पीड्यु ते अति घणु ।आ०। आवीय सुतु ते वाट ।।२०।।५५९।।

स्वपन माहि तिणि देखीउ ।आ०। जाणि भोगवु राज तु ।
राज लीला करु अति घणी ।आ०। वली करु आपणु काज तु ।।२१।।५६०।।

छत्र चमर वली भोगवु ।आ०। सिंहासन रहुं ताम तु ।
सेवक बहू सेवा करि ।आ०। भोगवु देस ग्राम तु ।।२२।।५६१।।

राजपुत्री वली भोगवु ।आ०। भोगवु सौख्य अपार तु ।
स्वपन माहि ए सुख देखतु ।आ०। जगवु स्त्रीइ भरतार ।।२३।।५६२।।

जाग्यु नवि देखि कोइ ।आ०। कोध हुउ तेणी वारतु ।
स्वपन सुख जे देखीइ ।आ०। ते नवि कोइ सार तु ।।२४।।५६३।।

कृष्ण वर्णा अति भीखणा ।आ०। दीसंती विकराल तु ।
इसी स्त्री आगिल रही ।आ०। कायकीइ देखी तिणि काल तु ।।२५।।५६४।।

कोप करीनि बोलीउ ।आ०। कांइ अगाध्यु रंड तु ।
दुख करि मनसु घणु ।आ०। अन्न तणु नहीं खंड ।।२६।।५६५।।

स्वपन सरीसां जाणवां ।आ०। संसार तणांए सुख सु ।
जे नर नारी मोहिया ।आ०। ते नर पामि दुख तु ।।२७।।५६६।।

दूहा—वचन सुणी चोर बोलीउ, सांभलि जंबू कुमार ।
नृत्य कला एक पूरीउ, नाटक कीउ एक सार ।।१।।५६७।।

एक दिवस राय मंदिरि वेश्या लेई बहुत ।
नृत्य करि तिहां रूयडउ हाव भाव संयुक्त ।।२।।५६८।।

विलास विभ्रम करि घणा, देखाली बली नेह ।
लोक तणा मन रीझवि, नृत्य करतां तेह ।।३।।५६९।।

संतु वउ राजा दिइ कणक कंचण दीनार ।
मणि मुक्ताफल अति घणा, नृपति देइ तिणि वार ।।४।।५७०।।

राजा सनमान लही सुख विलसि घण उ तेह ।
रजनी सूतां पेलवि, द्रव्य लेई आवं एह ।।५।।५७१।।

द्रव्य लेई जब नीसर्यु, ग्रहीउ अन्य संघात ।
लुष्ट मुष्ट करी बांधीउ, पाम्यु अति घणउ घात ।।६।।५७२।।

राज डंड राजा दीउ. पाम्यु दुख अपार ।
लोभ करि जे लोभीउ, इणी परि दुख भार ।।७।।५७३।।

ढाल साहेलडीनी (राग धन्यासी)

वचन सुणी तव बोलीउ, जंबू संभलि प्रभवाही बात ।
नयर वाणारसी राय लोकपाल, तेहनी छि बहू ख्यात ।।
साहेलडी बोलि जंबू कुमार, एह संसार असार ।।सा०।।१।।५७४।।

तस घिर राणी रूपनी खाणी, कमला तेहनुं नाम
नव यौवन पुरी ते नारी, काम बाणे पीडी ताम ।।सा०।।२।।५७५।।

आठ मद करी पूरी राणी, नवि जांणि कांई विवेक ।
निलंज नारी कुलनी खांपण, माणि मति कणु एक ।।सा०।।३।।५७६.।

एकदा धाव प्रति कहीं राणी, माय जोव मुझ संग ।
काम बाणे मुझ पीडी काय, आम्याछि मति घणउ भंग ।।सा० बोलि ।।४।।५७७.।

को एक पुरष इहां तम्हे आणउ, भाणीनि मुझनि मेलु ।
वचन सुणी दासी इम बोलि, जे कहि ते तुझ भेलु ।सा० बोलि ।।५।।५७८।।

रूपि करी काम सरीखु नीसरयु अग्र विभाग ।
स कोमल अंग अनोपम काय ए, अछि तेहवा लाग ।।सा० बोलि ।।६।।५७९।।

नव यौवन पुरु सुंदर रूप स्वर्णकार अंग नाम ।
ते देखि मन विह्वल हूउ एहा तेडउ एणि ठाम ।७।।५८०।।

धाम्बिका आई तेडीउ तेह आणीउ राणी पास ।
राय तणी सेज्या जव मूंक्यु पूरसि ए मुझ आस ।।सा० बोलि ।।८।।५८१।।

स्नान मज्जन चंदन पुष्प पिहरी, लेई सार श्रृंगार सजथई जव ।
आवी हो रांणी वाजित्र वांग्या तव ।सा० बोलि ।।९।।५८२।।

छत्र चमर सामंत सहित, अवीउ राजा हो ताम ।
चंग लेई संचारीइ नाख्यु गुप्त रासउ तेणि ठाम ।।१०।।५८३।।

राणीनि मंदिर राय पधार्या, भोगवि सौक्ष अपार ।
षट मास षम रह्यु तेणि ठाम, भोगवि दुखनु भार । सा० बोलि ।।११।।५८४।।

पांडु रोग दुरगंध शरीर, पामीउ तेहनु अंग ।
राय आदेसि सोधाउ कुंड, असखाल नीसर्यु चंग ।।सा० बोलि ।।१२।।५८५।।

अंग पखालउ नदी जाइ तेणि, आवीउ नगर मझार ।
पांडुरांग जव देखिउ, लोके विस्मय आमीया भार ।।सा० बोलि ।।१४।।५८६।।

क्षीण गात्र जब दीठीउ, लोके पूछइ हो तेहनि ताम ।
एतला दिवस कहि रया, चंग ते कहु अमनि ठाम ।।सा० बोलि ।।१५।।५८७।।

पाताल कन्या लेई गई, मुझनि तिहां रहुं षट मास ।
इम कहीनि ऊतर आप्युं, अवीउ निज आवास ।।सा० बोलि ।।१६।।५८८।।

स्नान भोजन करी हुउ सुरूप, आमीउ रूप अनंग ।
पुनरपि रांणीइ देखीउ चंग, नेह पाम्यु घणउ रंग ।।सा० बोलि ।।१७।।५८९।।

पूरबलीपिरितेडीउ तेह, बोलीउ सोवन कार ।
तुझ थिर भोगव्या जे भोग सार, सांभलि ते मुझ अपार ।।सा० बोलि ।।१८।५९०।

इसुय कही थिर आवीउ, तेह नवि मान्यु तेणि ।
बोल जे परनारी लंपट पुरुष, नयर माहि करि रंग रोल ।।सा० बोलि ।।१८।५९१।

नरक तिर्यच गति उल्लंघी आमीउ माणस जन्म ।
भोग इछा नवि नीगमउ, ए हइसुं य जाणे तम्हे मर्म ।।सा० बोलि ।।२०।।५९२।।

अचल मेरजु चालवु मांडि तुं नवि चलि मुझ चित्त ।
पूरब्लु सूर पश्चिम ऊगितु, मन नवि आमि भंग ।।सा० बोलि ।।५९३।।

हस्तनागपुर गंवर राजा, तेह तणु पुत्र एह ।
विद्युप्रभ तम्हे नांमि जाणउ, आसन भव्यखिदेह ।।सा० बोलि ।।२२।।५९४।।

पद्मश्री आदि च्यार नारी, ते पण हुई निरास ।
पंचसि चोर सहि तसु. प्रभवु, तेणे मूंकी वली आस ।।सा० बोलि । २३।।५९५।।

ज्ञानी करी प्रभवु प्रति बोध्यउ, प्रति बोधी च्यार नारी ।
पंचसि चोर तिहां प्रति बोध्या, मात तात तिणी वार ।।सा० बोलि ।।२४।।५९६।।

दूहा—तिणी अवसर उदयाचलि, उदय पाम्यु तव सूर ।
राग रहित कुमरनि, जोवा आव्यु सूर ॥१॥५९७॥

सिज्या कुमर मूकी करि, करि सामायक सार ।
केतला पडि कमणु करि, केवि जंपि नवकार ॥२॥५९८॥

अधिक वैरागि वासीउ, इहां रहिवा नही लाग ।
वन जाई दिक्षा लेउं, करुं हूं जीवनु भाग ॥३॥५९९॥

इसुय जाणी थिर थकी, आव्यु श्रेणिक पास ।
हरष हूउ हीयडि घणउं, पाम्युं मन उल्लास ॥४॥६००॥

वाजित्र वागा अति घणा, को नवि लाभि पार ।
मुकट कुंडल बाजूब हरसा पहिराव्या कुमार ॥५॥६०१॥

सिबका आणी रूयडी, विसाल्यु तिणी वार ।
नगर लोक राय सहित, सुं चाल्युं जम्बूकुमार ॥६॥६०२॥

कुमर चाल्यु तव जाणीउ आवी जिन मती माय ।
दुखि रुदन करि घणु, वली वली लागि पाय ॥७॥६०३॥

ढाल बलभद्रनी—राग वेलाउल

विलवि ते पुत्रह एकली तुझ विण रहि उ न जाय ।
तुझ विण उद्वस एस हुइ, सुय कहि वली माय ।
बोलि माय पुत्र पाछावलु, ए दिक्षानु नहि काल ।
तु सुंदर नान्हु अछि दीसतु सकोमाल ॥बोलि ॥१॥६०४॥

पुत्र आगिल माता रही करि रुदन अपार ।
वार वार दुख धरि करि मोह प्रपार ॥बोलि ॥२॥६०५॥

सीयालिसी वाजसि वन रहिणउ न जाइ ।
वन वाडि तिहां वड सहि किम रहिसि हो काय ॥बोलि॥३॥६०६॥

पाए अणू हाणे चालवुं ऊपरि सूरज ताप ।
तपती वेलू तपती सिला किम सहि सुहो वाप ।।बोलि।।४।।६०७।।

वरषा काल वरसा तनी किम सहि सुहो घोर ।
झाझावात वाइ घणा किम रहिसु निरधार ।।बोलि।।५।।६०८।।

षट् आवश्यक दोहिला महाव्रत पंच ।
अठावीस मूल गुण दोहिला दोहिलुं तेहनु संच ।।बोलि।।६।।६०९।।

जल विण किम रहि माछली तिम तुझ विण पुत्र ।
मुझ मेहली बीसासीनि कांइ जाउ वन सुत ।।७।।६१०।।

परभव दव पर जालीया, किमि दीधी हो माव ।
किमि मुनिवर दूहव्या किवि छोहां हो वाल ।।बोलि।।८।।६११।।

हाहाकार करि घणुं करि रुदन अपार ।
अश्रुपात करि घणुं करि विविध विकार ।।बोलि।।९।।६१२।।

मूरछा वस धरणी पडी करी भाणा हो माय ।
मूर्छा भागी तेहनी सावधान हुइ तस काय ।।बोलि।।१०।।६१३।।

पुत्र कहि माता सुणु ए संसार असार ।
दिया लेवा मुझ देउ, कोई करुं अंतराय ।।बोलि।।११।।६१४।।

दर्शन ज्ञान चरित्र विना नवि लहीइ मोक्ष ।
माता मुझ मां वारसु, मां धरसु हो रोष ।।१२।।६१५।।

हेतु दृष्टांत देइ घणा प्रति बोधी मात ।
सासु सुसुरा बूझवी प्रति बोधी हो तात ।।१३।।६१६।।

आदेस लेई माय नु चाल्यु, राय संघात ।
लोक सवे तिहां चालीया, बोलता बहु बात ।।बोलि।।१४।।६१७।।

दूहा—वाजित्र वागा प्रति घणा, बंदी जन जयकार।
हरष हुउ हीयडि घणउ, को नवि लाभि पार ॥१॥६१८॥

तिहां थी वली आवीउ नंदन वनह मझार।
सोधर्म्म स्वामी प्रणमीनि बिठउ जंबू कुमार ॥२॥६१६॥

नगर लोक सहू आवीया, आव्यु श्रेणिकराय।
त्रण प्रदक्षणा देइनि, बिठउ प्रणमी पाय ॥३॥६२०॥

अवसर पामीनि वली, बोलि जंबूकुमार।
स्वामी मुझ दिक्षा देउं, ऊतारू भवपार ॥४॥६२१॥

इसु कहीनी तिहां रहुं, मुनिवर अग्रवि भाग।
दिक्षा लेई तिहां निर्मली, छोडि परिग्रह माग ॥५॥६२२॥

ढाल वाजारीनीर-राग गुडी

मुकि परिग्रह बाह्य, आभ्यंतर मूकी वली।
चेतन हीयसारे ॥१॥६२३॥

मुकट कुंडल बाजूबंध हार ऊतारि मन रली ॥चेतन॥१॥६२४॥

शरीर तणां जे वस्त्र सार शृंगार मूंकि सही।
स्वकीय हस्त करि लोच, पंच मुष्टी तिहां रही ॥चेतन॥२॥६२५॥

पंच महाव्रतन भार, पंच सुमति त्रण गुप्त सु।
चारित्र तेर प्रकार, तेह धरि मन सुध सुं। चेतन॥३॥६२६॥

छह आवश्यक सार मूल गुण धरि वली।
इंद्रीय पंच सहित, विषयनि वारि ते वली ॥चेतन॥४॥६२७॥

गुरनु लही ऊपदेश, लीधी दिक्षा तिहां सही।
परिसह सहिरे बावीस, ध्यान धरि वन रही ॥५॥६२८॥

हरष्यु श्रेणिकराय स्वजन लोक सहू हरषीउ ।
केतले लीयां समकित केतले व्रत तिहां लीयां ।।चेतन।।६।।६२६।।

पंचसि चोर सहित विद्युत्प्रभ तिहां आवीउ ।
प्रणमी मुनिवर पाय दिक्षा लेईनि भावीउ ।।चेतन।।७।।६३०।।

मुकी परिग्रह सर्व चारित्र भार तिहां धरी ।
हूउ मुनिवर राय सर्व संग तिहां परहरी ।।८।।६३१।।

संसार जाणी असार, अर्हद्दास मुनिवर हूउ ।
लीधी दीक्षा सार, ध्यान धरि मुनिवर सहू ।।चेतन।।६।।६३२।।

जिनमती जे वली माय, दिक्षा लीधी निर्मली ।
पद्मश्री आदि नारि दीक्षा लीधी मनरली ।।चेतन।।१०।।६३३।।

सुप्रभा प्रणमीय पाय, शास्त्र भणी तिहां रही ।
तप जप करि अपार, स्त्री लिंग हणवा ते सही ।।चेतन।।११।।६३४।।

श्रेणिक धरी सहू कोय सोधर्म्म मुनी नमी चालीया ।
आव्या ह्वो नगर मझार, धर्म ध्यानि करी वासी ।।चेतन।।१२।।६३५।।

एक दिवस जंबूस्वाम नगर प्रतिवली आवीउ ।
ईर्यापथ सोधंत, नीची दृष्टि करी भावीउ ।।चेतन।।१३।।६३।।६

नगर तणी जे नारि, भवन लोकन करि घणु ।
पड़घाई मुनिराय, भाव सहित सु अति घणउ ।।चेतन।।१४।।६३७।।

बोलि ह्वो नगरी नारि, स्यार नार छोडी करी ।
परहरी मायनि बाप, भव घणु मनसु धरी ।।चेतन।।१५।।६३८।।

सीखउ हो संयम भार एह सरीखउ को नही ।
एहवी बोलइ सहू भांति, नगर लोक नारी रही ।।चेतन।।१६।।६३६।।

जंबू छो मुनिवर राय, जिनदास घिर आवीउ ।
पडघाई मुनिराइ, आहार देईनि भावीउ ।।चेतन।।१७।।६४०।।

तिणि अवसर जिनदास, पुण्य करि नव विरा ।
आहार अनंतर नाम, रत्न वृष्टि हुई घरि ।।चेतन।।१८।।६४१।।

धर्म बृद्धि कही तेण, तव स्थानिक मुनि आवीउ ।
मुगति तणि वली हेतु, अधिक तपि करी भावीउ ।।१६।।६४२।।

ध्यानि धरि मुनिराय, विपुलाचल पर्वत रही ।
शुक्ल ध्यान धरी स्वाम, मोह समाधि तिहां सही ।।२०।।६४३।।

सोधर्म मुनि तिणी ठाम, आठ कर्म हणी थया ।
प्रथम पक्ष माघ मास, सप्तमी दिन मुगति गया ।।२१।।६४४।।

दूहा—तिणि दिन जंबू केवली, चडीउ उपसम श्रेणी ।
कर्म सवे समावतु, चडीउ क्षपकह श्रेणि ।।१।।६४५।।

तिसठ प्रकृति तिहां क्षय करी, घात कर्म करी हानि ।
गुणस्थानिक लही तेरमुं ऊपनु केवल ज्ञान ।।२।।६४६।।

इंद्रादिक तिहां आवीया, आव्या चतुर्णिकाय ।
गंध कुटी रची भली, प्रणमी केवलि पाय ।।३।।६४७।।

धर्म प्रकास्यं केवली, सागार अणगार ।
बार व्रत प्रकासीयां क्रिया ते त्रेपन सार ।।४।।६४८।।

आठ मूलगुण कह्या, श्रावक नो छह कर्म ।
छ आवश्य मूलगुण कह्यु ते दश विध धर्म ।।५।।६४६।।

धर्म सुणी राजादिक, आव्या नगर मझार ।
निज स्थानिक देव गया, करता जय जय कार ।।६।।६५०।।

विहार करि वली केवली, पुर पाटण निगाम ।
भव्य जीव मति बूझवी, आव्या विपुल गिरि ठाम ।।७।।६५१।।

ध्यान धरी तिहां मुनिवरि, बहुत्यरि प्रकृति करि घात ।
गुणस्थानिक सह्यु चौदमु, क्षय करी कर्म अघात ।।८।।६५२।।

तेर प्रकृति तिहां क्षय करि, रही तिहां अक्षर पंच ।
हूया ते मुगति नारा जीधा, सौख्य तणु लह्यो संच ।।९।।६५३।।

ढाल दशमी यशोधरनी

जिहां नही ए जामण मरण रूप रस जिहां नही ए ।
जिहां नहीं ए भोग वियोग, भोग सौख जिहां नहीं ए ।।१।।६५४।।

ते स्थानिक ए प्राम्यु कुमार, आठ कर्म हणी करीए ।
प्राम्यु मुगति निवास, सार सौख्य वली घरीए ।।२।।६५५।।

तिहां नहीं ए देशनि ग्राम पुर पाटण जिहां नही ए ।
जिहां नही ए शीतनि उष्ण, वर्ण गंध जिहां नही ए ।।३।।६५६।।

जिहां नहीं ए मातनि तात, पुत्र कलित्र जिहां नहीं ए ।
जिहां नहीं ए योग वियोग, रात्रि दिवस जिहां नहीं ए ।।४।।६५७।।

जिहां नहीं ए काय विकार, सौख्य अनंत जिहां अछिए ।
जिहां नहीं ए आयु नु अंत, तेज अनंतु जिहां अछि ए ते स्थानि ।।५।।६५८।।

जिहां नहीं ए जीव समास, गुणस्थानिक जिहां नहीं ए ।
जिहां नही ए संचाचार, छमयाति तिहां नही ए ।।६।।६५९।।

जिहां नहीं ए मार्गणा नव सिद्ध मार्गणा जिहां ।
अछिए जिहां अछि केवल ज्ञान, केवल दर्शन जिहां अछिए ।।७।।६६०।।

जिहां पछिए क्षयक सम्यकत्व, अनाहारक जिहां भछिए ।
पंचतालीसए योजन लाख, स्थानिक पांम्यु ते अछित ॥८॥६६१॥

महोछव ए कीउ निर्व्वाण, देवे मिली मननी रलीए ।
गया सहूए निज निज ठाम, संस्कारी काया बलीए ॥९॥६६२॥

दूहा—अर्हदास मुनि तप करी, छठा स्वर्ग मझार ।
इंद्र तणी पदवी लही, भोगवि सौक्ष अपार ॥१॥६६३॥

स्त्री लिंग छेदी जिनमती तपह तणो परभाव ।
अह्मोत्तर पर्त्तिंद्र हूउ, भोगवि सौक्ष स्वभाव ॥२॥६६४॥

वासपूज्य चंपापुरी, तिहां अई च्यारि नारी ।
तप जप संयम आदरी, ध्यान धरो भवतार ॥३॥६६५॥

सन्यासि कालह करी, स्त्री लिंग छेदी हेव ।
स्वर्ग महद्धिक देवता, अवतरीया तत खेव ॥४॥६६६॥

विद्युच्चर मुनि तप करी, सही परीसह भार ।
काल करी सर्वार्थसिद्धि, अवतरीउ भवतार ॥५॥६६७॥

तेत्रीस सागर आयुधु, पामी मन उल्लास ।
मध्य लोक वली अवतरी, लहिसि मुक्ति निवास ॥६॥६६८॥

प्रशस्ति

काष्ट संघ जगि जाणीइ, नंदीयड गछ मझार ।
रामसेन मुनिवर हुआ, गछ तणा सणगार ॥७॥६६९॥

तेह अनुक्रमि मुनिवर हुआ, सोमकीर्ति सुविचार ।
ज्ञान विज्ञानइ आगला, सास्त्र तणा भण्डार ॥८॥६७०॥

तसु पट्टि अति रूयडा, विजयसेन जयवंत ।
तप जप ध्यानि मंडीया, क्षमावंत गुणवंत ॥९॥६७१॥

महीं मंडल महिमा घणउ, महीमलि मोटु नाम ।
यशकीरति यश आगला, श्री यशकीर्ति अभिराम ॥१०॥६७२॥

तस पट्टि उदयाचलिइ, ऊग्यु अभिनव भांण ।
वाणी जन मन मोहीया, श्री उदयसेन सूरी जाण ॥११॥६७३॥

तस शिष्यइ अति रूयडउ, रच्यु रास मनोहार ।
त्रिभुवनकीर्तिइ सूरीश्वरइ, सीक्ष तणु आधार ॥१२॥६७४॥

जे कवीयण अति रूयडा, तेणे सोधवु एह ।
सरू करी विस्तार बु, दोष न आमि जेह ॥१३॥६७५॥

जांह मंडल महीधर, जां सायर ससि सूर ।
तां लगिइ रहु रास, जंबू स्वामिनु ज्ञान तणु ए ॥१४॥६७६॥

संवत सोल पंचवीसि, जवाछ नयर मझार ।
भुवन शांति जिनवर तणि, रच्यु रास मनोहार ॥१५॥६७७॥

इति जंबूस्वामी रास समाप्त ।

संवत् १६४४ वर्षे फागुण मासे शुक्ल पक्षे अष्टमं सुक्रवासरे वडवास नगरे आदिनाथ चैत्यालये श्रीमत्काष्ठा संघे नंदीतट गच्छे विद्यागणे भ० विश्वभूषण तत् शिष्य ब्र० सामल लखंत ।